CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४०२

कृष्ण-जीवन-दर्शन

सद्विचार दर्शन ट्रस्ट, मुंबई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाल्मीकि क्याम्पस लायब्रेरी को
४०२ सप्रेम भेंट
12/9/1973

—हरिः ॐ—

नं० ५०५३

श्रीकृष्ण–जीवन–दर्शन

परम पूज्य शास्त्री जी श्री पांडुरंग
वैजनाथ आठवले के
प्रवचन–संग्रह

मू० ५।५०

वेदान्त ९०८

सद्विचार दर्शन ट्रस्ट, मुंबई–४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकाशक :
सद्विचार दर्शन ट्रस्ट के लिये
नंदलाल गोपालजी भूता,
रामकृपा, २५ पारेख स्ट्रीट, बम्बई–४००००४

टेलिफोन : ३५१६७७

प्रती : १५००

किंमत : रु. ५–५०

इस ग्रंथ के सब हक सद्विचार दर्शन ट्रस्ट बम्बई के अधीन हैं।

मुद्रक :
मनोहर गो. प्रधान,
व्यवस्थापक,
सत्यसेवा मुद्रणालय,
अलिबाग–कुलाबा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाव--वन्दना

सामान्यतया पुस्तकों के प्रारम्भ में प्रस्तावना लिखने की एक परम्परा चली आयी है परन्तु श्रीकृष्ण जीवन–दर्शन जैसी पुस्तक में उसी पुरानी परम्परा का अनुसरण करते हुये परिचय देना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। इसकी अपेक्षा हम उस महापुरुष की भाव–वन्दना मात्र कर कृतकृत्यता अनुभव करेंगे जिसके प्रवचनों को संकलित कर पुस्तक रूप में प्रकाशित किया गया है।

योगेश्वर भगवान ने गीता के दसवें अध्याय में '**यद् यद् विभूति मत्सत्त्वं मम तेजोंऽश संभवम्।**' का रहस्योद्घाटन किया है। ऐसी ही एक विशिष्ट विभूति प. पू. दादा (श्री पाण्डुरंग शास्त्री जी) वैदिक संस्कृति के लिए सतत कार्य-रत रहने वाले कर्मयोगी, जिज्ञासु और प्रभु–भक्त स्वाध्यायी भाई–बहिनों को दशाब्दियों से गीता एवं श्रीकृष्ण–चरित्र का अमृत–पान कराते आये हैं। इस प्रकार उनका जीवन भी स्वयं गीतामय हो गया है।

श्रीकृष्ण जीवन पर उनके प्रवचनों का संकलन 'श्रीकृष्ण जीवन–दर्शन' नामक पुस्तक में गुजराती भाषा में प्रकाशित हो चुका है। हिन्दी भाषी स्वाध्यायी बन्धुओं की सुविधा के लिए उसी का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत करते हुये हमें हार्दिक प्रसन्नता अनुभव होती है।

जीव, जगत और जगदीश के जागतिक अभिनय के नायक '**कृष्णस्तु भगवान स्वयं**' ने मानव को जीवंत जीवन–दर्शन प्रदान करने के लिए कुरुक्षेत्र की रण–भूमि में अर्जुन को निमित्त बनाकर गीता के अलौकिक, अद्वितीय, अमर और रहस्यमय मधुर संगीत का गान किया था। वह आज पाँच हजार वर्षों के पश्चात् भी भौतिक–जीवन से श्राँत, हतोत्साह और निराश हुये मानव को आशा और समुचित आश्वासन प्रदान कर उनके अंतःस्थल में शक्ति, शौर्य, साहस और चैतन्य का स्फुरण करता है।

भगवान श्रीकृष्ण और उनकी जीवन–लीला के सम्बन्ध में लोगों में विविध प्रकार की शंकायें और भ्रान्तियाँ व्याप्त हैं। प्रस्तुत पुस्तक के द्वारा ऐसी समस्त भ्रान्तियों का निराकरण होगा तथा उनके लोकोत्तर और दिव्य--चरित्र का यथातथ्य ज्ञान होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मूल रूप (गुजराती) में यह पुस्तक सहस्त्रों नवयुवकों–एवं स्वाध्यायी भाई–बहिनों को अपना जीवन–विकास करते हुये प्रभु कार्य के लिए प्रेरित करती रही है और ऐसे सहस्त्रों तरुणों को प्रतिप्राणित करती रहेगी, जो भगवान श्रीकृष्ण के जीवन–दर्शन (Philosophy of life) के अनुसार लोककल्याण तथा अपने जीवन के पुनर्निमाण के अभिलाषी हैं।

यहाँ पर प्रस्तुत पुस्तक, प्रभु और प्रभु के लाड़ले प. पूज्य दादा के संम्बन्ध में विशेष कुछ न कहकर केवल हृदय से उनकी भाव–भीनी–वंदना करते हुये योगेश्वर भगवान से विनीत विनय करते हैं कि वे उन्हें स्वस्थ तथा दीर्घायु रखे, तथा हमको ऐसी शक्ति, साहस और सामर्थ्य प्रदान करें कि हम उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर अग्रसर होते हुये अपने जीवन–पुष्प को सुंदर, सुरक्षित और सुविकसित कर उनके चरणारविंदो में समर्पित कर सकें।

अस्तु। सादर सप्रेम शतशः नमन।

सद्विचार दर्शन।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुक्रमणिका

प्रकरण क्र.	तपशील	पृष्ठे
प्रकरण-१	**उपोद्घात** श्रीकृष्ण चरित्र महिमा-१, आदर्श मूर्ति श्रीकृष्ण-२, चरित्र की विलक्षण गुढ़ता-३, आदि शक्ति श्रीकृष्ण-७, जीवन की अद्भुत रमणीयता-८.	१ ते १०
प्रकरण-२	**"अधः पतित ब्राह्मण्य"** अवतार की भूमिका-११, भारतीय संस्कृति का प्राण-ब्राह्मण-१२, ब्राह्मणत्त्व की महिमा-१४, ब्राह्मणों के वर्चस्व पर आक्षेप-१५, ब्राह्मणों का आत्मशासन-शंख और लिखित-१५, ब्राह्मणों की कर मुक्ति-१६, ब्राह्मण का अध-पतन-१७, द्रोणाचार्य की आर्थिक परेशानी-१७, द्रुपद-द्वारा द्रोण का अपमान-१९, मृत-जीवी द्रोण २०, धनिकों की जिम्मेदारी-२०, तेजस्वि वसिस्ठ और लाचार द्रोण-२१, द्यूत के समय द्रोण-२२, अधः पतित ब्राह्मण्य की पराकाष्ठा-२४, दिव्य समाज का मूल-२४.	११ ते २७
प्रकरण-३	**सामाजिक परिस्थिति** स्वंय शासित समाज-२७, राज-सत्ता की आवश्यकता, २७, नृपति-लक्षण-२८, राजा कालस्य कारणम्-३०, जरासंधादि का साम्राज्यवाद-३१, तत्कालीन तीन महा धूर्त-३२, अद्वितीय खलपुरुष धृतराष्ट्र-३३, मुख में राम बगल में छूरी-३५, लाक्षागृह का षड्यंत्र-३६, धृतराष्ट्र का दम्भ, ३७, यतो रत्नभुजा वयम्-३९.	२७ ते ४०
प्रकरण-४	**गोकुल, वृन्दावन और मथुरा की परिस्थिति** यादवों का गण-राज्य-४१, राजतन्त्र के दो प्रकार-४४,	४१ ते ५४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इतिहास का विकृतीकरण–४५ अंधक वृष्णि संघ–४६, जरासंध की भेदनीति–४७, कंस की सत्ताप्राप्ति–४८, धर्मनिष्ठ वसुदेव–४९, धनलोलूप अक्रूर जी–४९, चोरी का आक्षेप–५०, राजनीतिज्ञ नारद–५३.

प्रकरण–५ कृष्ण–जन्म और बाल्यावस्था ५५ ते ६६

जन्म– ५५, जमुना में बाढ़–५५, नन्द के घर–५६, श्याम सौन्दर्य–५७, विलक्षण लोकप्रियता–५८, अप्रतिम शौर्य–६१, Krishana Made the play Divine-61, अन्याय का प्रतिकार–६३, जनता में आत्मप्रत्यय की जागृति–६३, कंस की भूल–६४, गोवर्धन पूजा–६५.

प्रकरण–६ मथुरा गमन ६७ ते ८०

कंस का कुटिल मार्ग–६७, श्रीकृष्ण की पेशबन्दी–६९, कंस का तेजो वध--७०, कंसचचाणूरमर्दनम्--७१, जनता के हृदयसम्राट–७२, तपोवनप्रवेश–७३, आश्रम के छात्रों का निर्व्याज प्रेम–७५, प्रमुख विद्यार्थी–७६, भारतीय युवान–७८.

प्रकरण–७ युवान कृष्ण ८१ ते ९५

तपोवन से बिदा–८१, गुरुदाक्षिणा–८२, पंचजन्य असुर का वध–८३, लोक नेता–८४, जरासंध की चिढ़–८६, प्रचण्ड आक्रमण–८६, विकद्रु की निर्भय वाणी–८८, मथुरा त्याग–८९, रणछोडराय–९०, द्वारिकाधीश–९०, गृहस्याश्रम में प्रवेश–९१, रुक्मिणी की पसंद–श्रीकृष्ण–९१, रुक्मिणी का प्रेमपत्र–९२, रुक्मिणी हरण–९४, लग्नसमारोह–९४.

प्रकरण–८ व्यवसायी श्रीकृष्ण–धर्मसंस्थापना ९६ ते ११२

साधन की खोज–९६, द्रोपदी के स्वयंवर में–९६, पाण्डवों की योग्यता का माप– ९८ भारत--वर्ष के प्रथम विभाजन का स्वीकार–१००, सुभद्रा द्वारा यादव–पाण्डव संधान–१०१, धर्मसंस्थापन का घोष -१०४, प्रथम निशान–जरासंध–१०४, जरासंध का वध–१०५, धर्मराज्य के श्रीगणेश– १०६, शिशुपाल का शिरच्छेद–

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१०७, कल्याणराज्य १०८, तेजस्वी मानवजीवन–१०८, जुआ–धर्मराज की महान भूल–१०९ श्रीकृष्ण का उपालम्भ–११०, युधिष्ठिर पर अलौकिक श्रद्धा–१११, पाण्डवों–का वनवास काल–११२.

प्रकरण–९ श्रीकृष्ण–सन्धि ११३ ते १२८

वनवास के अन्त में–११३, संस्कृति के उत्थान के लिये युद्ध–११४, धृतराष्ट्र प्रेरित संजय–विष्टि–११६, श्रीकृष्ण–शान्ति के दूत–११७, श्रीकृष्ण–विष्टि का राजकारण–११८, विष्टि का लक्ष्य–११९, स्वरक्षण के लिये श्रीकृष्ण की जागृति–१२०, धृतराष्ट्र का दम्भपूर्ण सत्कार–१२१, श्रीकृष्ण– मूर्तिमंत राजनीति–१२१, महाअमात्य विदुर जी– १२२, श्रीकृष्ण की स्पष्टबानी–१२३ दुर्योधन की चुनौती–१२५, बुजुर्गों को श्रीकृष्ण की सीख–१२६, कर्ण को समझाने का प्रयत्न–१२७, विष्टि की सफलता–१२८.

प्रकरण–१० जगद्गुरु श्रीकृष्ण १२९ ते १४०

एक श्लोकी "भागवत"– १२९, चिरंतन काल के लिये जगद्गुरु–१३०, अवतार प्रयोजन–१३० इससे बचने का रास्ता–१३२, विश्वमान्य धर्म की कल्पना–१३३, एकमेव सुलझाव–निष्काम कर्मयोग–१३४, वेल्स् और सरेल के अभिप्राय–१३५, "गीता" में सर्वभूत की हित दृष्टि–१३७, सच्ची कृष्णभक्ति–१३९.

प्रकरण–११ पुरुषोत्तम कृष्ण १४१ ते १५७

भगवान श्रीकृष्ण–१४१, भावमधुर गोपालकृष्ण–१४२, लोकप्रियत का रहस्य– १४३, अद्भुत नेता–१४४, अलौकिक औदार्य–१४४. कल्याण राज्य का विचार–१४६, राष्ट्र के लिये कीर्ति का होम–१४६, आदर्श क्षत्रिय–१४८, सर्व विद्या पारंगत–१४९, अलौकिक तेजस्विता–१५०, अद्वितीय धैर्य और संशयरहितता–१५१, ज्वलंत जागृति– १५२, मन के भावों के जानकार–१५४, मर्मज्ञ–१५५, हृदय की असीम उदारता–१५५.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकरण-१२ श्रीकृष्ण गुण मीमांसा-(१) १५८ ते १७१

लोकहृदय के सम्राट–१५८, गीता–वैश्विक तत्त्वज्ञान का निचोड़–१६०, व्यवहारदक्षता और उत्कृष्ट बुद्धिमता–१६१, संजय–विष्टि के कुटिल हेतु की परख–१६३, कार्याकार्य का त्वरित निर्णय लेने की अपूर्व शक्ति– १६४, इन्द्रियनिग्रह और स्थितप्रज्ञता–१६५, अद्भुत विनम्रता–१६६, मानवतावादी दृष्टि–१६६, अपहृत स्त्रियों के प्रश्न का हल–१६७, होपकिन्स् द्वारा दोषपूर्ण जीवन समीक्षा– १६९.

प्रकरण-१३ श्रीकृष्ण गुण-मीमांसा (२) १७२ ते १८७

श्रीकृष्ण के उपर के कतिपय आक्षेप– १७२, पाप पुण्य की समीक्षा–१७३, महामानव और कायदे--कानून--१७६, गोपियों का विलोभनीय प्रेम–१७७, रास–लीला का प्रकरण–१७८, आक्षेप करनेवालों की पामरता–१७९, वेद पुराणों की लक्षणाप्रधान शैली–१८१, गोपीवस्त्रहरण–एक रूपक–१८२, गोपिजनप्रिय–अबलाओं के तारक--१८३, शिशुपाल द्वारा किये गये आक्षेपों की समीक्षा–१८५, निष्पाप जीवन–१८६.

प्रकरण-१४ श्रीकृष्ण गुण मीमांसा (३) १८८ ते २०२

युद्ध में कपट नीति–१८८, धर्मसंकट के दो उदाहरण–१८८, श्रीकृष्ण का दृष्टिबिन्दु--१९०, द्रोण वध का प्रसंग–१९१, धर्म निर्णायक तत्त्व--१९३, संस्कृति रक्षार्थ कूटनीति–१९३, भीष्म वध का प्रसंग–१९६, मुत्सद्दी साधु पुरुष १९७, धर्मराज्य की संस्थापना, १९८, सच्चा कृष्ण भक्त–२००.

प्रकरण-१५ गृहस्थाश्रमी श्रीकृष्ण २०३ ते २१७

राधा एक रूपक–२०३, पारिवारिक संबन्ध और श्रीकृष्ण–२०५, मातृ–पितृ प्रेम–२०५, भ्रातृ–प्रेम–२०८, भ्रातृप्रेम की कठिन कसौटी–२०९, बलराम का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम–२१०, लोकोत्तर मित्रप्रेम–२११ पति–२१२, बहुपत्नीत्व–सामाजिक कारण–२१३ चिरंतन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रेममूर्ति–२१३, "कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्"–२१४, परार्थ जीवन–२१', अद्भुत स्थितप्रज्ञता–२१५, समर्थ मार्गदर्शक–२१६.

प्रकरण–१६ पुरुषोत्तम का तत्त्वज्ञान २१८ ते २३३

गीता बोध–२१८, युद्धभूमि पर उपदेश–२१९, युद्ध के समय तत्त्वज्ञान–२१९, स्वमुख से गीता गान–२२०, व्यास द्वारा संकलन–२२१, अन्य धर्मग्रन्थों के रचियता–२२१, तत्त्वज्ञान का सर्वोत्तम ग्रन्थ–२२२, निवृत्ति और प्रवृत्ति का चिरंतन संघर्ष–२२२, ग्रीक तत्त्वज्ञान की समीक्षा–२२३, ईसा का उद्देश–२२४, मार्टिन ल्यूथर का प्रोटेस्टंट धर्म–२२४, भारत में प्रवृत्ति–निवृत्ति–का सिलसिला–२२५, ऋग्वेदकालोत्तर प्रवृत्ति–२२६, उपनिषत्काल–२२६, श्रीकृष्ण द्वारा समन्वय–२२६ गौतमबुद्ध और निवृत्तिवाद–२२७, कुमारिल भट्ट और मण्डनमिश्र–२२८, "समत्त्वं योग उच्यते"–२२९, तेजस्वी भक्तिमार्ग–२३०, सर्वसुलभ भक्तिमार्ग–२३१ श्रीकृष्ण की उदार और क्रान्तिकारी दृष्टि–२३१, शास्त्रप्रमाण–२३२, मानवी समस्याओं का सनातन हल–२३२. फल–निरपेक्ष कर्मयोग–२३२.

प्रकरण–१७ आधुनिक अर्जुनों के प्रहार (१) २३४ ते २४७

उत्कर्ष और अधःपतन–२३४, सर्वशास्त्रमयी "गीता"–२३५, "गीता" की अपूर्वता–" २३५, आधुनिकों की शंकाएँ–२३६, परस्पर विरोधी कर्तव्य–२३७, क्षत्रिय का स्वधर्म–२३८ स्वजन हत्या का डर–२३९, निष्काम कर्म–२४१, व्यक्तिधर्म और समष्टिधर्म–२४२, निःशंक अर्जुन की विनती–२४३, "गीता का हेतु"–२४४, दो प्रमुख शंकायें–२४४, समाज के अधःपतन का डर–२४४, नीतिमत्ता पर युद्धों का असर–२४५.

प्रकरण–१८ आधुनिक अर्जुनों के प्रहार (२) २४८ ते २६५

समाज के पतन की भीति–२४८, धर्माधर्म का निर्णय–२४९, व्यक्ति का मत और शास्त्र का मत–२४९,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समष्टि के हित का विचार–२५०, दो अनिष्टों में से पसन्द–२५२, मानवजाति के कल्याण का विचार–२५२, सड़े हुये अंग के लिये शस्त्रक्रिया–२५३, समाज शरीर के आरोग्य के लिये– २५३, नीतिमत्ता की संभाल का कार्य–२५४, भयमुक्ति–२५५, गीता–अमूल्य और अद्‌भुत विरसा–२५६, आचार्यों के भाष्य–२५६, मानवमात्र का मार्गदर्शक ग्रन्थ–२५७, सामाजिक पुनर्रचना पर पश्चिम का असर–२५८, जापान की राष्ट्रीय अस्मिता ५५८, मौलिकता का अभाव–२५९ विश्व के दो वैचारिक प्रवाह–२६०, व्यक्तिस्वातंत्र्य–युक्त लोकतन्त्रवाद -२६०, भयस्थान–२६२, अनिष्ट–परिणाम–२६२, साम्यवाद–२६४, दोनों विचार धाराएँ अपूर्ण और हानिकर-२६४ समस्यओं का एकमेव उकेल–२६५.

प्रकरण–१९ उपसंहार २६६ ते २८२

भौतकवाद और विज्ञान–२६६, विज्ञान का विवेकपूर्ण उपयोग–२६७, मौतिकवादी और भौतिकशास्त्री–२६७, जगत चैतन्यमय या जड़ ?–२६८, स्वार्थयुक्त लोकतन्त्र-वाद–२६९, साम्यवादी विचारश्रेणी–२७१, रूढि चुस्त साम्यवाद–२७१, दोनों विनाशक प्रवाह–२७२, "मुरारे–स्तृतीयः पन्थाः"–२७३, हक और कर्तव्य–२७४, अडिग आत्मविश्वास–२७५, परार्थ कर्म--२७५, जगत को–सुधारने के लिये "गीता" की आवश्यकता–२७६, बुद्धि की महिमा–२७७, कायदे का खोखलापन--२७७, उदात्त स्वार्थवाद–२७८, "गीता" द्वारा उपदिष्ट अध्यात्मवाद--२७९ सच्चा कृष्णभक्त–२८०, मानवता की पूजा--२८१,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

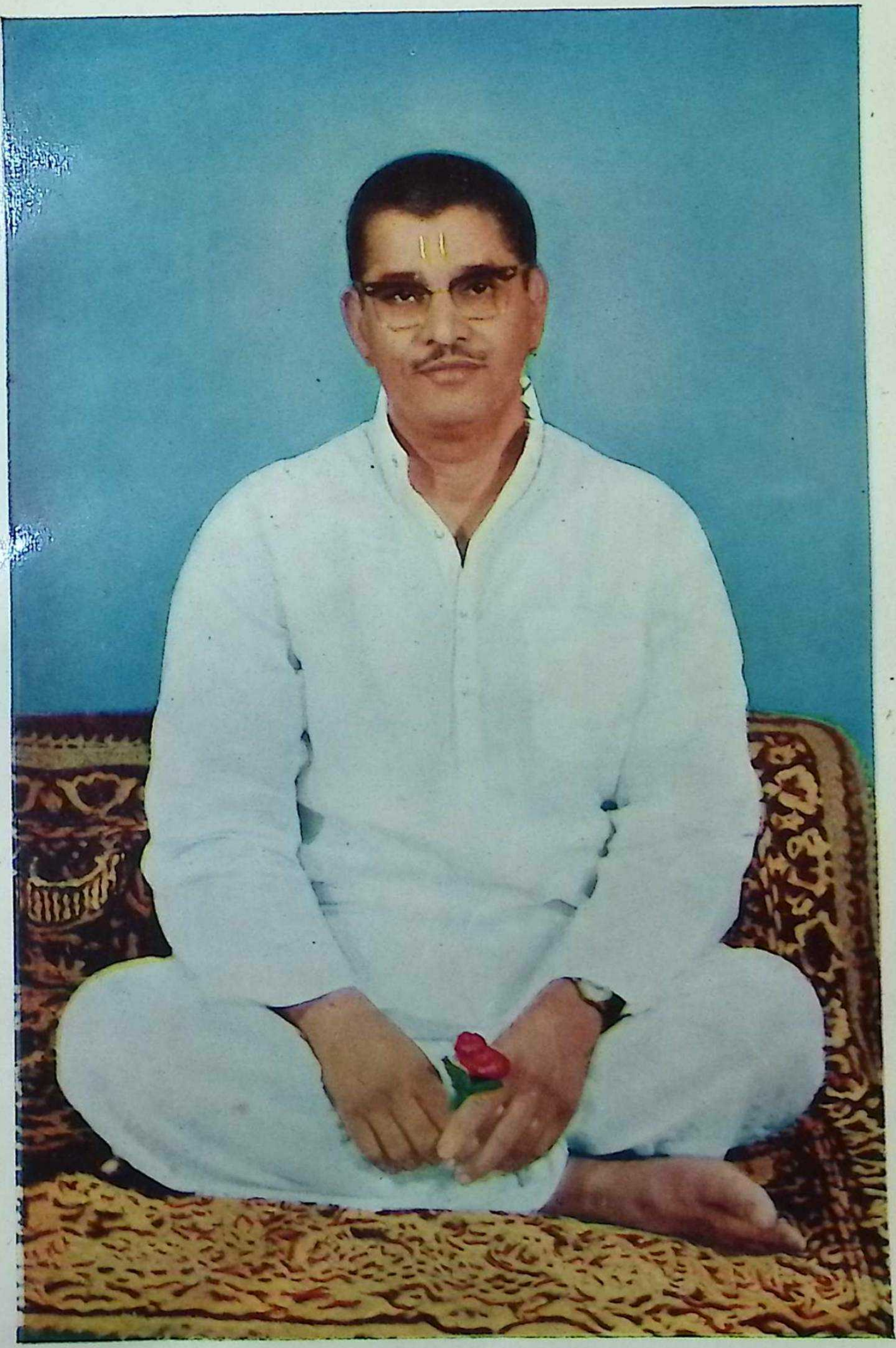

प्रातःस्मरणीय पू. श्री पांडुरंग शास्त्री आठवले.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपोद्घात

श्रीकृष्ण चरित्र महिमा

गत वर्ष हम 'पवनः पवतामस्मि...' के श्लोक का पारायण करते थे। शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ मर्यादा पुरुषोत्तम, ऋषिजन-प्रिय भगवान श्री रामचन्द्र जी की लीला का वर्णन किया था। इस वर्ष हम 'वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि...' श्लोक का पारायण करेंगे, क्योंकि सर्व जन-प्रिय योगेश्वर भगवान श्री कृष्णचन्द्र की जीवंत जीवनलीला का वर्णन कर, हमें भगवान वासुदेव का चरित्र पढ़ना है।

आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व इस धरती पर एक अत्यन्त अलौकिक और अद्भुत प्रसंग उपस्थित हुआ था; वह यह कि धर्म, न्याय और नीति के लिए आजीवन लड़ने वाले एक अलौकिक और उत्कृष्ट प्रतापी व्यक्ति ने भारत में जन्म लिया था। वह व्यक्ति ही सर्वजन-स्वजन श्रीकृष्ण हैं।

काल का पुरुषार्थ प्रत्येक वस्तु में से रस खींच लेने का है। काल प्रत्येक वस्तु को नीरस बनाता जाता है; वह उसमें प्रवीण है-'कालः पिबति तद्रसम्'। आज के स्मरणीय प्रसंग को कल कोई स्मरण नहीं करता, फिर भी एक ऐसे अलौकिक व्यक्ति का महानचरित्र विद्यमान है जिसको पाँच-पाँच हाजर वर्ष बीत जाने पर भी काल नीरस नहीं कर सका। काल का पुरुषार्थ जहाँ असफल हुआ, काल जहाँ पराभूत हुआ, जिसमें से वह रस ही समाप्त नहीं कर सका ऐसा, महान् उत्कृष्ट और उदात्त जीवन श्री कृष्णचन्द्र का है। पाँच हजार वर्ष पूर्व उस दिव्य और तेजस्वी विभूति के जीवन का मानव हृदय पर जैसा शासन चलता था, वैसा ही आज भी चलता है। पाँच हजार वर्ष तक जिसका व्यक्तित्व टिका हुआ हो और जनता के हृदय पर जिसका आधिपत्य चलता हो, ऐसा दूसरा कोई व्यक्ति इतिहास में नहीं दिखाई पड़ता। आज हम दूर दूर से इतनी सख्या में आकर एकत्रित हुऐ हैं, इसका कारण श्रीकृष्ण चरित्र का आकर्षण ही है।

निर्गुण-निराकार ने सगुण-साकार-रूप धारण कर श्रीकृष्ण के रूप में जन्म लिया। पाँच हज़ार वर्षों से श्रीकृष्ण की लीला का वर्णन सतत होता ही रहा है। लोग उनकी लीला का वर्णन करते थकते ही नहीं! उनकी लीला के श्रवण और कीर्तन भारत में सतत होते रहे हैं। केवल सामान्य और भावना-प्रधान जन ही गाते हैं, ऐसा नहीं बल्कि नारद और शुकदेव जैसे महा-मुनि भी कृष्ण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की लीला का वर्णन करते हुये ऐसे तल्लीन हो जाते थे कि उन्हें अन्य किसी बात की सुध बुध ही नहीं रहती थी। अन्य कई ऐसे लोगों को 'कृष्ण' नाम की ऐसी लगन लगी कि वे ऐहिक सुखों को लात मारकर कृष्ण के जीवन का रहस्य सुलझाने के लिए आजीवन बन में जा बसे। आज बीसवीं सदी में भी ऐसे बहुत से उत्कृष्ट बुद्धिमान लोग हैं जो कृष्ण भक्ति के रंग में रंगकर अधिभौतिकता के नृत्य से चकित न होकर, अपने सर्वस्व का त्याग कर, कृष्ण के जीवन-संदेश के प्रचारार्थ समाज मे विचरण कर रहे हैं। इन बातों को तो जाने दीजिए, पर जिस जड़ भूमि पर उस महान विभूति ने जन्म लिया और जिस पर वे नाचे-कूदे, वह भी कृष्णमय बन गयी। वह चिन्मय भूभाग ही गोकुल और मथुरा हैं। इसीलिए आज भी गोकुल, मथुरा और वृंदावन कृष्ण-भूमि के रूप मे पहचाने जाते हैं। ऐसे महान् अलौकिक और अद्भुत व्यक्ति के चरित्र का निरूपण करने की हिम्मत आज से हम करनेवाले हैं; यह सोचते ही अंतःकरण काँपने लगता है, दिल कातर हो जाता है।

भगवान श्री राम को हम मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में पहचानते हैं। जब कि भगवान श्रीकृष्ण तो पूर्ण पुरुषोत्तम ही हैं। श्रीकृष्ण पूर्णावतार थे। तेज भले ही वही हो किन्तु सुबह के और दोपहर के सूर्य में अन्तर होता है। सुबह हम सूरज की ओर देख सकते हैं पर दोपहर को सूर्य के सामने आँख नहीं कर सकते। इसी तरह भगवान श्री राम और श्रीकृष्ण अवतारी पुरुष ही हैं, पर दोनों के जीवन-कार्य की ओर दृष्टिपात करने पर मालूम होगा कि दोनों में सुबह और मध्याह्न के सूर्य जितना अन्तर है। भगवान-श्रीकृष्ण जैसी महान विभूति, उनके चरित्र जैसा महान् चरित्र केवल महाभारत में ही नहीं, सारे जगत में कहीं भी नहीं दिखाई पड़ता। कल्पित पुरुषों के भी शिरोहार पर बैठें, ऐसे वे हैं!

आदर्श मूर्ति श्रीकृष्ण

इस तरह भगवान श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व ऐसा है जोजगत के ऐतिहासिक और काल्पनिक महापुरुषों में भी अग्रस्थान पर आयें। एक ही व्यक्ति में इतने गुण, गुणों की ऐसी विविधता, गुणों का ऐसा संग्रहालय अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। विख्यात नैपोलियन महा पराक्रमी और अतीव बुद्धिमान था परन्तु पराक्रम और बुद्धि से हजार गुनी स्वार्थ वृत्ति, स्वार्थ परायणता उसमें थी। नेपोलियन का प्रत्येक पराक्रम स्वार्थ-युक्त था। उसके सम्पूर्ण जीवन में स्वार्थ-परायणता के ही दर्शन होते हैं। जब कि भगवान श्रीकृष्ण के जीवन में इसके विपरीत ही बात देखने को मिलती है। श्रीकृष्ण जैसा पराक्रमी व्यक्ति ढूँढने पर भी नहीं मिलेगा। क्या था उनका पराक्रम और कितनी अलौकिक बुद्धि! जो करने का निश्चय किया, सभी कुछ किया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ताका हुआ तीर चलाया ही। अपनी अप्रतिम बुद्धि से राजनीति और रणक्षेत्र में उन्होंने हमेशा विजय ही प्राप्त की है, पराजय तो सपने में भी किसी क्षेत्र में नहीं देखी; फिर उनके जीवन में स्वार्थ का न्यून अंश भी कहीं दिखायी नहीं देता।

कृष्ण निःस्वार्थ जीवन की आदर्श मूर्ति हैं। भगवान श्रीकृष्ण के जीवन में महान नेपोलियन के पराक्रम, वाशिंगटन के स्वार्थ–त्याग और बिस्मार्क तथा ग्लेडस्टन आदि की बुद्धिमत्ता का सुंदर सामञ्जस्य सधा है। पराक्रम, बुद्धि और निःस्पृहता – ये तीनों गुण विश्व में प्राणिमात्र को आकर्षित करने वाले हैं। इन तीनों गुणों का एक ही समयावच्छेद मेल श्रीकृष्ण में हुआ है। उत्कृष्ट त्रिवेणी–संगमस्थली कृष्ण के जीवन में है। इसीलिए उनके सम्बन्ध में कहते हुए दिल कातर होता है।

परमार्थ मय जीवन बिताने वालों में भी श्रीकृष्ण अग्रस्थान में विराजते हैं। भगवान बुद्ध ने बुद्धि द्वारा अपने मत का प्रचार किया; ईसा ने सौजन्य से तथा मोहम्मद पैगम्बर ने निश्चय से। भगवान श्रीकृष्ण में – निश्चय, बुद्धि और सौजन्य, इन तीनों बातों का सुंदर और सुभग समन्वय देखने को मिलता है। कितना महान, भव्य और अलौकिक चरित्र हैं!

चरित्र की विलक्षण गूढ़ता

कई वस्तुयें ऐसी होती हैं, जिनका सौन्दर्य शब्द–स्पर्श से भी कुम्हला जाता है। शब्द का स्पर्श (वर्णन) होते ही उनके चरित्र की कोमलता समाप्त हो जाती है। ऐसे जीवन विरल और अलौकिक होते हैं। श्रीकृष्ण का जीवन भी वैसा ही है। ऐसे जीवन को तो दूर से ही देखते रहना और उसका संकीर्तन करते रहना ही दिव्यातिदिव्य बात मालूम होती है। श्रीकृष्ण का ज़ीवंत–जीवन भी ऐसा ही सुकोमल है। परन्तु "कृष्ण" शब्द को 'शब्द ब्रह्म' मानने के बाद उसका शब्द में भी अवतरण होना चाहिए। उनके जीवन को शब्दों में उतारना चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण का जीवन, उनका चरित्र, व्यवहार में जिस तरह प्रवर्तमान है, उसमें भी एक प्रकार की विलक्षण गूढ़ता देखने को मिलती है! उनके जीवन में गूढतम विलक्षणता भरी है। इस गूढ़ता की प्रतीति बुद्धि को भी नहीं होती। यह गूढ़ता भी कितनी अलौकिक है!

समयाभाव के कारण हम श्रीकृष्ण के जीवन की गूढ़ता के दो तीन दृष्टांत ही देखेंगे। महाभारत के 'अश्वमेधिक पर्व' में एक बात है। द्वेष से भरकर अश्वत्थामा ने उत्तरा के गर्भ में स्थित परीक्षित को मारने के लिए ब्रह्मास्त्र छोड़ा, जिसका निवारण करना किसी से शक्य न था। जब व्यास जी के आश्रम में अश्वत्थामा ने उत्तरा के गर्भ पर ब्रह्मास्त्र प्रयोग का अपना मनोरथ व्यक्त किया था, उसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समय भगवान श्रीकृष्ण ने कहा था, "मैं तेरे मनोरथ को विफल करूँगा।" तदनुसार पाण्डवों के इस तंतु को बचाने के लिए श्रीकृष्ण ने अथक परिश्रम किया! उस अस्त्र के प्रभाव से अंतःपुर में घबराहट फैल गई थी। उत्तरा अत्यन्त व्याकुल हो गई थी। इस करुण प्रसंग पर श्री कृष्णने अति शीघ्र जाकर उत्तरा को अभय प्रदान किया। ब्रह्मास्त्र एकदम आ पहुँचा। उत्तरा को सांत्वना देते हुए जलांजलि लेकर राजनीतिज्ञों के गुरु श्रीकृष्ण ने गम्भीर स्वर से प्रतिज्ञा की। श्रीकृष्ण की यह प्रतिज्ञा पठनीय है :-

"प्रतिजज्ञे च दाशार्हः तस्य जीवितमच्युतः।
अब्रवीच्च विशुद्धात्मा सर्वं विश्रावयन् जगत्॥
न ब्रवीम्युत्तरे मिथ्या सत्यमेतद् भविष्यति।
एष संजीवयाम्येनं पश्यतां सर्वदेहिनाम्॥
नोक्तपूर्वं मया मिथ्या स्वैरेष्वपि कदाचन्।
न च युद्धात्परावृत्तः तथा संजीवतामयम्॥
इत्युक्तो वासुदेवेन सबालो भरतर्षभ।
शनैः शनैर्महाराज प्रास्पंदत सचेतनः॥"

"जीवन में मैं कदापि झूठ नहीं बोला। अरे, मजाक में भी झूठ नहीं बोला, पराजय के विचार से कभी युद्धभूमि से नहीं भागा। यदि यह सब सत्य हो तो गर्भस्थ यह बालक जीवित हो जाय"। इस गम्भीर वाणी में सत्य की प्रभावशीलता कैसी होगी कि इस अवसर पर प्रकृति के नियम का उल्लंघन हुआ और गर्भ में मृत्यु की शरण गया बालक जीवित हो गया—ऐसी है योगेश्वर श्री कृष्ण की अद्भुत लीला! पूर्णतः सत्य के आविष्कार का ऐसा प्रसंग इतिहास में अन्यत्र पढ़ने को नहीं मिलेगा।

भगवान श्रीकृष्ण के जीवन की ओर यदि स्थूल दृष्टि से देखेंगे तो यह प्रतिज्ञा और इस प्रसंग का वर्णन हास्यास्पद लगेगा। जो व्यक्ति सीने पर हाथ रखकर बेधड़क ऐसा कहता है कि जीवन में कभी मजाक में भी मैंने झूठ नहीं बोला, उस व्यक्ति को जीवन में अनेक बार विषम और गम्भीर प्रसंगों में रूढ़ अर्थ सें मिथ्या वाणी का उच्चारण करते देखते हैं। स्वयं ही झूठ बोलें हों, ऐसा नहीं पर दूसरों को भी जबरदस्ती मिथ्या भाषण कराते हैं।

धर्मात्मा युधिष्ठिर जैसे सत्पुरुष से भी द्रोण जैसे महा तेजस्वी चरित्र को समाप्त करने के लिए वे झूठ बुलवाते है। भगवान, युधिष्ठिर से कहते हैं "इस भीषण संहारसे पाण्डव-सेना को यदि बचाना है तो '...नरो वा कुञ्जरो वा' कहो। इस प्रकार धर्मराज के रूपमें पूज्य धर्म मूर्ति युधिष्ठिर के मुख से भी वे यह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मिथ्या उच्चार करवाते हैं। उनकी वाणी को असत्य शब्दों से भ्रष्ट करते हैं। उनके जीवन में ऐसे अनेक प्रसंग हैं। एक दूसरा प्रसंग भी देखें—

जरासंध एक महान सम्राट था। वह अत्यन्त प्रभावशाली और शक्ति सम्पन्न शासक था। उसके सारे प्रभाव के आधार दो पराक्रमी सेनापति हंस और डिंभक थे। ये दोनों उसके दायें और बाँये हाथ जैसे थे। जब तक ये दोनों सेनापति हों तब तक किसी की भी ताकत नहीं कि जरासंध को हरा सके, उसके पास पहुँच भी सके। हंस और डिम्भक दोनों दिली दोस्त थे। दोनों को एक दूसरे के प्रति असीम प्रेम था। मित्र प्रेम और मित्रता के अनेक आदर्शों और अनुकरणीय उदाहरणों से भारतीय कथा-संग्रह भरपूर है। हंस और डिम्भक की मैत्री भी ऐसी ही निःस्वार्थ और विशुद्ध थी। जब तक दिल साफ होता है, दोस्ती तब तक ही टिकती है। अन्य किसी रीति से फूट शक्य न होने के कारण मित्र प्रेम की अभेद्य दीवार को निर्मित करने वाले एक को खत्म करने का श्रीकृष्णने निश्चय किया। जरासंध की पराजय के लिए हंस और डिम्भक को दूर करना अनिवार्य था। इस हेतु की सिद्धि के लिए भगवान ने एक अद्‌भुत उपाय ढूँढ निकाला।

लड़ाई चल रही थी, तभी भगवान ने एक नकली हंस को मारा और अफवाह फैला दी कि हंस मारा गया है। डिम्भक के कानों में इस अफवाह के पहुँचते ही वह यमुना की ओर भागा और मित्र शोक से विव्हल हो कर उसने यमुना में कूदकर आत्म-हत्या की। डिम्भक मर गया तो भगवान तुरन्त हंस के पास जा पहुँचे और हंस का व्यंग्य वाणी में मर्म वेधक उपहास करते हुये बोले, " अरे, तू कैसा विचित्र है! डिम्भक ने तो तेरी मृत्यु की अफवाह सुनकर ही यमुना में कूद कर अपने जीवन का अंत कर दिया, लेकिन तुझे डिम्भक के सचमुच मर जाने पर भी कुछ नहीं होता? डिम्भक की मृत्यु का समाचार प्रत्यक्ष मेरे मुखसे सुनने पर भी तू स्वस्थ खडा है! तू क्यों नहीं मर गया!" कृष्ण के ऐसे व्यंगात्मक वचनों को सुनकर मित्रप्रेम – प्रदर्शन के लिए हँस ने भी यमुना में कूद कर आत्मघात किया। इस प्रकार कृष्ण ने जरासंध के दोनों हाथों को काटकर उसका बल क्षय किया था।

इस प्रकार अनेक गम्भीर प्रसंगों में भगवानने मिथ्या भाषण किया है। बोलते समय उनके चेहरे की काँति में जरा भी फर्क नहीं पड़ता था। कुछ विशेष कर रहे हैं – ऐसा आभास वाला भाव न था। वे जैसे लीला करते थे वैसे ही खेल ही में वे कार्य करते थे। वास्तव में भगवान श्रीकृष्ण का जीवन अतिगूढ़ और विसंवादी होते हुये भी लीलामय है।

भगवान कहते हैं कि 'मैंने रणक्षेत्र से कभी पलायन नहीं किया', जब कि ऐसा कहने वाले श्रीकृष्ण जरासंध के अठारहवें आक्रमण के समय राजधानी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

छोड़कर भाग गये थे। भागवत और हरिवंश में ऐसा स्पष्ट वर्णन है। महाभारत में युधिष्ठिर के पास श्रीकृष्ण स्वयं स्वीकार करते हैं कि 'उस समय मैं अपने यादव परिवार को लेकर सौराष्ट्र की ओर भाग निकला था।' यों व्यावहारिक दृष्टि से देखें तो श्रीकृष्ण की उक्ति मिथ्या होते हुये भी निःसर्ग ने उसमें कैसा अजीब जादू किया और विश्व को सत्य का कितना महान दर्शन कराया है! जो कृत्य भगवान श्रीकृष्ण ने किये, वे यदि अन्य किसी ने किये होते और श्रीकृष्ण के जैसी प्रतिज्ञा करता तो वह अवश्य ही मिथ्या भाषी, कपटी और दम्भी अथवा अधार्मिक माना जाता, जब कि भगवान ने ऐसे कृत्य किये फिर भी कोई उन्हें मिथ्या भाषी कहनें की धृष्टता नहीं कर सकता। हम तो शायद दुर्बल, निर्बल और याचक हैं इसलिए उनकी ऐसी आलोचना नहीं कर सकते हों, ऐसा सोचने की हिम्मत भी नहीं कर सकते हों परन्तु तटस्थ दृष्टिवाले ऋषि मुनि, तपः स्वाध्यायनिरत महात्मा, महान पण्डित गण तथा जगत के साँस्कृतिक इतिहासकार भी भगवान कृष्ण के ऊपर ऐसा आक्षेप नहीं कर सकते। इसीलिए ऐसा लगता है कि इस बात का अर्थ कुछ और ही होना चाहिए। बाह्यतः विसंवादी लगे, ऐसा जीवन प्रभु का है।

भगवान कृष्ण ने जन्म क्यों धारण किया? "धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे," धर्म की पुनर्स्थापना के लिए। महाभारत में भगवान श्रीकृष्ण स्वयं ही उत्तंक से कहते हैं कि मेरा जन्म धर्म रक्षण के लिए ही हुआ है। भगवान के जीवन का मुख्य हेतु मात्र धर्म रक्षण ही था।

सचमुच, श्रीकृष्ण का लौकिक जीवन बहुत विसंवादी है। जिन्हें योगेश्वर श्रीकृष्ण कहा जाता है, उन्हें हम रास लीला करते भी देखते हैं। इनके जीवन में रास लीला का यह प्रकरण अद्‌भुत है। आज हम जैसे आधुनिक लोगों को ऐसी बातें पढ़कर भगवान के चरित्र पर शंका होने लगती है। आज के समालोचकों को ऐसी शंका उत्पन्न होती है तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। राजा परीक्षित को भी इसी प्रकार की शंका उत्पन्न हुई थी। राजा परीक्षित ने शुकदेव जी के सम्मुख यह प्रश्न रखा –

'स कथं धर्मसेतूनां, वक्ता कर्ताऽभिरक्षिता।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन्! परदाराभिमर्शनम्॥'

धार्मिक बन्धनों का निर्माण और रक्षण करने वाला दूसरों की पत्नियों के प्रति ऐसा व्यवहार करे, यह आश्चर्य जनक और शंकास्पद बात लगती है। ऐसी शंका तो अच्छे से अच्छे पण्डितों को भी हुई है। बहुत वर्षों पूर्व बम्बई में एक धर्म--सम्मेलन हुआ था, उस परिषद में एक मिशनरी पादरी ने भी आँग्ल विद्या विभूषित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भारतीय विद्वानों के समक्ष यह प्रश्न उपस्थित किया था कि गोकुल में गोपियों के साथ सार्वजनिक रूप से निंद्य और असभ्य आचरण करने वाला, दही-मक्खन की चोरी करनेवाला और राजनीति के विविध दावँ चलने वाला कपटी कृष्ण तथा गीता गानेवाला कृष्ण एक ही किस प्रकार हो सकता है? इस प्रश्न ने पण्डितों को व्याकुल कर दिया और अंत में उन पण्डितों ने ऐसा विचित्र ऐतिहासिक संशोधन करके संतोष किया कि कृष्ण तीन हुये हैं किन्तु ऐसा मानने वाले श्रीकृष्ण के जीवन की गूढ़ता और विसंवादिता को समझ नहीं सके।

श्रीकृष्ण-जीवन के रास क्रीडा-प्रकरण की उपेक्षा नहीं की जा सकती। कैसा भव्य और अलौकिक प्रसंग है वह! उसने भक्ति-शास्त्र में उत्कृष्ट स्थान प्राप्त किया है। बुद्धिमान आचार्य और भक्त जिन्होंने श्रीकृष्ण के जीवन का सूक्ष्मता से और आलोचनात्मक दृष्टि से अध्ययन किया है, वे इस विसंवादिता के होने पर भी श्रीकृष्ण को पर ब्रह्म मानते हैं। इसलिए अवश्य ही उनके जीवन की भव्यता पहचानने के लिए गहरे पानी में उतरने की आवश्यकता है।

आदि शक्ति श्रीकृष्ण

भगवान की जीवन लीला ही ऐसी है। धार्मिक, नैतिक, व्यावहारिक और आध्यात्मिक जीवन के भिन्न भिन्न प्रवाहों में भगवान के जीवन में पग-पग पर विरोधाभास महसूस होता है। उनका जीवन अति गूढ़ है। मानव देह धारण करने वाले, मानवी मर्यादाओं का पालन करने वाले और मानव नियमों की मर्यादा को मान देने वाले श्रीकृष्ण अर्जुन के रथ पर बैठ कर सीने पर हाथ रख कर बेधड़क कहते हैं :

"अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा॥"
"अहं आदिर्हि देवानाम्" "अहं बीजप्रदः पिता॥"

अच्छे से अच्छे बुद्धिमानों की बुद्धि भी चक्कर खा जाय, ऐसी यह बात है। इन वाक्यों को बोलते समय उनके चेहरे की कान्ति पर कुछ भी अन्तर नहीं आया या लेश मात्र भी संशय के चिह्न देखने को नहीं मिले। यों तो मानव-देह धारण की थी फिर भी उन्होंने बेधड़क कहा कि जगत का पिता मैं हूँ। देवों का आदि मैं हूँ। श्रीकृष्ण का यह कथन आश्चर्य निर्माण करता है। अनंत शक्तियों में से कोई शक्ति भी जिनके शरीर पर असर नहीं कर सकती थी, ऐसे भगवान श्रीकृष्ण की देह को भ्रान्त मानें या निर्भ्रान्त? यह प्रश्न विद्वानों को सता रहा है। उस कृष्ण की गाई हुई गीता भी ऐसी ही गूढ़ है। गीता में श्रीकृष्ण के जीवन सिद्धान्तों के प्रयोगों के अनुभवों का सार है। इसीलिए तो अनादि काल से आद्य शंकराचार्य से लेकर आज के पण्डितों तक ने गीता में से कुछ न कुछ तत्त्व-शोधन किया ही है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गूढ़ चरित्र का वाचन और उसके साथ के सम्बन्ध याने गूढ़ता के साथ सम्बन्ध, तथा गूढ़ तत्त्वों को सुलझाने का प्रयत्न करना है।

हमारी संस्कृति हमें ऐसा नहीं कहती कि बुद्धि के द्वार बंद करके ऐसे चरित्रों को पढ़ो। भगवान कृष्ण ने भी अर्जुन को गीता का उपदेश देने के बाद अंत में यही कहा कि मैं जो मानता हूँ, वहीं मैंने तुम्हें कहा है। अब इस सम्बन्ध में तुम अपनी बुद्धि का प्रयोग करो–

"विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु।"

आज से एक माह पर्यन्त हम भगवान को नमस्कार किया करेंगे, नैतिक और सांस्कृतिक अविष्कार के लिए हम उसकी ओर देखेंगे। हम तो श्रीकृष्ण भगवान को भी यही कहेंगे कि प्रभो! तुम यहाँ उपस्थित नहीं रहोगे, यह नहीं हो सकता। तुमको हमारे सर्टिफिकेट (प्रमाण – पत्र) की आवश्यकता नहीं। स्वयं अपना वर्णन सुनने के तुम भूखे नहीं हो। यहाँ तुम्हारी संतान तुम्हारे जीवन की विसंवादिता और गूढ़ता में प्रवेश करके कुछ सुलझा कर तत्त्व संशोधन करनेका प्रयास कर रही हैं। ऐसे कार्य में अपनी संतानों की सहायता करने तुम उपस्थित रहो, ऐसा हम तुमसे प्रेमपूर्वक कहते है। हमें आशा है कि आप अवश्य हमारा निमंत्रण स्वीकार करके यथेच्छ रूप में आ विराजेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दूसरा प्रकरण

"अधःपतित ब्राह्मण्य"

अवतार की भूमिका

मानव-मन जब यह भूल जाता है कि 'मैं कौन हूँ ?' तब आत्म विस्मृति होती है। परिणामतः अनैतिक जीवन का आरम्भ हो जाता है और उसके फलस्वरूप मानव समाज का नैतिक अधःपतन हो जाता है। ऐसे समय पर धर्म के पुनरुत्थान नीति और धर्म की पुनः स्थापना करने तथा मन और बुद्धि में आत्म ज्ञान के सूर्य का – ज्ञान सूर्य का प्रकाश फैलाने के लिए प्रभु आते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कभी न कभी अंधकार छा जाता है। जब लोगों की नीति मत्ता समाप्त हो जाती है, लोग भोग-विलास में डूब जाते हैं और धर्म तथा नीति का मानव-जीवन से लोप हो जाता है, तो समग्र समाज मे अंधकार फैल जाता है। महाभारत-काल में भी ऐसा ही अनीति-अंधकार छाया हुआ था। मानव की आत्म-निष्ठा समाप्त हो गई थी, विचार मय जीवन दुर्लभ हो गया था, परिणामतः मानवता समाप्त हो गई थी। अनीति के उस अंधकार को दूर करके, मानव को निष्ठा वान, विचार मय, मानवता युक्त बनाकर उसके द्वारा धर्म राज्य की स्थापना करने के लिए भगवान श्रीकृष्णने जन्म लिया था। कृष्ण जैसों को जन्म लेकर कब आना पड़ता है ? प्रत्येक व्यक्ति का जीवन जब अंधकार से व्याप्त हो, कर्तव्य-विमूढता हो, विवेक-हीनता हो तब श्रीकृष्ण का जन्म होता है।

मानव-जीवन को दो दृष्टि कोणों से देखा जा सकता है; नैतिक और भौतिक। नीतिमय जविन व्यतीत करने के लिए त्याग, निष्ठा, श्रद्धा, तपश्चर्या, सहनशीलता आदि की आवश्यकता है। जब कि भौतिक जीवन में उपभोगों का ही प्राधॉन्य होता है।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन की विशिष्ट दृष्टि निश्चित कर लेनी चाहिए। प्रत्येक को विशिष्ट जीवन-दृष्टि मिलनी चाहिए। इस तरह यदि मानव में दृष्टि का स्पष्टीकरण न किया जाय तो मानव के मन में दूसरे वाद (isms) प्रवेश करते हैं।

मानव सत्ता की होड़ में पड़ जाय यह क्या इच्छनीय है ? व्यक्ति वादों की मारामारी में पड़ा कि जीवन छिन्न-भिन्न हो गया समझो ! '**Isms Corrupt people's mind; power corrupts only its possessors.**' सत्ता की होड़

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में पड़ने वाले व्यक्ति या उसके पाँच-दस सहायकों का ही जीवन विनष्ट होता है; जब कि वादों बिजली आबाल वृद्ध के मन को कंपित कर देती है; आबाल वृद्धों के जीवन को उससे हानि पहुँचती है।

महाभारतकार तथा अन्य लोगों की दृष्टिसे भी परमात्मा का उत्कृष्ट, सगुण -- साकार रूप याने श्रीकृष्ण। तब यह प्रश्न होता है कि चराचर व्यापी जगत्पिता प्रभु ऐसा सगुण साकार रूप क्यों धारण करते हैं ? भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने मुख से इस प्रश्न का उत्तर दिया है। भगवान प्रतिज्ञा करते हैं--

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥"

अर्थात् युग युग में जगत्पिता युग पुरुष को एक या अन्य स्वरूप में आना ही पड़ता है। उनके आनेका कारण क्या है ? केवल धर्म की ग्लानि ही नहीं परन्तु अधर्म का अभ्युदय भी है। साधुओं के, सज्जनों के संरक्षणार्थ और धर्म की प्रस्थापना के लिए ये युग पुरुष युग युग में जन्म लेते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण को भी हम युग पुरुष कहते हैं। युग पुरुष के सभी लक्षण उनमें थे। उनमें अपूर्णता का अंश तक देखने को नहीं मिलता। उनके जैसा पूर्ण युग पुरुष जिसको कि अपूर्णता ने किसी भी क्षेत्र में स्पर्श न किया हो, कोई कहीं भी देखने को नहीं मिलता और इसीलिए आज हजारों वर्षों के बाद भी हम उस ईश्वर के अवतार का चारित्र सुनने के लिए इतनी संख्या में, इतनी रात्रि में और इस ऋतु में एकत्रित होते हैं। 'कृष्ण' कृष्ण नामक कोई व्यक्ति विशेष नहीं थे, वे तो चराचर व्याप्त आत्म तत्त्व के मूर्तिमंत रूप ही थे।

भारतीय संस्कृति का प्राण – ब्राह्मण

भारतीय संस्कृति की समाज रचना वर्णाश्रम धर्म पर हुयी है। भारतीय संस्कृति के अनुसार समाज चार वर्णों का बना है। उसमें संस्कृति के रक्षण के लिए जो एक खास वर्ग खड़ा किया गया है, वह है ब्राह्मण-वर्ग जो तपस्या मय, ज्ञान मय और त्याग मय है, तेजस्वी और आध्यात्मिक जीवन जीता है, जो मानव जीवन के स्वाभाविक विकार -- Natural instincts अर्थात् अंतःकरण में भरी हुयी सहज वासनाओं पर शासन चला सकता है, वैभव की जो परवाह नहीं करता, जिसमें अहंकार का नाम नहीं और जिसका जीवन दूसरों के कल्याण के लिए है। भारतीय संस्कृति ने समाज और संस्कृति के रक्षण के लिए इस वर्ग को खड़ा किया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और टिकाया था। आज इस वर्ग की तुलना पाश्चात्य संशोधक और हमारे बहुतसे लोग (प्याऊ का पानी पीने वाले; 'साहब' को गुरु मानने वाले) जिनको कि अनुकरण के सिवाय कुछ आता ही नहीं, वैसे ही हम तुम भी यूरोप के पतित, सुख-लोलुप निरुद्यमी - भिक्षुक के समान उससे बुरा व्यवहार करते हैं और उसे दुत्कारते हैं। वास्तवमें उन ज्ञानी ब्राह्मणों का समाज पर अद्भुत प्रभाव था। उनके कर्तृत्व के परिणाम से ही आज हम इकठ्ठे हो सके हैं। अतः उन्हें तिरस्कृत करना ही बड़ी भूल है।

मानव जीवन देवत्व और पशुत्व युक्त है। मनः सामर्थ्य पर अटल विश्वास और श्रद्धा रखकर मानव जीवन में से पशुत्व को बाहर फेंककर (पशुत्व को दबाकर) उदात्त, निर्मल जीवन जीना जो सिखाता है ऐसे ब्राह्मण पर ही तो समाज उन्नति की आधार शिला रखी गयी है। इन ब्राह्मणों में जो उत्कृष्ट कर्तव्य निष्ठा थी, वैसी कर्तव्य-निष्ठा जब तक नहीं जागेगी तब तक उत्पादन में कितनी भी वृद्धि करने या अर्थ के समान वितरण की साम्यवाद की बातें करने पर भी कुछ नहीं होगा। जगत में शान्ति स्थापित नहीं होगी। कारण, जब तक काम, क्रोध, मत्सर, लोभ आदि मानसिक विकारों का, जो कि मानव को पशुत्व की ओर खींच ले जाते हैं, नियमन नहीं होगा, तब तक कर्तव्य निष्ठा जाग्रत नहीं होगी और कर्तव्य निष्ठा जागे बिना शांति शक्य नहीं। चाहे कैसा भी दैवी-पुरुष या महा पुरुष क्यों न आवे किन्तु जब तक लोगों के अंतःकरण में कर्तव्य निष्ठा न जागे तब तक राष्ट्र या जगत का कल्याण नहीं हो सकता। समाज की कर्तव्य-निष्ठा जगाने की यह महान जबाबदारी ब्राह्मणों पर छोड़ी गयी है।

'विदुर नीति' में कहा है—

ब्राह्मणानां परिभवात् परिवादाच्च भारत।
"कुलान्यकुलतां यांति वेदस्यातिक्रमेण च॥"

अर्थात् जिसके हाथ में सत्ता और सम्पत्ति नहीं है, ऐसे ब्राह्मण वर्ग को जीवनसे पराभूत करना सरल बात नहीं है क्योंकि ब्राह्मणों में से ब्राह्मणत्व नष्ट होगा तो समाज को संस्कार देने वाला कोई नहीं रहेगा और समाज अंधे की गाड़ी की भाँति जायेगा।

आजकल ब्राह्मणों के प्रति लोग उपेक्षा वृत्ति से देखते हैं। बहुत से लोग ब्राह्मण के बारे में जैसा मन चाहे वैसा बोलते है परन्तु ऐसे लोगों को 'ब्राह्मण' अर्थात् क्या ? यह पता नहीं। "सच्चा ब्राह्मण कभी सत्ता के लिए भटकता नहीं, सत्ता प्राप्त करने का मोह उसे तनिक भी नहीं होता। ब्राह्मण लक्ष्मी के पीछे नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दौड़ता। धन - सम्पत्ति को तत्त्व के सामने तुच्छ मानता है; ऐसे ब्राह्मण को कोई पराभूत नहीं कर सकता।यदि हम ब्राह्मण की निंदा करेंगे, उसकी झूठ मूठ, टीका करेंगे तो उसका अर्थ यही होगा कि हम खानदानी-कुलीन नहीं दुष्ट कुल के हैं।" ऐसी चेतावनी किसी और ने नहीं बल्कि विदुर जी जैसे बुद्धिमान, राजनीति निपुण और निर्भीक क्षत्रिय ने दी है।

विदुर जी के बारे में भी बहुत सी भ्रान्तियाँ (Misunderstanding) चलती हैं। सामान्यतः भक्त अर्थात् भोला, निर्बुद्ध, रंक-ऐसा लोग समझते हैं। हमारे भक्तों के चित्र पर दृष्टि डालेंगे तो भी यह मालूम होगा। वास्तव में ९९ प्रतिशत ऐसा नहीं होता। विदुरजी भक्त थे, यह सही है पर वे ब्राह्मण नहीं थे, दुर्बल भी नहीं थे अथवा निर्बुद्ध और भोले भी नहीं। वे तो एक समर्थ राजनीतिज्ञ थे। कौरवों के एक अग्र गण्य मंत्री थे। हमारे आधुनिक फैशनों में से यह भी एक फैशन हो गया है कि मूल ग्रंथ में किसी के बारे में क्या लिखा है यह; पढ़े बिना हमारी कल्पना में जो आता है, उसे कहते हैं। इस कुटेव के कारण ही तो हम अपने पैर पर ही कुल्हाड़ी मार रहे हैं; अपनी संस्कृति को हीन बना रहे हैं। ब्राह्मण वह है जो धन की कभी भी परवाह नहीं करता। योग क्षेम के लिए किसी भी व्यक्ति, संस्था या राज-संस्था की पराधीनता स्वीकार नहीं करता और अपने अपराध के लिए स्वयं ही सजा सह लेने का जिसमें धैर्य है। ऐसा ब्राह्मण सब के सत्ताधीश राजा पर भी अपनी हकूमत चलाता है। राजा की सत्ता ब्राह्मण के ऊपर नहीं चलती। उसका नियंत्रण कोई भी नहीं कर सकता। भगवान वशिष्ठ का ही उदाहरण लीजिए। राम काल में राज-सत्ता पर उनका नियंत्रण था। ब्राह्मण का काम राजा को उसकी भूल दिखाना होता है। राज-सत्ता की शिखा उसके हाथ में होती है। राजा भूल करते हैं तो ब्राह्मण उनके विरुद्ध आवाज उठाता है। भूल होने पर वह राजा का कान पकड़ता है परन्तु ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व गया कि वह कुछ भी नहीं कर सकता क्योंकि वह निस्तेज दीन, हीन और लाचार बन गया होता है।

ब्राह्मणत्व की महिमा

ब्राह्मण संस्कृति के रक्षक हैं अतः जब तक यह वर्ग खड़ा है तब तक समाज का अधःपतन नहीं होगा। ब्राह्मण में ब्राह्मणत्व रहेगा तब तक समाज, देश या जगत का अधःपतन शक्य नहीं। वेन, असमंजस वगैरह राजाओं का जीवन पुराणों में देखिये और उनका राज सत्ता के साथ का विशिष्ट सम्बन्ध देखिये। अवश्य ऐसा लगेगा कि धन या अधिकार के पीछे न दौड़ने वाला ब्राह्मण ही ऐसा महान कार्य कर सकेगा। ऐसे ब्राह्मण जब नहीं होते तब समाज में संस्कृति का पता नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लगता क्योंकि ब्राह्मण संस्कृति-शरीर की ढाल हैं। क्रान्तदर्शी, तत्त्ववेत्ता आद्य शंकराचार्य जी ने भी गीता भाष्य में ब्राह्मणत्व की महिमा गायी है।

ब्राह्मणत्वस्य हि रक्षणेन रक्षितः स्याद् वैदिको धर्मः।"

अतः यदि समाज का रक्षण करना आवश्यक हो तो ब्राह्मण का रक्षण करना भी आवश्यक है। समाज ज्ञान से जीवित रहा है और समाज यह ज्ञान ब्राह्मण के पास से प्राप्त करता है। यदि ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व रक्षित रहे, यदि ब्राह्मण तेज से, ज्ञान से और सामर्थ्य से जीये तो फिर राज-सत्ता की क्या हिम्मत है कि उसे सजा कर सके? राज-सत्ता उनके पास से किसी भी प्रकार का कर नहीं ले सकती ऐसा स्मृतिकार कहते हैं।

ब्राह्मणों के वर्चस्व पर आक्षेप

यह पढ़कर आज के पण्डितों की (!) ओर से ऐसा आक्षेप आता है कि राज-सत्ता ब्राह्मणों के प्रति पक्षपात रखती थी। राज-सत्ता ब्राह्मणों के ऊपर शासन नहीं चलाती थी। ब्राह्मणों से कर नहीं लिये जाते थे। ब्राह्मणों ने समाज और राज-सत्ता पर अपना वर्चस्व जारी रखने के लिए अपने आप ही ऐसे विशिष्ट अधिकार (Special rights) घुसा दिये थे; प्राप्त किये थे। यह सब Brahmanism (ब्राह्मणवाद) था, ऐसे अघटित और मिथ्या (मनचाहे) प्रहार वे ग्रंथ का आमूलतः अध्ययन किये बिना करते हैं। उस जमाने में ब्राह्मणों को सजा नहीं की जाती थी, ऐसा पढ़ने पर आधुनिक विद्वान 'यह लेख ब्राह्मण पक्षपाती है' ऐसा कहते हैं, पर भले आदमी! जिसको सत्ता-संपत्ति का मोह नहीं उस पर राज-सत्ता किस प्रकार शासन चलायेगी? जो किये हुये अपराध की सजा अपने आप ही भोग लेता हैं, ऐसी जिसकी नैतिक हिम्मत है, उसको भला राज-सत्ता किस प्रकार सजा करेगी? इसमें विशेषाधिकारों की बात ही कहाँ रही?

ब्राह्मणों का आत्म शासन – शंख और लिखित

महाभारत के शांति पर्व में शंख और लिखित नामक दो भाइयों की कथा है। दोनों भाई गुणवान और विद्वान थे। दोनों अलग अलग आश्रम बनाकर जंगल में मंगल करते थे। एक बार लिखित शंख को मिलने उनके आश्रम में गये। उस समय शंख आश्रम में नहीं थे, अतः वे तलाश कर वापस लौटे। वापस लौटते उनकी दृष्टि आश्रम के प्रांगण के बाहर थोड़ी दूर पर जंगल के एक आम के पेड़ पर पड़ी। पेड़ पर सरस, मजेदार आम लगे हुये थे। लिखित की आम खाने की इच्छा हुयी, अतः उन्होंने वृक्ष पर से एक आम तोड़ लिया।

लिखित इस आम को खा ही रहे थे कि इतने में शंख आ पहुँचे। शंख ने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वाभाविक तया ही पूछा, " भाई ! यह आम कहाँ से आया ? वह वृक्ष तो हमारे आश्रम की सीमा में है।" यह सुनते ही लिखित शरमिंदा हो गये, झूठ न बोल सके। उन्होंने कहा, " भाई ! मैने समझा कि यह वृक्ष जंगल का है। अतः मैंने यह आम तोड़ लिया, यह आम आपके आश्रम की सीमा का है इसका मुझे ख़याल ही न रहा। मैंने आपकी आज्ञा के बिना यह आम तोडकर बड़ा अपराध किया है, अतः मुझे मेरे अपराध की सजा दीजिए।"

शंख ने लिखित को समझाने का प्रयास किया, " इसमें कोई विशेष अपराध नहीं हुआ और न किसी सजा की ही आवश्यकता है।" किन्तु लिखित के गले यह बात किस तरह उतरे ? वे तो पहुँचे राज दरबार में और राजा के समक्ष उपस्थित होकर उन्होंने सजा की माँग करते हुये कहा, " मैंने अपने भाई के आश्रम में से एक आम चुराया है इसलिए मुझे सजा कीजिए।"

राजा ने आश्चर्य पूर्वक कहा, " भाई ! तुमने चोरी की है, ऐसी शिकायत किसी ने भी नहीं की, अतः मैं तुम्हें सजा नहीं कर सकता।"

लिखित ने कहा " मैंने चोरी की है और मुझे इसके लिए दण्ड मिलना ही चाहिए। चोरी की सजा क्या है ? यह मुझे बताइये।"

राजा ने कहा, " चोरी करनेवाले के हाथ काट दिये जाते हैं।"

लिखित ने कहा, " तब मेरे हाथ काट डालने की आप आज्ञा दीजिए।" राजा ने इन्कार किया तो लिखित ने अपने आप ही राजा की आज्ञा के विरुद्ध अपने हाथ काट डालने के लिए राजा को बाध्य किया और अपने हाथ कटवा दिये। इस प्रकार अपने किये हुये अपराध की सजा भोगी, तब ही उनके मन को समाधान हुआ।

अंतःकरण की शुद्धता का ऐसा उच्चस्तर जहाँ हो, वहाँ ब्राह्मण को राज–सत्ता की क्या आवश्यकता ? इसीलिए तो उनको अदण्डय माना जाता था। इसमें ब्राह्मणों की विशिष्ट सत्ता या उनके विशेषाधिकार (Special rights) कहाँ से आये ? जो व्यक्ति स्वयं आगे आकर अपनी भूल के लिए सजा माँगता हो उस व्यक्ति को राजसत्ता क्या साज करेगी ? पर देश-विदेश के लोग कुछ लिखते है और प्याऊ का पानी पीने वाले हम उसे गुरु याक्य समझ लेते हैं।

ब्राह्मणों की कर मुक्ति

कर की बात भी ऐसी ही है। ब्राह्मण से कर नहीं लिया जाता था। उससे कर लिया भी कैसे जा सकता है ? ब्राह्मण वित्त--प्राप्ति के लिए बुद्धि कभी नहीं लगाता था। अपनी बुद्धी का व्यापार नहीं करता था। वह अपनी बुद्धि का उपयोग समाज और संस्कृति के रक्षण के लिए करता था। जो व्यक्ति साक्षात्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भगवान को भी प्राप्त करने की सामर्थ्य रखता हो, वह व्यक्ति क्या चंद रुपये नहीं कमा सकता? उसके लिए धन कमाना क्या कठिन बात हो सकती है? उपनिषद पर बुद्धि-व्यय करने वाला क्या जेब नहीं काट सकता? परंतु ब्राह्मण कभी भी पैसे के पीछे नहीं दौड़ता। कंगालियत को वह अपना वैभव माने रहता है अतः ऐसा वर्ग जब तक तेजस्विता से जीवित रहे तब तक समाज का अधःपतन कैसे हो सकेगा? ऐसे ब्राह्मण-वर्ग से राज सत्ता कर किस प्रकार वसूल कर सकती है? इसीलिए जब तक ब्राह्मण-वर्ग मौजूद है तब तक समाज को कोई भय नहीं। इन ब्राह्मणों ने ही भारतीय सँस्कृति जीवित रखी है।

ब्राह्मण का अधःपतन

यदि ब्राह्मण वर्ग तेजोमय न हो, अपने ज्ञान का सदुपयोग समाज और देश की उन्नति के लिए न करता हो तो ऐसे वर्ग से राजा कर तो वसूल कर ही सकता है, इसके अलावा उससे मुफ्त श्रम भी ले सकता है, ऐसा महाभारत कहता है। अतः अधिकार ब्राह्मण वर्ग को नहीं बल्कि **'एतद्गुण विशिष्ट'** ऐसे विशेष गुणवालों के लिए थे। ब्राह्मणत्व सम्पन्न ब्राह्मण के लिए ही ये सब **छूट** थी। ऐसा तेजस्वी ब्राह्मण्य जब तक हो तब तक नैतिक स्थिरता और सांस्कृतिक-निष्ठा समाज में होनी ही चाहिए। अर्थात् ऐसे काल में प्रभु को जन्म लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। प्रभु ने कृष्ण के रूप में जन्म लिया, इसका अर्थ है कि तत्कालीन ब्राह्मण-समाज जैसा होना चाहिए था, वैसा नहीं था, यह सिद्ध होता है।

अब तत्कालीन ब्राह्मण समाज कैसा था? यह देखेंगे। वेदव्यास जी ने ब्राह्मण्य का दारुण अधःपतन चित्रित किया है। सामान्य ब्राह्मण के लिए तो लिखने और बोलने की आवश्यकता ही नहीं, पर एक असामान्य और जगद्वंद्य-ऐसी प्रतिष्ठा उस समय जिनको प्राप्त थी, ऐसे द्रोणाचार्य का चित्र प्रस्तुत करके वेदव्यास जी ने तत्कालीन ब्राह्मण-समाज का चित्र भावी समाज के सामने रखा है।

किसी एक व्यक्ति-सामान्य मानव का अधःपतन अलग बात है पर नेता का अधःपतित होना भयंकर बात है। चातुर्वर्णानुसार ब्राह्मण श्रेष्ठ है, नेता है, और नेता का अधःपतन होता है तो समज का अधःपतन अवश्य होगा। ब्राह्मण तो समाज और सँस्कृति की रीढ़-रज्जु माने जाते हैं और जब यह रीढ़-रज्जु ही टूट जाय तब समाज, देश या सँस्कृति किस प्रकार टिकाई जा सकती है?

द्रोणाचार्य की आर्थिक परेशानी

हमें द्रोणाचार्य पर आक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है पर वेदव्यास जैसे समर्थ व्यक्ति ने जिस रीति से चित्रण किया है, उसे देखते हुए द्रोण के अधःपतन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की बात माननी ही पड़ती है। व्यक्ति को जो विकार अपने वश में रखने होते हैं, वे जब्र स्वयं व्यक्ति पर सवार हो जाते हैं तब उसका अधःपतन न हो, तो और क्या हो !

द्रोणाचार्य कोई सामान्य व्यक्ति न थे, वे भारद्वाज–पुत्र, उच्चकुलोत्पन्न भव्य, दिव्य और तेजस्वी व्यक्ति थे। वे बहुत पढ़े लिखे, उत्कृष्ट और बुद्धिमान थे। राज–कुमार द्रुपद भी उन्हीं के साथ पढ़ते थे। दोनों एक ही गुरु के शिष्य थें और दोनों का अध्ययन एक साथ पूरा हुआ था।

द्रोण ने विवाह किया और संसार (गार्हस्थ्य–जीवन) की शुरुआत की। ज्वलंत बुद्धिमत्ता वाले द्रोणाचार्य ने निर्धनता को ही बैभव मान कर लोगों को मृत –जीवन, बिका हुआ जीवन जीने से रोकने की प्रतिज्ञा की। वे अपना आश्रम स्थापित करके ज्ञान दान कर सादगी से रहने लगे। ऐसी विभूति, द्रोणाचार्य का पतन किस प्रकार हुआ ? यह समझने जैसी बात है। गरीबी में जीवन–यापन करते हुये द्रोण को शायद विकारों ने अपने आदर्शों से चलायमान नहीं किया होगा, लेकिन सम्पूर्ण जगत को जिसने अपने स्नेह पाश में बाँध रखा है, ऐसे पुत्र – प्रेम के जगद्व्यापी कोमल तंतु ने अग्नि जैसे तेजस्वी द्रोण को भी बंधन में जकड़ लिया। वे उस पाश का विच्छेद नहीं कर सके। परिणामतः पुत्र–ममता ने उनको तत्व–च्युत किया। जिस प्रसंग ने द्रोण को अस्थिर किया, उस प्रसंग को सहृदयता से देखिये...

अन्य बालकों को दूध पीते देख द्रोण–पुत्र अश्वत्थामा ने भी दूध पीने का हठ पकड़ा। गरीब ब्राह्मण के घर में पुत्र के इस आग्रह को पूरा करने के लिए दूध नहीं था। माँ ने बच्चे को बहुत समझाया पर उसने अपना हठ नहीं छोड़ा। अन्त में माँ ने परेशान होकर पानी मे आटा घोलकर ‘ ले, यह दूध पी ले ’ कहकर आटे वाला पानी उसे पिलाया। द्रोण यह दृश्य न देख सके। उनकी अंतरात्मा व्याकुल हो उठी। पुत्र–प्रेम के बंधन ने उनको व्यग्र कर दिया था। दूसरों के बच्चे कटोरे भर भर कर दूध पियें और अपने बच्चे को दूध की एक बूँद भी न मिले ! द्रोण को अपनी निर्धनता पर क्रोध आया और वे गरज उठे :

‘ द्रोणं धिगस्त्वधनिनं यो धनं नाधिगच्छति।
पिष्ठोदकं सुतो यस्य पीत्वा क्षीरस्य तृष्णया।
नृत्यति स्म मुदाविष्ट : क्षीरं पीतं मयाऽच्युत॥ ’

‘ जो धन नहीं प्राप्त कर सकता, ऐसे द्रोण को धिक्कार है। ’ द्रोण की सूक्ष्म भूल तो होगी ही, किन्तु तत्कालीन वैभव-सम्पन्न समाज और राज–सत्ता की भी महान भूल है। अपना समग्र जीवन समाज और संस्कृति के लिए समर्पित करने वाले पर ऐसी विपत्ति ? धिक्कार है तत्कालीन समाज, राज–सत्ता और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैभव सम्पन्न लोगों को कि जिन्होंने दूध जैसी सामान्य वस्तु के लिए द्रोण का अधःपतन होने दिया।

दारिद्रय से तंग आये हुये द्रोण को समाधान नहीं रहा। उनकी आँखों में आँसू भर आये। उनको अपने सहपाठी द्रुपद की याद आयी। द्रुपद ने द्रोणाचार्य को वचन दिया था कि हम दोनों भाई हो गये हैं और यदि मुझे राज्य मिलेगा तो उसमें से आधा राज्य तेरा। उन्होंने सोचा कि '**परोपसवां पापिष्ठा न च कुर्यां धनेप्सया**' धन की इच्छा से पाप युक्त पर सेवा नहीं करूँगा।

वचन देकर बदल जानेका, 'शायद कहा होगा पर अब नहीं,' इस प्रकार माथा खुजलाते हुये कहने का अधिकार तो सिर्फ बीसवीं सदीके लोगों को है। उस समय वचन की बहुत कीमत थी अतः द्रुपद अपना वचन पालन करेगा ही, ऐसे विश्वास के साथ द्रोण आधा राज्य प्राप्त करने के लिए द्रुपद के पास जा पहुँचे।

द्रोण ने द्रुपद के समक्ष जाकर अपने आने का प्रयोजन बताते हुये कहा, 'राजा! तुम मेरे गुरु भाई हो। जब हम दोनों साथ साथ विद्याध्ययन करते थे तब तुमने वचन दिया था, 'यदि मुझे राज्य मिलेगा तो उसमें से आधा राज्य मैं तुम्हें दूँगा। अब तुम राजा हुये हो अतः मैं तुमसे अपने हिस्से का राज्य लेने आया हूँ।'

द्रुपद-द्वारा द्रोण का अपमान

द्रोण की बात सुन कर द्रुपद हँस पड़े और कहने लगे :-

'आसीत्सख्यं द्विजश्रेष्ठ! त्वया मेऽर्थनिबन्धनम्।
न ह्यनाढ्यः सखाऽऽढ्यस्य नाविद्वान विदुषः सखा॥
न शूरस्य सखा क्लीवः सखिपूर्वं किमिष्यते।'

यह उपदेश कर अन्त में कहा-

'एकरात्रं तु ते ब्रह्मन्! कामं दास्यामि भोजनम्।'

द्रुपद ने कहा, "ये सब तो बचपन की बातें थीं। उस समय तो यह सब अपने स्वार्थ के लिए ही मैंने तुम्हें कहा था और दोस्ती की बात करने का भी कोई आधार नहीं क्योंकि कंगाल व्यक्ति सम्पत्ति वान राजा का मित्र हो ही नहीं सकता। मैत्री तो समान व्यक्तियों के ही बीच होती है। तुमको थोड़े दिन यहाँ रहना हो तो रहो और खा पी कर आनंद करो। बाकी राज्य में से भाग लेने का विचार भी मत करो।' ये सब नीति-वाक्य क्या द्रोण नहीं जानते थे? जिन्हें कि द्रुपद समझाता है। द्रुपद आगे बढ़कर कहते हैं, 'अरे द्रोण! तुझे मालूम नहीं कि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राजा, अधिकारी और वैभव-सम्पन्नों के दोस्त होते ही नहीं, वे किसी से हृदय पूर्वक मैत्री की भाषा ही नहीं बोलते। स्वार्थ हो तब तक वे सब कुछ कहेंगे। वे किसी प्रकार के आश्वासन नहीं देंते, यही आश्चर्य की बात है। '

द्रुपद के इन व्यंग्य वचनों को सुनकर द्रोण खिन्न हो गये, उद्विग्नता आ गयी, द्वेष निर्माण हुआ और परिणामतः वे अत्यंत क्रोधित हो गये। द्रोण ने भृकुटि चढ़ा कर द्रुपद से कहा, "वैभव और सत्ता ने तुम को मदोन्मत्त बना दिया है। तुम जैसे राजाओं के लिए ब्राह्मण, वैभव को दुत्कारते हैं। वे स्वार्थ छोड़ कर दूसरों के लिए जीवन-व्यतीत करते हैं, क्या इसीलिए ? लेकिन, राजा ! यह मत भूलो कि जो ब्राह्मण वैभव और सत्ता को ठुकरा सकते हैं, वे ब्राह्मण उसको प्राप्त भी कर सकते हैं।

मृत-जीवी द्रोण

इस प्रकार कुपित द्रोणाचार्य द्रुपद से उसका राज्य छीन लेने के निर्धारण के साथ उसका दरबार छोड़कर कौरव राज्य में आ जाते हैं। भीष्म, द्रोण की शक्ति से परिचित थे। यह अच्छा अवसर है ऐसा देखकर वे उनको कौरव-पाण्डवों को शिक्षा देने तथा उनका गुरु बनने के लिए राज-दरबार में आमंत्रण देते हैं। इस तरह द्रोणाचार्य ने राज-सत्ता का आश्रय स्वीकार किया। द्रोण आश्रित बनते हैं, उनकी स्वतंत्रता चली जाती है और उस दिन से वे गुरु-कुल संस्था के संचालक आचार्य न होकर, मात्र अधिक धन प्राप्त करने वाले और बँगले में रहने वाले शिष्यों के शिक्षक बने। ब्राह्मण नौकर बना। दक्षिणा में (पारिश्रमिक या वेतन शब्द हल्का लगेगा) उनको राज-सत्ता का आश्रय मिला, द्रोणाचार्य ब्राह्मण से आश्रित--राजपोष्य बन गये। महाभारत कहता है '**राजप्रेष्यो यश्च भवेत् विकर्मा। राजप्रेतान वर्जयेत् देवकृत्ये।**' नौकरी करके, वेतन प्राप्त कर जीवन-यापन करने वाला और अपनी तेजस्वी विद्या को पैसा लेकर बेचने वाला ब्राह्मण, ब्राह्मण नहीं रह जाता। वह तो एक नौकर ही बन जाता है। 'मनुस्मृति' में भगवान मनु ने ऐसे ब्राह्मण को बुद्धि जीवी न कह कर मृत-जीवी कहा है, भले ही वह कितना ही बुद्धिमान हो। मनु भगवान तो आगे चलकर कहते हैं, ऐसे वेतन लेकर जीवन यापन करने वाले मृत जीवी ब्राह्मणों को श्राद्ध में मत बुलाओ ' वे श्राद्ध में काम नहीं आते क्योंकि मृत-पितरों की जीवंत-स्मृति ऐसे मृत-जीवी ब्राह्मण कहाँ से दिला सकेंगे ?

धनिकों की जिम्मेदारी

द्रोणाचार्य के इस पतन के लिए कौन उत्तरदायी है ? यह प्रश्न बहुत चिंतनीय है। वैभव को ठुकरा कर जंगल में घूमने वाले और बिना किसी स्वार्थ के ज्ञान-दान करने वाले ब्राह्मणों के जीवन की आवश्यकताएँ पूर्ण कर दी जायँ, यह देखने का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर्तव्य सम्पत्ति वानों का है। राज--परिवार और धनिकों के पुत्र कटोरे भर कर दूध उड़ाते हों और सँस्कार के संरक्षक ब्राह्मण-पुत्र को एक बूँद दूध भी न मिले, यह कितनी लज्जास्पद बात है ? इसीलिए तो द्रोणाचार्य तथा ब्राह्मण-समाज के अधःपतन की जम्मेदारी उस समय के धनिकों के सिर पर आती है।

अब यदि ब्राह्मण पक्ष में कहूँ तो 'स्वधा' और 'स्वाहा' की शक्ति उसमें होनी चाहिए। उसके पास आत्म-निष्ठा और आत्म-धारणा की शक्ति होनी चाहिए। मैं 'अपना रक्षण स्वयं करूँगा, मैं अनाथ नही हूँ।' उसकी यह भावना तथा प्रभु पर सत्रह आने भर विश्वास होना चाहिए —

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना : पर्युपासते"

ब्राह्मण अनाथ नहीं वल्कि जगत का नाथ है। ब्राह्मण किसी से दबता नहीं। घर घर झोली लेकर भिक्षान्न प्राप्त करने वाला क्या ब्राह्मण है ? अरे ! ब्राह्मण तो अग्नि जैसा है। अग्नि से छेड़खानी करोगे तो जलोगे। सम्हलकर काम करोगे तो भोजन बनेगा। अत : उनके साथ संभल कर व्यवहार करना चाहिये। अगर तेजस्वी ब्राह्मण और ब्राह्मण समाज को खत्म करोगे तो घर घर क्लेश और अशान्ति होगी। लोग सुख से नहीं रह सकेंगे। प्रत्येक परिवार में विघटन प्रविष्ट हो जायेगा और परिवार छिन्न भिन्न हो जायेगा। ब्राह्मण तो नीति की रीढ-रज्जु है। यह टूट जायेगी तो समाज का अधःपतन होगा।

उत्कृष्ट ब्राह्मणत्व सम्पन्न ब्राह्मण वही है जो कि 'कल मेरा क्या होगा ?' यह सोचता हुआ रोते नहीं बैठता अर्थात् जिसके पास ऐसी जीवतंता हो, वही सच्चा ब्राह्मण है।

द्रोणाचार्य ने राज्याश्रय स्वीकृत किया, आचार्य से मिट कर दास बने और उस दिन से अपना व्यक्तित्व खो बैठे। आश्रय स्वीकारने के बाद उनको भौतिक सम्पत्ति की कमी नहीं रही। आश्रम के बदले विशाल भवन भी रहने को मिला होगा पर वे सत्ता के विरुद्ध आव्हान करने की शक्ति गँवा बैठे। वशिष्ठ राज-सत्ता के गुरु थे और द्रोण राज-सत्ता के आश्रित हुये।

तेजस्वी वसिष्ठ और लाचार द्रोण

द्रोणाचार्य की सामर्थ्य के सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते, उनकी बुद्धिमत्ता की जितनी प्रशंसा करें उतनी कम ही है। सामर्थ्य में तो वे शायद वसिष्ठ से भी दो कदम आगे निकल जॉय फिर भी राम के दरबार में वसिष्ठ की सत्ता चलती थी। वसिष्ठ के वचन-उल्लंघन का साहस राज-सत्ता नहीं कर सकती थी। वसिष्ठ राज-सत्ता के गुरु थे जब कि द्रोण आश्रित। वसिष्ठ जो चाहें कर सकते थे, द्रोण नहीं।

एक समय संकट के अवसर पर वसिष्ठ ने निर्णय दिया कि लक्ष्मण को सजा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होनी चाहिए आन्तरिक विरोध होने पर भी, राजा राम को गुरु का कटु निर्णय मानना ही पड़ा जब कि द्रोण को राज–सत्ता के कटु निर्णय मानने पड़ते थे। उन्हें राज–सत्ता के आदेशानुसार वर्तन करना पड़ता था।

मनुष्य एक बार वैभव का भोगी बन जाय तो फिर वह मोटर के बिना चल ही नहीं सकता। वस्तु विशेष चाहिए ही और इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे अपमान भी सहना पड़ता है। द्रोण का जीवन भी इसी तरह अपमानित हुआ था। भौतिक सुख के लिए उन्होंने सब अपमान सहन किया, जो लोग द्रोण के सामने देखने की भी हिम्मत नहीं रखते थे, वे राजा के क्षुद्र आश्रित द्रोण का उपहास करते थे।

मौत के मुँह में से बचे पाण्डव लाक्षा–गृह से सुरक्षित रूप से बाहर निकल गये और द्रुपद की नगरी में प्रकट हुये। "जाको राखे साँइया मार सकै ना कोय" पाण्डव प्रकट हुये इसलिये कौरवों के लिए फिर एक समस्या खड़ी हुई। "या तो उनको मार डालना या फिर राज्य देना–" मन में हलाहल विष भरे होने पर भी, पाण्डव बच गये, इस पर उन्होंने आनंद व्यक्त किया। इस समय द्रोण ने पाण्डवों को सादर बुला कर आधा राज्य देने की सलाह कौरवों को दी लेकिन आचार्य द्रोण का यह निर्णय मान्य नहीं किया गया। इतना ही नहीं वल्कि कर्ण द्रोण की यह सालाह सुन कर एकदम उत्तेजित हो गया और कटु तथा मर्म वेधक शब्द कहने लगा। न कहने योग्य बचन भी उसने द्रोण को कहे। उसने तो यहाँ तक कह दिया कि द्रोण हमारा अन्न खाकर हमारी ही हानि करते हैं।

योजितावर्थमानाभ्यां सर्वकार्येष्वनंतरौ।
न मन्त्रयेतां त्वच्छ्रेयः किमद्भुततरं ततः॥
एवं विद्वन्नुपादत्स्व मंत्रिणां साध्वसाधुताम्।
दुष्टानां चैव बोद्धव्य मदुष्टानां च भाषितम्॥

राज्याश्रयी द्रोण को कर्ण के ये कटु और प्रखर वचन मूक और मलिन मुख–मुद्रा से सुनने पड़े। तेजस्वी परशुराम या आत्म–निष्ठ वसिष्ठ को ऐसे शब्द कहने की क्या कोई हिम्मत कर सकेगा? और कदाचित् करे तो उसका क्या उत्तर मिले? उसकी कल्पना ही की जा सकती है। आश्रित द्रोण को यह तेजो–भंग (अपमान) सहन करना पड़ा।

द्यूत के समय द्रोण

दूसरा प्रसंग देखें। जुए में पराजित धर्मराज ने द्रौपदी को दाँव पर रखा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और उसे भी हार बैठे। दुष्ट दुःशासन पतिव्रता द्रौपदी की वेणी पकड़ कर उसे राज-सभा में खींच लाया और भरी सभा में द्रौपदी का वस्त्र खींचा गया। अधर्म का ऐसा उदाहरण और कहीं भी नहीं मिलेगा। उस समय द्रोणाचार्य का क्या कर्तव्य था? उनकी आँखों के सामने पाशवी नाटक खेला जा रहा था, पर वे उस नाटक को रोक नहीं सके। अरे, हिम्मत पूर्वक इस दुष्कृत्य का विरोध भी नहीं कर सके! ब्राह्मण, जगत में किसी का दास नहीं – गुलाम नहीं, यह चिरंतन सत्य भी द्रोण नहीं अपना सके। द्रोण पुरुषोत्तम थे, वे जगत को सुधारने की शक्ति रखते थे लेकिन वे तो अधार्मिक सत्ता के आश्रित बन गये थे। आश्रित क्या कह सकता है? सत्ताधीश और वैभव सम्पन्न मानव तो हमेशा दूसरों से अपना मन चाहा ही कराने और कहलाने के आदि होते हैं। द्रोणाचार्य को उस समय साहस पूर्वक कौरवों के उन कृत्यों का विरोध करना चाहिए था और न मानने पर उनको भस्म कर देना चाहिए था, पर वे चुपचाप बैठे रहे। अधार्मिक सत्ता का आश्रित, मालिक के अनैतिक कृत्यों के विरोध में क्या बोल सकता है?

द्रोण की शक्ति अलौकिक थी, वसिष्ठ से भी अधिक रही होगी। कदाचित् वसिष्ठ से अधिक दिव्यगुण भी रहे होंगे। वे जब बाण छोड़ते तो ऐसा लगता, मानो प्रलय की अग्नि जगत को खा जाने को प्रकट हुई हो।

अश्वत्थामा का भी उनके बारे में कितना विश्वास था! अश्वत्थामा ने कहा था, "मेरे पिता को मारने वाला कोई जगत में पैदा ही नहीं हुआ।" द्रोण का अपना वैयक्तिक जीवन तनिक भी अनैतिक नहीं था। वसिष्ठ के जितना ही पवित्र उनका जीवन था। ज्ञान के वे अक्षय भण्डार थे। वसिष्ठ जिस प्रकार राम को उपदेश देते, वैसे ही द्रोण द्रुपद को सदुपदेश देते थे। परन्तु द्रोण के उपदेश की बात तो ऐसी है, जैसे कि 'गौरी शंकरगोर महाराज' कह गये हैं कि माता पिता को प्रणाम करना चाहिए' पर उनके कहने का प्रभाव क्या होगा? क्योंकि कहने वाले व्यक्ति में तेज है क्या? इस तरह द्रोण चाहे कितनी भी समझदारी की बात करें पर '**अन्तरं महदन्तरं**' वे तो राज्याश्रित थे ही। उनका व्यक्तित्व लुप्त हो चुका था इसीलिए उनका उपदेश निरर्थक बना रहता। द्रोण तत्व ज्ञानी भी उच्च कोटि के थे। इन सब सद्गुणों के होते हुये भी द्रोण अधर्म को सहन करते थे। सच्चा ब्राह्मण अधर्म के सामने आवाज उठाये बिना नहीं रहेगा लेकिन द्रोण आश्रित थे, उनकी दृष्टि मे लज्जा थी, फलतः उनकी जिव्हा सिल गई थी।

सचमुच वेदव्यास ने द्रोण के चरित्र का वर्णन कर समाज के सामने एक महान चित्र रख दिया है। तीनों लोकों को भस्मसात् करने की शक्ति रखने वाले व्यक्ति का कैसा पतन! जब राज-सत्ता को साफ साफ कह देने की जरूरत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

थी तब वे-ब्राह्मण कुछ न बोल सके। सत्य का साथ देने के बजाय द्रोणाचार्य ने पाण्डवों को जीवित जला देने का प्रयास करने वाले और पतिव्रता का शील लूटने का प्रयास करने वाले अधर्मियों का साथ दिया। ब्राह्मण राज सत्ता या किसी और का भी सेवक रह ही नहीं सकता, यह चिरंतन सत्य वे भूल गये। क्या सुख लोलुपता के कारण ? ऐसा मैं द्रोण को क्षुद्र मानकर नहीं कहता। वे पंच महा पातकियों का पक्ष भी लेते हैं और उन्हें सम्भालने का उत्तरदायित्व भी। इस द्विविधा में उनका ब्राह्मणत्व समाप्त होता है। अन्त में निरपराध जीवों को मारने में ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करने से भी वे नहीं चूकते, तब उनका तिरस्कार होता है। शक्ति तो है पर निःसत्त्व करने में व्यय की जा रही है। द्रोण यहाँ तेज हीन और अधःपतित ब्राह्मण के रूप में स्पष्ट देखने को मिलते हैं। सचमुच ब्राह्मण का इससे अधिक अधःपतन और क्या हो सकेगा ?

अधःपतित ब्राह्मण्यकी पराकाष्ठा

वेदव्यास जी ने अश्वत्थामा के रूप में अधःपतित ब्राह्मण का दूसरा चित्रण भी किया है–

हम यदि अश्वत्थामा के जीवन पर दृष्टि डालें तो उसके जीवन में केवल क्षुद्रता और दुष्टता ही देखने को मिलती है। ब्राह्मणों ने शस्त्र धारण किया इसलिए ब्राह्मण पतित हुये; ऐसा महाभारत नहीं मानता। **'शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं यत्र धर्मोपरुध्यते।'** अर्थात् धर्म पर अधर्म का आक्रमण हो तो उसके रक्षणार्थ ब्राह्मणों को भी शस्त्र धारण करने चाहिए पर अश्वत्थामा ने तो अधर्म का आचरण करने के लिए शस्त्र धारण किया था। उसने युद्ध-नीति भंग करके, रात में शिबिर में चुपचाप जाकर पाण्डवों के निद्रा लीन पाँच सुकोमल-बालकों को बिना हिचकिचाये काट डाला। तबसे झूठे प्रपंच रचनेवाले को 'अश्वत्थामी सम्प्रदाय' का कहा जाता है। इससे बढ़कर मानसिक अधःपतन और क्या हो सकेगा ? उसने उत्तरा के गर्भ पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग भी किया था। ब्राह्मण-वर्ग भ्रूण हत्या और बाल-हत्या करने वाला था, ऐसा यह चरित्र दिखाता है।

दिव्य समाज का मूल

ब्राह्मण वर्ग जब सुख-लोलुप, गुलाम, और सेवक बनता है तब समाज आत्म--विस्मृति से घिर जाता है, ऐसा निश्चित समझो। जब ब्राह्मण निस्तेज बने, पैसों के लिए दासता स्वीकार करे तब अवश्य ही समाज का नैतिक अधःपतन होता है। जब वह ज्ञान की महिमा गाने के बजाय धन की महिमा गाने लगे, अधर्म के विरुद्ध आवाज न उठा कर, उसीका साथ दे; धन – दौलत की अपेक्षा शील, तेज ज्ञान, और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0, In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चारित्र्य की कीमत को अधिक– समझने वाला वर्ग ही जब आश्रित – दास बन जाय, लोगों की दाढ़ी पकड़ने लगे तो समाज की दुर्दशा हुये बिना नहीं रहती। समझो कि समाज की रीढ़-रज्जु टूट गयी है। ब्राह्मण–वर्ग का पक्षपाती (Partial) होकर कहता हूँ, ऐसा मत समझना। जो ब्राह्मण वर्ग ब्रह्म–बंधु हुआ, उसके लिए महाभारत क्या कहता है, पढ़िये –

जिस ब्राह्मण में से ब्राह्मणत्व का लोप हो गया हो, उसके द्वारा निम्न से निम्न काम लिया जा सकता है परन्तु जिसमें दिव्यता, **तेजस्विता और तपोमयता है,** ऐसे ब्राह्मण समाज को यदि नहीं टिकाया जायेगा तो परिवार में क्लेश–कलह होंगे और घर घर में होली सुलगेगी इसलिए समाज के हित के लिए ब्राह्मण को याचक न बनाया जाय, यह देखना जरूरी है। उसको अन्न के लिए लाचार – क्षुद्र न बनाइये। उसकी दिव्यता और तपोमयता रहेगी तो समाज भी टिक सकेगा, संस्कृति भी सुरक्षित रहेगी। उसकी दिव्य ज्ञान निष्ठा और तपोमयता को बढ़ाइये, वरना "devils guoting the Bible" जैसी बात होगी, गीता को राजनीतिज्ञ (Politician) भी रखें और चोर भी, पर उससे लाभ क्या होगा ?

उपदेश सभी करते हैं लेकिन उपदेश करने वाले का चरित्र उदात्त होना चाहिए। यों तो सैकड़ो और हजारों की हत्या करने वाले भी ज़ेब में बाइबल रखकर घूमते है।

वशिष्ठ की अपेक्षा द्रोण ने नीति–तत्त्व अधिक कहे होंगे पर इन नीति तत्त्वों का उपदेश करने वाला व्यक्ति कैसा था ? अतः बोलने वाले यदि दीन-हीन बनें तो उसकी कीमत कितनी रहेगी ? ब्राह्मण का अर्थ श्राद्ध करनेवाला अथवा कर्मकाण्ड करने वाला ही नहीं; ब्राह्मण तो समाज का सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों का रक्षक (Custodian) है। अर्थ की अपेक्षा शील और भोग की अपेक्षा त्याग की कीमत इसीलिए तो अधिक होती है। जब समाज शील के बदले वैभव को और त्याग के बदले भोग को अधिक महत्त्व देने लगता है तो उसका अधःपतन अनिवार्यतः होता है।

यदि ब्राह्मण–वर्ग ज्वलंत और जीवंत रहेगा तो लोगों को वैभव और ऐशो-आराम (विलास) में नहीं पडने देगा। नैतिक जीवन ही सच्चा जीवन है। लोगों को सदैव इसका बोध कराते रहने का उत्तरदायित्व ब्राह्मण–वर्ग का है। लोग यह समझेंगे तो अर्थ–परायणता कम होगी वैभव जन्य उन्मत्तता कम होगी और जीवन में नैतिकता आयेगी।

" ब्राह्मणत्वस्य हि रक्षणेन रक्षितः स्याद् वैदिको धर्मः। "

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्रोण, अश्वत्थामा जैसे महापुरुषों का भी इस सीमा तक पतन हुआ तो सामान्य ब्राह्मण--समाज की--गौरीशंकर जटाशंकर की स्थिति कैसी दयनीय रही होगी ?

श्रीकृष्ण के जन्म से पहले ब्राह्मण–वर्ग का पतन हो चुका था। नीति की रीढ़–रज्जु टूट गयी थी। अधर्म का साम्राज्य स्थापित हो गया था। ब्राह्मण–वर्ग के पतन से समाज पर क्या प्रभाव हुआ **और** समाज की **कैसी** परिस्थिति के कारण निर्गुण–निराकार भगवान सगुण साकार रूप में जन्मे, यह हम कल देखेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तीसरा प्रकरण

सामाजिक--परिस्थिति

स्वयं शासित समाज

संस्कृति के रक्षण करने वाले वर्ग का जब ह्रास हो जाता है तब त्याग का स्थान भोग और कर्तव्य तथा प्रेम का स्थान द्वेष-ईर्षा ले लेते हैं; परिणाम स्वरूप प्रत्येक मानव का नैतिक अधःपतन होता है क्योंकि लोग त्याग की अपेक्षा भोग का ही अधिक विचार करते रहते हैं। ब्राह्मणों का अधःपतन होते ही उन्हें आश्रय देने वाली राज-सत्ता का भी अधःपात हो जाता है अतः उस वर्ग का भी नियंत्रण आवश्यक है।

राजा क्यों चाहिए? राज-सत्ता के निर्माण की क्या आवश्यकता है? आदि की चर्चा महाभारत में है। महाभारत के शान्ति पर्व में धर्मराज युधिष्ठिर भीष्मपितामह को प्रश्न पूछते हैं कि हम जैसे दो हाथवाले सामान्य मनुष्य को, राजा को-देव के रूप में क्यों पूजना चाहिए? उसकी सफलता जगत की सफलता क्यों? उसकी प्रसन्नता जगत की प्रसन्नता क्यों? इसका उत्तर देते हुये भीष्म पितामह ने कहा है, कृत-युग में शासन सँस्था की--राज सत्ता की, आवश्यकता नहीं थी। जहाँ मनुष्य स्वयं ही अपने कर्मों (कर्तव्यों) से बँधे हों, वहाँ राज-तंत्र की क्या जरूरत? इसलिए कृत-युग में-

'न राज्यं न च राजाऽऽसीत् न दाण्ड्यो न च दाण्डिकः।
स्वधर्मेण प्रजास्तावत् रक्षन्ति स्म परस्परम्॥'

राज-सत्ता की आवश्यकता

उस समय अपने कर्तव्य से और सामाजिक नीति से बद्ध-पुरुष उचित आचरण करते थे, अतः शासन-तंत्र की आवश्यकता नहीं थी। इसके लिए संयमी और त्यागी जीवन चाहिए, ऐसा महाभारत बताता है। यह अति उच्च मानव का नैतिक जीवन है परन्तु जब सामान्य मनुष्य में से साँस्कृतिक आचार-विचार चले जाँय तब संयम और त्याग की कठिनाई आती है। परिणामतः जीवन में मोह को स्थान मिलता है, ज्ञानावस्था को तिलांजलि मिलती है और काम बेहद बढ़ जाता है। ऐसी अवस्था में और जब उच्च नैतिक भूमिका जारी रखनी हो तब एक प्रकार की शासन--व्यवस्था आवश्यक बन जाती है और इस तरह की व्यवस्था के संचालनार्थ त्यागी और कर्तव्य-निष्ठ पुरुषों की जरूरत पड़ती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मानव जब कर्तव्य भूल जाता है तो वह किसी की नहीं सुनता, फिर वह संयम और त्याग से ऊब जाता है। जीवन में मोह--ममता बढ़ते जाते है। परिणामतः लालसा और आकांक्षा भी बढ़ती है। अप्राप्य वस्तु प्राप्त करने का मनोरथ उत्पन्न होता है। जो अपना नहीं है, उसे प्राप्त करने का प्रयास मानव करता है। अर्थात् काम बढ़ता है, वासना जागती है और फिर क्या कहना चाहिए ? क्या नहीं, इसका भी विवेक नहीं रहता। जब कामना–वासना तीव्र होती है तब मोहावस्था पैदा होती है।

यह सोच कर ही ऐसी परिस्थिति में मार्ग निकालने के लिए आदि काल में ब्रह्मदेव ने मानव–नियंत्रण के लिए राज–सत्ता का उपाय बताया था। इस तरह राज-सत्ता ब्रह्मदेव ने उत्पन्न की है, वह स्वयं नहीं हुई है, हेतु पूर्वक की गयी योजना है। जो चीज यों ही हो जाय, उसमें हेतु संभव नहीं। भारतीय दृष्टिकोण से राज–सत्ता उत्पन्न की गयी है।अभारतीय लोग राज–सत्ता हो गयी, ऐसा कहते हैं।

समाज के योग्य संचालन के लिए ही राज–सत्ता निर्माण की गयी है। यह बात विशेष रूप से समझ लेने की है कि राज–सत्ता थी नहीं; वह बिना हेतु के भी नहीं बनायी गयी। कई निश्चित विचार मन में रखकर, उनकी पूर्ति के लिए राज–सत्ता उत्पन्न की गयी है। समाज–व्यवस्था टिकाने के लिए ध्येय पूर्वक राज–सत्ता का निर्माण किया गया है।

आरंभ के '**न राज्यं न च राजासीद्**' आदि कल्पना युक्त अराज्यवाद को साम्यवादी (Communists) प्रारम्भिक अवस्था कहते हैं; उनकी दृष्टि में यह कल्पना प्रारम्भ की, जंगली अवस्था की है। यदि साम्यवादी लोग हमारी '**न राज्य न च...**'–अराज्यवाद की, कल्पना को प्राथमिक (Primitive) स्तर की मानते हैं तो उनकी दृष्टि में 'साम्यवादका उच्च–स्तर' (Higher Phase of Communism) कौन सा है ? यह समझ में नहीं आता !

नृपति–लक्षण

राजा शब्द की परिभाषा है – '**राजा प्रकृतिरंजनात्**' – जो प्रजा का मनोरंजन करे वह राजा। '**स एव रक्षति प्रजान्**' – वही प्रजा का रक्षण करता है। उसके लिए वही परमधर्म है – '**स एव परमो धर्मः**', पद्य–रचना में भी जिन तीन वस्तुओं की निरुपयोगिता बताई गयी है, उनमें रक्षण न करने वाले के लिए 'राजा' शब्द का अर्थ फलित नहीं होता—

'एवं विप्रोऽनधीयानो, राजा यश्च न रक्षिता।
मेघो न वर्षते यश्च सर्वथा ते निरर्थकाः॥'

अर्थात्, कोई भी वस्तु उत्पन्न की जाय तो ठसके पीछे अवश्य कुछ हेतु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता है। जैसे कि हम रहने के लिए बँगला बनाते है। किसी वस्तु की निर्मिति बिना हेतु के थोड़े ही होती है। राज-तंत्र के निर्माण का हेतु भी उसी प्रकार उपभोग नहीं अपितु नियंत्रण है। किसी एक व्यक्ति की वासना और **विकारों** की **तुष्टि** के लिए वह नहीं है, अतः राजा के पास प्रतिज्ञा करवाते हैं—

'प्रिया प्रिये परित्यज्य समः सर्वेषु जन्तुषु।
कामं, क्रोधं च लोभं च, मांन चोत्सृज्य दूरतः॥'

राज्य उसे उपभोग करने के लिए नहीं दिया जाता, राज्य के संरक्षण और नियंत्रण के लिए ही राज-सत्ता का निर्माण किया जाता है। राजा को अपनी लहर (इच्छा) के अनुसार नहीं चलना होता। जिस मनुष्य के हाथ में सत्त: के सूत्र दिये जाते हैं, उसका व्यक्तिगत जीवन तो होता ही नहीं, उसे तो सदैव सारे राज्य और प्रजा का ही विचार करना होता है। जिसे व्यक्तिगत सुख-भोग की इच्छा होती है, वह कभी राजा नहीं बन सकता। राज-सत्ता संभालने का उसे कोई अधिकार नहीं, ऐसा भारतीय-राजनीति कहती है। प्रजा के रक्षण के समय राजा का न कोई प्रिय है और न कोई अप्रिय। उसके लिए सब समान हैं। राजा में काम-क्रोध या लोभ नहीं हो सकता। उसे अपनी आदत, मान आदि का विचार नहीं करना होता। 'मेरापन' (स्वार्थ) उसमें नहीं होना चाहिए। प्रजा के रक्षणार्थ सब कुछ करने के लिए उसे तैयार रहना चाहिए। राजा को अपने मान-अपमान का नहीं, प्रजा की भलाई का और उसके संरक्षण का ही विचार करना होता है। राज-सत्ता पर बैठने वाले को ऐसी प्रतिज्ञा लेनी पड़ती है।

राजा अपनी इच्छा के अनुसार, उन्माद में व्यवहार नही कर सकता, उस पर जनता के कल्याण का महान उत्तर दायित्व है और जो अपने सभी कर्तव्यों को निभाता है, ली गयी प्रतिज्ञा के अनुसार आचरण करता है, वही विष्णु का अवतार है। अपने धर्म का जो ठीक ठीक पालन करता है वही विष्णु. '**ना विष्णुः पृथिवीपतिः**' राजा भी यदि कुमार्ग गामी हो तो वह भी बध्य है।

यूरोप में तो यह कहावत बहुत ही प्रसिद्ध है- "King can do no wrong"— राजा कभी भी कोई गलती नहीं करता। पर यह अभारतीय विचार है! गूढ़ता का ऐसा वलय (घेरा) भारतीय राजा के आसपास नहीं था। राजा अगर प्रतिज्ञा का पालन न करे तो वह भ्रष्ट-प्रतिज्ञ माना जाता था। वह असत्य कथन या असत्य संग भी नहीं कर सकता था अतः उसे कहा जाता था—

'आत्मा जेयः सदा राज्ञा-- ततो जेयाश्च शत्रवः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अजितात्मा नरपतिः विजयेद्धि कथं रिपून ? '

जिसके हाथ में सत्ता के सूत्र रहने वाले हों, वह व्यक्ति पर्याप्त शक्तिशाली होना चाहिए। जो बाहर के शत्रुओं को जीतना चाहता हो, उसे प्रथम तो अपनी आत्मा को- अपने मन को जीतना चाहिए। भारतीय राज–संस्था अति उच्च कोटि की है। सभी राज–संस्थायें ऐसी होनी चाहिए। क्योंकि जैसा नेता होगा, वैसे लोग--(यथा राजा, तथा प्रजा) जैसा राजा, वैसी प्रजा।

"कालो वा कारणं राज्ञो, राजा वा कालकारणम्।
इति ते संशयो माभूद, राजा कालस्य कारणम्॥ "

ऐसा महाभारत में लिखा है, भीष्मपितामह ने भी राजा के कर्त्तव्य समझाते हुये 'राजा कालस्य कारणम्' कहकर अपना अभिप्राय व्यक्त किया है।

राजा कालस्य कारणम्

काल का कारण राजा या राजा का कारण काल (परिस्थिति–समय) ? काल का कारण नेता या नेता का कारण काल ? साम्यवादी विचार–श्रेणी के साथ हमारा यहीं पर मतभेद है। परिस्थिति नेता का निर्माण करती है या नेता परिस्थिति का निर्माण करता है ? यह प्रश्न विचारणीय है। साम्यवादी मानते हैं कि परिस्थिति नेतृत्व का सृजन करती है और भारतीय विचारक मानते हैं कि नेता–नेतृत्व परिस्थिति का निर्माण करता है और भीष्म ने भी वही कहा है। अगर साम्यवादियों की यह मान्यता सत्य है तो साम्यवादी क्रान्ति उस रूस में ही क्यों हुयी ? जहाँ–(Capitalism) पूँजीवाद का उदय भी नहीं हुआ था। इग्लैण्ड, अमेरिका, जर्मनी या अन्य किसी भी देश में क्यों नहीं हुयी ? रूस की क्रान्ति के पीछे लेनिन का महान और असामान्य नेतृत्व था। लेनिन के नेतृत्व के कारण ही रूस में सफल साम्यवादी क्रान्ति हुयी। इससे यह स्पष्ट मालूम होता है कि नेतृत्व परिस्थिति को निर्माण करता है। जैसा नेता वैसी जनता। अतः नेता–राजा को पहले अपनी आत्मा को जीतने का प्रयास करना चाहिए इसलिए आत्म विजय के सिवाय पहले कोई विचार किया ही नहीं जा सकता।

भीष्म ने कहा है– **'वर्तितव्यं सदा राज्ञा गर्भिणी सहधर्मिणाम्'** गर्भवती स्त्री जैसे अपने बालक के लिए सजग रहती है, अपनी आने वाली संतान के अतिरिक्त अन्य किसी बात का भी विचार नहीं करती, उसी तरह राजा को भी प्रजा की चिन्ता करनी चाहिए; अर्थात् प्रजा को पुत्रवत् देखना चाहिए। यह राज–शास्त्र का नियम है।

राजा तो प्रजा का रक्षक होता है; प्रजा के रक्षण की बड़ी ज़िम्मेदारी उसके ऊपर होती है। जो राज सत्ता धारण करता है, उसके ऊपर बहुत बड़ी जिम्मेदारियाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहती हैं। राजा रक्षक होना चाहिए, भक्षक नहीं। जिस राजा का जीवन त्याग से संलग्न है, जो अहर्निशि प्रजा के रक्षणार्थ ही कार्य करता हैं, ऐसे राज्य कारी राजा को विष्णु माना जाता है, ऐसा भारतीय इतिहास कहता हैं। राजा को ईश्वरीय अंश मानने के पीछे सच्चा रहस्य यही है। उस समय इस नियंत्रित शासन–संस्था की उच्च अवस्था गण–तंत्र और संघ–राज्य (Republic) का अभ्युदय हुआ था।

जरासंधादि का साम्राज्यवाद

यादवों का राज्य, गणराज्य था। बभ्रु और उग्रसेन उसके नेता थे। उसी गण–राज्य को आज हम गण–तत्रं (Rspublic) कहते हैं। महाभारत में भगवान श्रीकृष्ण और नारद के बीच के संवाद मे भी नारद जी ने गण–राज्य को ही उत्तम कहा है और फिर उस संवाद में गण–राज्य कब संगठित होते है और कब टूटते हैं--यह भी समझा कर कहा हैं कि गण–राज्य भेद (फूट) के कारण टूटते हैं।

अब हम भारतीय राज--व्यवस्था को देखें। Might is right (जिसकी लाठी उसकी मैंस) यह कहावत बहुत पुरानी है। लोग उसे प्राकृतिक नियम के रूप में मानते हैं। लेकिन यह तो पशुत्व का जन्म सिद्ध अधिकार--नियम है। **'सर्वम् बलवता शक्यम्'** अर्थात् बलवान के लिए सब कुछ शक्य है। किन्तु भारतीय संस्कृति तो विकारों परविचारों का और बल पर नीति और धर्म का नियंत्रण मानती है।

भगवान श्रीकृष्ण के जन्म से पहले राज–सँस्था का हेतु-धर्म का रक्षण, प्रजा की देख भाल और नीति मय आचरण न हो कर, आत्म केन्द्रित हो गया था। उस समय ऐसी परिस्थिति उपस्थित हुयी थी कि राज–सत्ता बल से ही चलती थी। वह नीति और धर्म को भूल गयी थी, परिणामतः आक्रमणकारी साम्राज्यवाद बढ़ता चला गया था और इसके कारण गण–राज्यों के लिए भय पैदा हो गया था। इस बढ़ते हुये आक्रमणकारी साम्राज्यवाद का नेता जरासंध अलौकिक बुद्धिमत्ता वाला असामान्य शासक था। ऐसी परिस्थिति में भगवान श्री कृष्ण का जन्म उस गणराज्य की भूमि में हीं हुआ था उसका जिनको आधिक डर था; क्योंकि उनकी गरदन जरासंधने पकड़ी हुई थी। जरासंध अन्य राजाओं को जीतता था इसमें तो कोई विशेषता नहीं। एक राजा दूसरे राजा पर आक्रमण करके उसका पराभव करे, इसमे कोई विशेष बात नहीं है। सगर, मांधाता, रघु, दिलीप, राम, युधिष्ठिर आदि राजाओं ने भी दिग्विजयें की थीं। अपनी शूरता, वीरता और शौर्य--प्रदर्शन इस आक्रमण का हेतु होता था, किसी का राज्य हड़प कर जाने,की बुरी नीयत नहीं होती थी। दिग्विजयी राजा पराजित राजा को, यदि वह उन्मार्गगामी न हो और प्रजा को त्रास न देने का आश्वासन देता हो तो उसका राज्य वापस लौटा देता था। पर आक्रमणकारी राजा विजित राजा का राज्य अपने राज्य में मिलाकर अपनी सीमा बढ़ाता था। जरासंध भी उसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तरह अपना राज्य विस्तार करना चहाता था। उसने अनेक राजाओं को परास्त कर उनके राज्य अपने राज्य में मिला दिये थे और उन राजाओं को बंदी बना दिया था।

राजा राम ने लंका पर आक्रमण किया, रावण का वध किया परन्तु इसके बाद लंका के राज्य को अपने राज्य के साथ न जोड़कर, वहीं के योग्य व्यक्ति–विभीषण को सौंप दिया था। लंका पर आक्रमण करने में भगवाग श्री रामचन्द्र का एकमात्र हेतु था-राक्षसों का निकंदन। किष्किंधा के अन्तर्गत के व्यवहार में भी श्री रामचंद्र जी ने कोई झंझट नहीं की। इस स्थान पर यदि कोई साम्राज्य-वाद का पूजक आक्रमणकारी राजा होता तो वह इस प्रकार राज्य वापस न लौटा कर उसे छीन लेता। जरासंध इसी प्रकार का आक्रमणकारी राजा था। भागवत के अनुसार तो उसके कैद किये हुये राजाओं की संख्या बहुत अधिक है, पर महाभारत के अनुसार उस ने छयासी (८६) राजाओं के राज्य छीनकर अपने राज्य (मगध) के साथ जोड़ दिये थे और उन राजाओं को अपन कारावास में बंदी बना लिया था। यह जानते हुये भी कि इससे अत्यन्त अनर्थ निर्माण होता है, इसकी परवाह न करते हुये, चौदह और राज्यों को हड़प कर तथा उन राजाओं को बन्दी बनाकर सौ होते ही उसका नरमेध यज्ञ करने का आशय था।

बाली को मारकर उसका राज्य उसके भाई को सौंप देने वाले भगवान रामचन्द्र और उनके पूर्वज–राजा रघु द्वारा की गयी दिग्विजय के साथ जरासंध की नीति-विहीन दिग्विजय की तुलना नहीं की जा सकती। राजा रघु और राम की दिग्विजय भारतीय संस्कृति के अनुसार हुयीं जब कि जरासंध आक्रमणकारी साम्राज्यवाद को फैलाने की नीति का अनुगामी था। एक के आक्रमण के पीछे साम्राज्यवाद रहा है जब कि दूसरे की दिग्विजय के पीछे भारतीय संस्कृति की उच्च मनोकामना रही है। भारतीय संस्कृति ने कभी भी रक्त-पिपासु दूसरों का शोषण करने वाले और प्रजा को लात मारने वाले आक्रमक साम्राज्यवाद की तरफ़दारी नहीं की। स्वप्न में भी भारतीय संस्कृति को ऐसा साम्राज्यवाद अभिप्रेत नहीं। क्योंकि आक्रमक धर्म प्रधान लोगों को भी कष्ट देता है। वर्तमान समय में ही हमने ऐसे प्रचंड साम्राज्यवाद का अस्त होते देखा है।

तत्कालीन तीन महा धूर्त

भगवान श्रीकृष्ण के जन्म के समय जो यह आक्रमणवादी, प्रचंड, साम्राज्य-वाद जम रहा था उसके पीछे धर्म या नीति के आधार पर निर्मित कोई राज–सत्ता न थी। उस फूलते--फलते साम्राज्यवाद के पीछे तो नराधमों का हाथ था। वे लोग इस सीमा तक नीति भ्रष्ट हो चुके थे कि विवाहित स्त्रियों के शील लूटने के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खुले में प्रयास होते थे। जरासंध और कंस इस श्वसुर और जामाता की जोडी के नेतृत्व में अनीतिमय शासन-व्यवस्था के कारण प्रजा की अधोगति हो रही थी।

जरासंध कोई ढीलाढाला राजा नहीं था। वह मानता था कि रामनाम जपनेवालों से राज्य नहीं हो सकता। वह बहुत शक्तिशाली और बुद्धिमान था। पक्का राजनीतिज्ञ था। बली था। साथ ही उसकी भावना क्षुद्र और संकीर्ण थी।

चेदि देश का राजा शिशुपाल भी ऐसा ही शक्तिशाली था। उसे श्रीकृष्ण ने भरी सभा के बीच में, "तू परस्त्री पर पापयुक्त दृष्टि रखनेवाला कुलघातक है" कहकर सम्बोधित किया था, धिक्कारा था। पतिव्रता स्त्री को भ्रष्ट करने की नीचता भी उसमें थी।

ये राजा शील के विध्वंसक और सज्जनों, साधुपुरुषों के संतापक थे। उनमें व्यक्तिगत स्वार्थ के अतिरिक्त दूसरे विचार ही नहीं थे और स्वार्थ-सिद्धि के लिए किसी भी उपाय की योजना में लेशमात्र भी विचार नहीं करते थे। भगवान श्री राम के दिव्य चरित्ररूपी दीपक के प्रकाश में अगर देखेंगे तो हमें यह मालूम पड़ेगा कि ये राजा कितने हीन, नीच, क्षुद्र, और भ्रष्टचरित्र थे।

अद्वितीय खलपुरुष धृतराष्ट्र

धृतराष्ट्र भी एक ऐसा ही नीच पात्र है। वह भी श्रीकृष्ण का समकालीन राजा था। उसके विकलांग होने के कारण उसका छोटा भाई पाण्डु राजा हुआ था। पाण्डु धर्मप्रधान राजा था। राजा के योग्य सब गुण उसमें थे। धृतराष्ट्र स्वमुख से कहते थे कि पाण्डु धर्मप्रधान राज्य करता था। स्वयं धृतराष्ट्र हमेशा धर्म और प्रेम की भाषा में ही बातें करनेवाला और उसका लेशमात्र भी पालन न करनेवाला खलपुरुष था। मंच पर से समझदारी और नीति की बातें करनेवाले और मंच पर से नीचे उतरने के बाद विपरीत आचरण करनेवालों की आज भी हमारे यहाँ कमी नहीं। स्थिप्रज्ञता जैसे नैतिक प्रवचन के साथ वह सम्बन्ध रखता था परन्तु उसका स्पर्श भी अपने को न हो इसका वह ध्यान रखता था।

धृतराष्ट्र के पात्र का विचार हम जब करते हैं तब कईबार ऐसा लगता है कि भगवान ने अगर बुद्धि ही न दी होती तो शायद लोग ज्यादा सुखी होते। धृतराष्ट्र की वाणी बहुत मीठी, प्रेमयुक्त, नीति, न्याय और प्रेम के शब्द भण्डार से परिपूर्ण थी। चाहे कितना भी उत्कृष्ट अभिनेता क्यों न हो वह धृतराष्ट्र के जैसा नाटक खेल सकेगा या नहीं यह एक शंका है। बुद्धिमान भी जिसका अनुकरण न कर सकें ऐसा यह खलपुरुष था। परन्तु हमारी लोकवाणी में तो उसका पात्र एक अगतिक, लाचार, पापभीरु वृद्धपुरुष है। दुर्योधन जैसे दुष्ट पुत्र के आगे उसकी कुछ चलती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं थी ऐसा भी हमें लगता है और इस तरह विचार करते हैं तब हमें धृतराष्ट्र पर दया हो आती है, उसके प्रति सहानुभूति प्रकट होती है। दुष्टता का आरोप हम दुर्योधन पर करते हैं परन्तु यह बात सच नहीं है। न तो वह पापभीरु था और न तो वह अपने पुत्र से दबता था। यदि महाभारत खोलकर योग्य विचार करेंगे तो हमें प्रतीत होगा कि वह महाप्रपंची और कपटी आदमी था। उसने निराश्रित होने पर वन में अपने पापों को स्वमुख से स्वीकार किया है और वह महाभारत में मौजूद हैं।

कुरुक्षेत्र का युद्ध समाप्त होने के बाद तप करने को निकला–काँचन बना धृतराष्ट्र, धर्मराज युधिष्ठिर के पास जाकर अनुनय भरे स्वर में कहता है, " पुत्र! मुझे भीष्म आदि का श्राद्ध करना है और उसके लिए मुझे द्रव्य चाहिए। " मानव किस परिस्थिति में आ पड़ता है! तुरंत ही धर्मराज ने कह दिया, " इसमें पूछने की क्या बात है? यह सब द्रव्य आपका ही है। जितना चाहें ले जायें। "

भीम को तो युधिष्ठिर की बात नहीं जँची। उसने साफ साफ कह दिया : "ऐसे पागल मत बनिये, इस धृतराष्ट्र को फूटी कौड़ी भी नहीं देनी चाहिये। धर्मराज ने कहा, 'धृतराष्ट्र तो हमारे गुरुजन हैं–पिता-तुल्य हैं। उनको जो चाहिए उसे देने में मना कैसे हो सकती है?'

भीम ने इसका चुभता हुआ उत्तर देते हुये कहा : " हमें वल्कल पहनाकर जब जंगल में भगा दिया गया था तब यह बूढ़ा कहाँ गया था? उस समय तो उसको हम पर तनिक भी दया नहीं आयी। जब राजसभा में पांचाली के वस्त्र खींचे गये थे तब हमारे ये गुरुजन कहाँ गये थे? उनकी पुत्रवधू की लाज लूटने के लिए जब दुष्ट प्रयत्न कर रहे थे तब मौन बैठे रहते उसको शर्म नहीं आयी! बारह वर्ष वन में और एक वर्ष अज्ञातवास में रहे, तब हमारा तनिक भी विचार किया था क्या? लाक्षागृह में हमें जिन्दा जला देने का षड़यंत्र रचा गया था तब उनका हमारे प्रति पितृतुल्य प्रेम कहाँ खो गया था? वह हमारे गुरुजन नहीं बल्कि कुलांगार हैं। जब द्यूत चल रहा था तब भी यह अंधा हर घडी विदुर जी से पूछता था कि 'क्या मेरा दुर्योधन जीता?– **दुर्बुद्धिर्विदुरं प्राह द्यूते किं जितमित्युत।**' ऐसे क्षुद्र व्यक्ति को भीष्मपितामह का श्राद्ध करने का अधिकार नहीं है। उनका श्राद्ध तो हम ही करेंगे। केवल इसीलिए इस बूढ़े पर दया करने या उसे द्रव्य देने की कोई आवश्यकता नहीं, भले ही वह निराश्रित हो। "

भीम के ये वचन हमें कटु लगते हैं। और धृतराष्ट्र के प्रति सहानुभूति जगती है। परन्तु महाभारत में धृतराष्ट्र के पात्र का समुचित अध्ययन किया जाये तो हमें भीम का क्रोध उचित लगे बिना नहीं रहेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शकुनि अति कपटपटु था। उसने द्यूत खेलाकर धर्मराज का सर्वस्व लूट लिया। धर्मराज के पास कुछ भी न रहा। तब उस दुष्ट ने धर्मराज से द्रौपदी को दाव में रखने को कहा और धर्मराज ने द्रौपदी को दाव पर रखा। उस समय नशा में आये हुये और कार्याकार्य का भान भूले हुये युधिष्ठिर ने कहा था, ' त्रिभुवन में अद्वितीय सौन्दर्यवाली अपनी पत्नी द्रौपदी को मैं दाव पर रखता हूँ।" धर्मराज के मुख से ये शब्द सुनकर दुर्योधन और उसके साथी हर्ष में आकर नाचने लगे। भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य जैसे व्यक्ति काँपने लगे, उनको रोमाँच हो आया। विदुर मृतप्राय निश्चेष्ट हो गये। सभा से धिक्कार की आवाजें आने लगीं परन्तु ऐसे समय पर भी यह दुष्ट धृतराष्ट्र मौन धारणकर बैठा ही रहा। यदि वह चाहता तो अध्यादेश (ordinance) निकालकर इस अधम कृत्य को क्या न रोक सकाता था? जब द्रौपदी घसीटकर राजसभा में लायी गयी तब नग्न होने के डर से वह काँपती थी, डरती थी। धृतराष्ट्र अंधा था इसलिए वह यह सब देख न सकता हो पर क्या वह बहरा था? उसके कान भी क्या फूट गये थे? क्या उसने द्रौपदी का क्रंदन नहीं सुना था? उस समय भीष्म आदि के द्रौपदी की रक्षा के लिए अध्यादेश निकालने को कहने पर भी उसने ध्यान नहीं दिया। यह खल पुरुष तो धर्मराज से लूटे हुये वैभव को किस प्रकार अपना कर लेना है उसीके विचार में डूबा हुआ था। भारत की महान साम्राज्ञी का शील भ्रष्ट होकर गर्त में पड़ने वाला था। उस समय बुद्धि से अंधा बना धृतराष्ट्र वैभव का क्या करेंगे, ऐसे विचारों के काल्पनिक घोडे दौड़ाता मौन बैठा रहा। एक राजा का इससे अधिक और क्या अधःपतन हो सकता है?

राजगद्दी पर पण्डु का अधिकार होते हुये उसने राज्य बडे भाई धृतराष्ट्र को सौंपा था। ऐसे दिनों में छोटे भाई की विधावा पत्नी और अनाथ पुत्र आश्रय लेने आये तब उन्हें आश्रय देने के बदले उनका निकंदन करने का षडयंत्र वह रचता था।

' मुख में राम बगल में छूरी '

धृतराष्ट्र का सर्व प्रथम अधःपतन तो तभी हो गया था जब कि उसने ' मेरा राज्य कहकर राजसत्ता हस्तगत कर ली और विकलाँग होने पर भी पाँडुपुत्र धर्मराज को बड़े हो जाने के बाद भी राज्य नहीं दिया। इतना ही नहीं बल्कि अपने वारिस के रूप में युधिष्ठिर को राज्य देने के बदले (शांतनु के बडे भाई देवापि ने जैसे राज्य दिया) वह विकलांग अपने पुत्रों को एकाधिकारी (एकछत्र) शासक बनाने के लिए पांडवों को मार डालने के षड़यंत्र रचता है। भगवान श्रीकृष्ण के जीवन में जैसे गूढता रही है, वैसे ही इस दुष्ट का जीवन भी अति गूढ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। उसकी वाणी से तो मधु झरता था पर हृदय विष से भरा था। मुँह में राम, बगल में छुरी ' उसकी नीति थी।

महाभारत के आदि पर्व में एक स्थल पर स्वयं धृतराष्ट्र ने अपने पुत्र दुर्योधन से कहा है कि ' पाण्डवों को राज्य से निकाल देना चाहिए, ऐसी तेरी मान्यता से मैं भी सहमत हूँ। '

दुर्योधन! ममाप्येतद् हृदि संपरिवर्तते।
अभिप्रायस्य पापत्वान्नैवं तु विवृणोम्यहम् ॥

परन्तु मुझसे प्रत्यक्ष में यह बात हो नहीं सकती क्योंकि मैं भीष्म और द्रोण से डरता हूँ। मैं प्रत्यक्ष में ऐसा पक्षपात करूँ तो विद्रोह होने का भी भय रहता है, बाकी गुप्त रूप में मैं तेरे पक्ष में ही हूँ, और मुझसे सम्भव सभी सहायता मैं करता ही रहूँगा। इस तरह इस धर्मनिष्ठ और दाम्भिक बगुले भक्त ने अपने पुत्रों को बिगाडा था। उसने अपने पुत्रों का सम्बन्ध राजसिंहासन के साथ बढ़ाया और पाण्डवों को खदेड डालने की विभिन्न युक्तियाँ करने लगा। उसने अपने पुत्रों से कहा कि तुम पाण्डवों से वारणावृत की खूब प्रशंसा करो। दूत के पास से भी अवकाश के समय यही काम करवाओ। वह तो स्वर्गभूमि है, ऐसा कहो इससे पाण्डव तुरन्त वहाँ जाने के लिए तैयार हो जायेंगे। मैं भी इस स्थान की खूब प्रशंसा करूँगा।

लाक्षागृह का षड्यंत्र

पाण्डवों ने जिस समय धृतराष्ट्र की अनुमति माँगी उस समय मानो पाण्डवों के वियोग से उसे अत्यन्त दुःख होता है, ऐसा दम्भ करते हुये उसने कहा था "तुम्हारी इच्छा ही है तो जाओ, साथ में जितना द्रव्य चाहिए, उतना ले जाना और वहाँ जाने के पश्चात् जिस जिस वस्तु की आवश्यकता पड़े मँगवा लेना। दानधर्म के लिए भी जितना पैसा आवश्यक हो मँगवालेना, बाकी तो तुम जा रहे हो, यह सुनकर ही मेरा तो हृदय विदीर्ण हो रहा है। "

कैसा दुष्ट और कपटी! एक ओर तो स्वयं ही पांडवों के विनाश के लिए लाक्षागृह तैयार करवाता है, दूसरी ओर पाण्डवों के वियोग में शोक करता है।

राजसत्ता और सचिव सत्ता का जब संघर्ष होता है तब संकल्पित कार्य नहीं होता। अमात्य सँस्था को सभी बातों का पता था। दोनों का मेल नहीं हुआ, इसीलिए राजसत्ता के उद्देश्य सफल नहीं हुये। इन उद्देश्यों को विफल करने में मुख्य व्यक्ति परमसंस्कारी और परम-भक्त विदुर जी थे।

हमारे यहाँ भक्त के बारे में बड़ा भारी भ्रम है। भक्त याने बिलकुल भोला दुःखी, रोती हुयी आकृति का और झोंपड़ी में रहने वाला दरिद्र मानव! यदि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वह दरिद्र और भोला न हो तो भक्त ही काहे का ! ऐसी मान्यता आरूढ़ हो गयी है। इससे विदुर जी के सम्बन्ध में भी बहुत बड़ी गलतफ़हमी है। लोग विदुर जी को भोला और कंगाल भक्त मान लेते हैं परन्तु वे तो एक राजनीतिज्ञ अमात्य थे–भारी राजनीति-ज्ञाता थे। उन्हें लाक्षागृह के षड़यंत्र की जानकारी हो गयी थी। इसीलिए जिस समय पाण्डव वहाँ के लिए रवाना हुये, उस समय उन्होंने युधिष्ठिर को संकेत से सारी बातें समझा दी थीं। विदुर जी ने तो पाण्डवों के लिए नौका की व्यवस्था भी कर दी थी ताकि वे छुपे रूप में जितना जल्दी संभव हो नदी पार कर सकें। कहाँ से किस प्रकार से भागना यह भी उनको यथोचित रूप से समझा दिया था।

धृतराष्ट्र का दम्भ

पाण्डवों को मकान में कुछ भरा हुआ होने की गंध अनुभव हुयी और अन्त में विदुर जी की बात सत्य ही सिद्ध हुयी। लाक्षागृह को जला दिया गया। पाण्डव तो सकुशल निकल गये; परन्तु कौरवों ने मान लिया कि वे लाक्षागृह में जलकर मर गये। इस समय धृतराष्ट्र ने तो इतना शोक प्रदर्शित किया कि कदाचित् दुर्योधन मर गया होता, तो भी इतना शोक न करता। उसने पाण्डवों के जल मरने का सन्देश सुनकर अत्यन्त विलाप किया और कुन्ती सहित पाण्डवों के श्राद्ध की तैयारी भी कर डाली। इस समय आन्तरिक रहस्य को मात्र विदुर जी ही जानते थे, इसलिए उनके अतिरिक्त सभी दुःखी थे। ऐसा महा दुष्कृत्य करने वाले धृतराष्ट्र का दम्भ इतने से ही शांत नहीं हुआ, और इसी धृतराष्ट्र को जब पाण्डवों के लाक्षागृह से बाहर निकलने और राजा द्रुपद के राज्य में प्रकट होने का समाचार मिला तो मन में अत्यन्त दुःख होने के वावजूद अत्यन्त हर्षित हो भान भूलकर सभा में नाचने लगा था, मानों पाण्डवों के बच जाने से उसे असीम आनंद हुआ हो! वह बडा भारी नाटकी और पहुँचा हुआ खलनायक था।

धृतराष्ट्र का समग्र जीवन कपट ही से भरा हुआ था। दिन में पाण्डवों का समाचार सुनकर नाचा था और रात्रि में कर्ण को पाण्डवों के निकंदन की सम्मति देते हुए कहा था कि "**अहमेप्येवैतत् चिकीर्षामि यथा युवाम्**"–अरे! यह तो राजनीतिज्ञों की कला होती है। राजनीतिज्ञों को मिथ्या हँसना बहुत आता है।

जिस समय पाण्डव पाञ्चाल देश से वापस लौटे उस समय वंशपरम्परा के अनुसार धृतराष्ट्र को पाण्डवों का राज्य उनको वापस सौंप देना चाहिए था, परन्तु यह इस पाखण्डी से कैसे होता? इसे तो सारा राज्य ही हड़प कर जाना था, परन्तु अब तो उससे ऐसा हो नहीं सकता था। वह जानता था कि पाण्डव अकेले नहीं हैं, अब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वे अनाथ नहीं हैं, उनके पीछे अब पाञ्चाल देश और यादवों की शक्ति है, इसलिए उसने समाधान-नीति का प्रयोग कर समाधान किया। व्यावहारिक नीति अपना कर पाण्डवों को आधा राज्य दिया। सौ के सौ रुपये जाते हों वहाँ पचास ही जाने दो, ऐसी धृतराष्ट्र की नीति थी —

'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः।

ऐसी नीति का प्रयोग उसने किया।

हमें इतिहास के सत्य का पता नहीं, इसीलिए इसमें धृतराष्ट्र की उदारता दिखायी देती है। हमने तो दादी माँ से सुना हुआ है। किसी दिन मूल ग्रन्थ देखने का प्रयत्न थोड़े ही किया है? और इस आधे राज्य में भी क्या दिया, इसका पता है? कृषि के अयोग्य, वीरान, घासवाली और जंगलों से भरपूर ज़मीन पाण्डवों को दी। पाण्डवों का अभ्युदय तो शून्य से सृष्टि निर्माता सलाहकार श्रीकृष्ण का ऋणी है। इनक परामर्श के अनुसार ही पाण्डवों ने आधा राज्य स्वीकार किया। '**धृत्युत्साह समन्वितः**' धैर्य तथा उत्साह सम्पन्न कृष्ण ने पाण्डवों के लिए नगर निर्माण की प्रथम योजना बनायी। इनकी इस योजना के अनुसार एक भव्य नगर की रचना हुयी। राज्य उत्तम रीति से चलने लगा। पाण्डव शांत थे इससे कृष्ण को चैन न पड़ा। उनकी योजना तो पाण्डवों को निमित्त बनाकर पृथ्वी से दुष्ट राजाओं का संहार कर, धर्म चक्र स्थापित कर, पृथ्वी को नन्दनवन के समान बनाने की थी। इसीलिए उन्होंने पाण्डवों को राजसूय यज्ञ करने की प्रेरणा प्रदान की।

धृतराष्ट्र को पाण्डवों की दिग्विजय की बात सुनकर दुःख तो बहुत हुआ, उससे पाण्डवों का अभ्युदय सहन नहीं हुआ, परन्तु क्या करें? युद्ध के समय धृतराष्ट्र ने संजय द्वारा युधिष्ठिर को द्रवित करने का प्रयास किया, संजय को सन्धि के लिए भेजा, संजय की कृत्रिम प्रेममय मीठी वाणी से यदि युधिष्ठिर पिघल गये होते, तो पाण्डवों का नाश हो जाता। वह कदाचित् पिघल भी जाते परन्तु पास ही 'कैवर्तकः केशवः' थे, इसलिए संजयसन्धि निष्फल हुई। संजय को निराश होना पड़ा। महाभारत में दो सन्धियों का वर्णन है, एक संजय सन्धि और दूसरी कृष्ण सन्धि। इनमें संजय-सन्धि का हेतु अति कुटिल था।

इतना विस्तृत वर्णन करने का कारण यह है, कि एक राजा से अन्य राजसत्ताओं की थोडी बहुत कल्पना की जा सके।

इस प्रकार जब भगवान श्रीकृष्ण ने अवतार धारण किया, जन्मे तब एक ओर जरासन्ध, शिशुपाल इत्यादि का आक्रमणकारी साम्राज्यवाद फैल रहा था, कंस और धृतराष्ट्र उनके पद-चिह्नों पर चल रहे थे। उग्रसेन जैसे देवतुल्य पिता से कंस जैस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुपुत्र पैदा हुआ था। धृतराष्ट्र भी अनीति का आचरण करता था, यदि वह नीति से रहा होता तो श्रीकृष्ण ने उसकी सहायता से धर्मराज्य की स्थापना की होती, परन्तु यह सम्भव न था। दुर्योधन तो अपने बाप से सवाया था। उस समय राजाओं का अधःपतन हो गया था। सामर्थ्यवान, उन्मत्त राजा ऐसा मानने लगे थे कि धर्मनीति के साथ उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं।

"यतो रत्नभुजा वयम्"

तत्कालीन सत्ता सम्पत्तिवाले लोगों को लगता था कि धर्म दुर्बलों के लिए है और राजा या सम्राट जो कहें वही धर्म! साम्राज्य–शक्ति धर्म की अपेक्षा श्रेष्ठ है। सत्ता और सम्पत्तियुक्त मानवों को इस जगत में कोई सिखा नहीं सकता। कंस, जरासन्ध, शिशुपाल, कालीनाग, कालयवन, नरकासुर, कौरवेश्वर दुर्योधन इन सभी की यही वृत्ति थी। सभी राजा अन्धे और अज्ञानी न थे। उनके दरबार में धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजशास्त्र इत्यादि का गहन अभ्यास किये हुये विद्वान थे। परन्तु जब लोग उनको समझाने लागते, तब वे कहते कि 'मन्दिर में जाकर समझाओ' जरासंध कहता 'तुम्हारे इतिहास के सिद्धान्त मुझे न कहो। तुम्हारे सिद्धान्तों को बाहुबल से, बुद्धिबल से असत्य सिद्ध करना ही मेरा पुरुषार्थ है।' कालयवन और नरकासुर कहते, 'हम एक ही अर्थशास्त्र जानते हैं कि दूसरों को लूटना और धनवान बनना। यही सुगम और सरल मार्ग है।' शिशुपाल कहता, 'न्याय–अन्याय की कल्पना सामान्य लोगों के लिए है, हम हैं सम्राट। सत्ता और सम्पत्ति वालों की जाति ही भिन्न है, उनके लिए यह नियम नहीं है। वे लोग जो बतायेंगे वही नियम हैं।' दुर्योधन को भी कोई समझाता तो वह तुरन्त उत्तर देता, "जगत में जितने रत्न हैं वे सब मेरे कोषागार में होने चाहिए। 'यतो रत्नभुजा वयम्'–हम रत्नों का उपयोग करने के लिए पैदा हुये हैं।"

इसप्रकार राजा लम्पट, उन्मत्त, अहंकारी, मिजाजी और भोगविलासी बन गये थे। राजसत्ता का अधःपतन हो चुका था और ज्ञानावस्था चली गयी थी। ब्राह्मण संस्था छिन्नभिन्न हो गयी थी। परिणामस्वरूप 'समाज' शब्द का शब्दकोष में ही नामशेष था। लोग धन को ही सर्वस्व मानने लगे थे। पैसा होगा तो सभी झुक जायेंगे ऐसा लोगों का विश्वास था। द्रव्योपार्जन ही जीवन का लक्ष्य बन गया था। ब्राह्मण संस्था के अधःपतन के कारण साँस्कृतिक पुरुष की रीढ रज्जु टूट गयी थी। राजसत्ता और समाज दोनों अधःपतन के गर्त में चले गये थे। समग्र भारतदेश मूर्ख नेताओं से भरा हुआ था और **"राजा कालस्य कारणम्"** के नियमानुसार प्रजा में भी अनीति व्याप्त हो गयी थी। इसलिए ही जगत को फिर से मार्ग पर लाने के लिए भगवान श्रीकृष्ण को अवतार धारण करना पडा :—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥**

अर्थात् श्रीकृष्ण के जन्म से पूर्व का काल अज्ञान से भरा हुआ था। लोगों में भोग लम्पटता आ गयी थी। त्याग, प्रेम का नाम न था। 'संयम' शब्द सुनने में भी न आता था। वैभव और विलास की ही बातें कोने कोने में होती थीं। '**धनान्यर्जयध्वं धनान्यर्जयध्वं**–के पीछे ही लोग लगे हुये थे। इसलिए युगपुरुष को धर्मचक्र की पुनस्स्थापना करने की प्रतिज्ञा के अनुसार अवतार लेना पडा था।

जिस समय समस्त भारत और जगत के तत्कालीन लोग कर्तव्यच्युत हो गये थे, प्रत्येक अधिकार की भाषा बोलता – ऐसी दशा हो गयी थी, उस समय गोकुल वृन्दावन की कृष्ण जन्मभूमि प्रत्यक्ष किस प्रकार की थी, उसका विचार हम कल करेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चौथा प्रकरण

गोकुल, वृन्दावन और मथुरा की परिस्थिति

यादवों का गण-राज्य

भगवान श्रीकृष्ण का जन्म वसुदेव जी के यहाँ देवकी जी से हुआ। नन्द के घर में उनका पालन-पोषण हुआ। बचपन गोकुल में बीता, फिर मथुरा आकर कंस को मारा और उसके बाद यादव के रूप में प्रत्यक्ष व्यवहार करने लगे। तब तक वे यादव के तौर पर व्यवहार नहीं करते थे।

जिस समय उपरोक्त बातों का विचार करते हैं, उस समय स्वाभाविक रूप से ही मन में यह प्रश्न उठता है कि, यह वसुदेव कौन थे ? कंस के अत्याचार का रूप कैसा था ? और विशेषकर कि उसका वसुदेव पर इतना अधिक क्रोध था, उसका कारण क्या था ? बचपन से ही भगवान को भूमिगत (underground) होना पड़ा, उसका कारण क्या है ?

यादवों की गणराज्य की मान्यता थी। यादवों में संघराज्य था। उनमें राजा जैसी कोई चीज नहीं थी। इस सम्बन्ध में पौराणिक कथा तो ऐसी है कि राजा ययाति ने शाप दिया था कि यादवों में कोई राजा न होगा-"**ययातिशापाद् यदुभिर्नासीतव्यं नृपासने।**"

दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य थे, उनकी एक पुत्री थी-देवयानी। देवताओं के गुरु बृहस्पति थे, उनका एक पुत्र था जिसका नाम कच था। देवताओं और दैत्यों के बीच सतत संग्राम चलता था। परस्पर एक पर आधिपत्य जमाने के लिए दोनों प्रयत्न करते थे। देवताओं की शक्ति दिनप्रतिदिन घटती थी क्योंकि दैत्यों के गुरु के पास संजीवनी विद्या थी। उसके प्रभाव से युद्ध में जो जो दैत्य मरते उन्हें वह जीवित कर देते थे।

देवताओं ने अपने गुरु बृहस्पति के साथ मंत्रणा कर गुरुपुत्र कच को सर्वानुमति से शुक्राचार्य के पास संजीवनी विद्या सीखने के लिए भेजा। कच का आकर्षक व्यक्तित्व, तेजस्वी आकृति, सूक्ष्म बुद्धि, अनुपम मनोनिग्रह इत्यादि लोकोत्तर गुणों को देखकर देवयानी उस पर मोहित हो गई थी। उसे देख मोहित हो पिता के पास उसके प्रति पक्षपात प्रदर्शित करती रहती।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विचक्षण कच उस समय उससे कुछ बोलता न था। उसका उद्देश्य तो विद्या सम्पादन करना था। देवयानी की कृपा से उसने संजीवनी विद्या प्राप्त करली। विद्या प्राप्त कर घर जाने के लिये गुरु की अनुज्ञा प्राप्त कर देवयानी से मिलने गया। देवयानी ने उससे कहा, 'मुझे छोड कर आप कहाँ जाते हैं ?' कच ने उत्तर दिया, 'पिताजी के पास वापस जाता हूँ। मेरा अध्ययन समाप्त हुआ।' देवयानी कहने लगी 'पिताजी ने भले ही आज्ञा प्रदान की हो मैं जब तक अनुमति न दूँ तब तक आप कैसे जा सकते हैं ? मेरी बात स्वीकार करके मेरे साथ विवाह करो' कच अटल रहा 'यह नहीं होगा। तू मेरी बहिन है। तेरे पिता तो मेरे गुरु हैं, इसलिये शास्त्रानुसार वे मेरे पितातुल्य हैं, अतः हम तो भाई–बहिन हैं।'

देवयानी ने कच को मनाने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु निष्फलता ही मिली। देवयानी ने क्रोधित होकर कच को शाप दे दिया – 'तेरी विद्या निष्फल होगी।' कच ने उत्तर दिया है, 'कोई बात नहीं, मैं पिता जी को सिखाऊँगा। वह उसका प्रयोग करेंगे। परन्तु तेरी ऐसी मति भ्रष्ट हुयी है और नियमभंग करने के लिए तत्पर होकर मुझे शाप देती है, तो मैं भी तुम्हें शाप देता हूँ कि जा; तेरे साथ कोई ब्राह्मण विवाह नहीं करेगा।'

दैत्यों के राजा विषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा देवयानी की सखी थी। दोनों एक दिन शहर के बाहर राजोद्यान में घूमने गईं। एकान्त होने से नदी के किनारे दोनों को जलक्रीडा करने की इच्छा हुई। वस्त्रों को किनारे पर रखकर दोनों स्नान करने के लिए नदी में उतरीं। स्नान कर बाहर निकलीं तो पवन से एक दूसरे के वस्त्र इकट्ठे हो गये देखे। दोनों के वस्त्र लगभग एक समान थे इससे उनका अन्तर शीघ्र नहीं किया जा सकता था। देवयानी ने तुरन्त ही वस्त्र पहन लिये। वे वस्त्र शर्मिष्ठा के थे। दोनों वस्त्रों के लिए लड़ने लगीं। कोई अपनी हठ छोडने को तैयार नहीं। शर्मिष्ठा रही राजा की लड़की; देवयानी ठहरी आश्रित की लडकी। शर्मिष्ठा ने सीधे ही देवयानी पर आक्षेप किया, 'तूने मेरे वस्त्र चुराये हैं।' देवयानी ने इसका विरोध किया, परन्तु उसने न मानते हुये उसके वस्त्र खींच कर उसे कुँए में गिरा दिया।

नहुषपुत्र ययाति उसी समय मृगया करने निकला था। स्त्री के आक्रन्दन की ध्वनि सुनकर वह कुँए के समीप गया और देवयानी को बाहर निकाला। पुरुष स्पर्श से लज्जान्वित देवयानी ने पाणिग्रहण की याचना की। ययाति भी मोहित तो हुआ, परन्तु गुरु-प्रभाव से परिचित होने के कारण, उनकी सम्मति की बिना उसने अपनी स्वीकृति देने से इनकार कर दिया।

दूसरी सखियाँ घर आ गयीं, परन्तु देवयानी नहीं आयी, इसलिए शुक्राचार्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वयं ही खोज करने निकले। ढूँढते ढूँढते कुंए के पास पहुँचे। पुत्री की बात सुनकर क्रोधावेश में आकर विषपर्वा के राज्य को त्याग कर जाने का निर्णय करने लगे। विषपर्वा को इस बात का पता चला। वह समझ गया कि पुत्री की नादानी के कारण दैत्य राष्ट्र पर बडी विपत्ति आ गयी है। वह दीन बनकर गुरु के पास गया और उनको पुत्री को दण्डित करने को कहने लगा। शुक्राचार्य मान तो गये परन्तु शर्मिष्ठा को देवयानी की दासी बनाने को कहा। शुक्राचार्य ने देवयानी को ययाति के साथ शादी करने की अनुमति दी और शर्मिष्ठा दासी के रूप में देवयानी के साथ गई। परन्तु राजकन्या शर्मिष्ठा अतिशय सुन्दर और आकर्षक थी। इसलिए देवयानी ने ययाति के साथ शर्त की कि वह कभी शर्मिष्ठा के साथ शादी नहीं करेगा। राजा कामवासना को रोक नहीं सका। उसने गांधर्व विवाह की रीति से शर्मिष्ठा के साथ विवाह कर लिया। और उसके साथ गुप्त सम्बन्ध रखा।

देवयानी के राजा ययाति से यदु और तुर्वसु नाम के दो पुत्र होते हैं। शर्मिष्ठा के द्रुह्यु, अनु और पुरु। पुरुवंश के पौरव और यदुवंश के यादव। देवयानी को इस बात का पता चला तब क्रुद्ध होकर अपने पिता के पास चली गई है और ययाति के वचन-भंग की बात कही। पुत्री-प्रेम से मोहित शुक्राचार्य ने ययाति को शाप दिया, 'दुष्ट! तू वृद्ध हो जा।' राजा ने हंसकर कहा 'इसमें आपकी पुत्री का ही अकल्याण है।' शुक्राचार्य ने अपनी भूल को समझ कर कहा, 'अब तो यदि तेरा कोई पुत्र तेरी वृद्धावस्था को लेगा, तभी वह जायेगी।' कामलम्पट ययाति ने अपने पाँचों पुत्रों के पास दीन वचन से याचना की। यदु ने इनकार कर दिया, पुरु ने स्वीकार। राजा ने, यदु पर अप्रसन्न होकर शाप दिया 'तेरे वंश में कोई राजा नहीं होगा।'

एवमुक्त्वा यदुं तात शशापैनं स मन्युमान्।
अराज्या ते प्रजा मूढ! भवतीति नराधमः॥

पौराणिक बातों में लोगों को बहुत रस आता है। इसमें मूल बात का बहुत ही विस्तार किया जाता है। परिणामस्वरूप मूल बात में दीर्घकाल में फेरफार होता जाता है। बात घंटे भर चलती है, परन्तु जो कहना होता है वह अन्तिम दो मिनट में ही होता है।

इस कथा से हम इतना समझ सकते हैं कि यदुवंश में राजा होने का अधिकार किसीको न था। इसलिए इस वंश में राजा की प्रथा न थी। बाकी ययाति मात्र यदु को ही शाप दे और अन्य तीन पुत्रों को नहीं, यह बात दिमाग में बैठने वाली नहीं क्योंकि उन तीन पुत्रों ने भी स्पष्ट इन्कार कर दिया था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वास्तविकता यह है कि उस समय साम्राज्यों के संचालन के सम्बन्ध में नये नये प्रयोग होते थे। साम्राज्य, राज्य, पारमेष्ठ्य इत्यादि के प्रयत्न किये गये थे। पुरुवंश में राजा की प्रथा अस्तित्व धारण की हुई थी जब कि यदुवंशी संघराज्य में ही मान्यता रखते थे। लोगों के लिए कौन सी राजसत्ता अधिक लाभदायक होगी, इस सम्बन्ध में प्रयोग होते थे।

शिशुपाल ने भगवान श्रीकृष्ण के पूजन का विरोध करते हुये यही प्रश्न उठाया था। उसने कहा था कि यादव कुल में राजा होता ही नहीं। तो श्रीकृष्ण का राजा के रूप में पूजन कैसे किया जा सकता है?'

कथं ह्यराजा 'दाशार्हे'। 'दाशार्ह' कुलवाचक शब्द का प्रयोग किया गया है।

इससे स्पष्टतः यादव कुल में राजा की प्रथा ही अस्तित्व में न थी। यादवों में एकवंशी राजतंत्र था ही नहीं। संघराज्य और गणराज्य एक शापरूप घटना बन सकती है, यदि उसमें फूट पैदा हो तो। इसलिये ही वह घटना हुई और शाप शब्द का प्रयोग हुआ होगा।

महाभारत के शांतिपर्व में नारद-कृष्ण संवाद है। इस संवाद में गण-राज्य और संघराज्य (Republic) का बहुत सुन्दर वर्णन है। संघ की राजनीति समझाते हुए नारद कहते हैं—

भेदाद् विनाशः संघानां संघमुख्योऽसि केशव !
यथात्वां प्राप्य मोत्सीदेदयं संघस्तथा कुरु ॥

अर्थात भेद से संघ का विनाश होता है हे केशव! आपको पाकर इस संघ का विनाश न हो, ऐसा कार्य कीजिए।"

यादव गणराज्य को मानते थे इसलिए हम राजा राम कहते हैं, परन्तु राजा कृष्ण नहीं कहते। नारद जी ने कहा था, उस तरह भगवान श्रीकृष्ण तो संघ के प्रमुख थे। अर्थात् यादवों में संघराज्य (Republic) की व्यवस्था थी' यह प्रथा एकवंशीय या अनुवंशीय नहीं होती। महान राजनीतिज्ञ चाणक्य ने भी इस नीति का वर्णन किया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के पहिले अधिकरण के छठे अध्याय में 'वृष्णिसंघ' शब्द का उल्लेख है।

राजतन्त्र के दो प्रकार

राजतन्त्र दो प्रकार के होते हैं - १) साम्राज्यवादी (Autocratic), इसका प्रमुख राजा होता है, जो कि वंशपरम्परागत होता है। २) गणतन्त्र (Republic) इसके प्रमुख को भी 'राजा' तो कहते हैं, परन्तु वह वंशपरम्पगत न होकर, प्रजा का चुना हुआ प्रतिनिधि होता है। यादवों की राज्य-संरचना संघ की संरचना थी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संघराज्य सदैव तभी टिक सकते हैं जब कि दुर्भेद्य हों। जगत में सब से उच्च और उत्कृष्ट राज्य-व्यवस्था यदि कोई है तो वह संघराज्य की व्यवस्था है ऐसा कौटिल्य कहते हैं। ऐसे राज्य में जब एकता टूट जाय और फूट का अंकुरण हो जाय तभी यह बलहीन हो जाता है। अन्यथा संघराज्य जैसा शक्तिशाली (Powerfull) कोई राज्य नहीं। महाभारत में और कौटिल्यराजनीति में संघराज्य को ही सब से उत्तम राजव्यवस्था के रूप में माना गया है। यादवों के संघराज्य तथा भारत में तत्कालीन भिन्न भिन्न राज्य-व्यवस्थाओं के सम्बन्ध में महाभारत में लिखा है-हिन्दुस्तान में राजाधीन और गणाधीन ऐसे दो प्रकार के राज्य थे। इसका प्रमाण बौद्ध और जैनधर्म के वाङ्मय, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, महाभारत तथा ग्रीक वकील मेगस्थनीज के ग्रंथित वृतान्तों से व्यक्त होता है।

अवदान शतक में वर्णन है कि–

मध्य हिन्दुस्तान से दक्षिण हिन्दुस्तान में कुछ व्यापारी गये, उस समय उनको वहाँ के राजा ने पूछा कि वहाँ (मध्य हिन्दुस्तान में) राज्य पद्धति किस प्रकार की है, उस समय उन व्यापारियों ने उत्तर दिया–' **केचिद्देशाः राजाधीनाः केचिद्देशाः गणाधीनाः।**

अर्थात् यादवों की राज्य-संरचना संघ-राज्य (Republic) की थी जब कि दूसरे कितने ही देशों में साम्राज्य पद्धति थी।

इतिहास का विकृतीकरण

अंग्रेजों की तो इस सम्बन्ध में शोध ही निराली है। गण या संघ शब्द के भाषान्तर के लिए अंग्रेजी में उसका प्रतिशब्द Tribe है। अंग्रेज इतिहासवेत्ताओं ने संघराज्यों के लिए Tribe (भटकते लोगों की समूह) शब्द का प्रयोग किया है। बडे बडे इतिहासवेत्ताओं ने यह मत प्रदर्शित किया है कि भारत में उस काल में संघराज्य बहुत उत्तम रीति से चलता था। जब कि अंग्रेज इतिहासकारों के संशोधन का नवनीत (!) यह है कि उस काल में ग्राम पंचायती प्रथा अस्तित्व में थी, और उन्हें संघ राज्य के रूप में जाना जाता था। यह एक आश्चर्यजनक घटना है। इसे तो एक प्रकार का दुष्ट प्रचार ही कहा जा सकता है क्योंकि जिस देश में प्लेटो और अरिस्टोटल जैसे तत्त्वज्ञानी राजनीतिज्ञ हो गये और Republic की कल्पना जिसने दी, उस कोटि के मानव क्या ग्रामपंचायत को संघराज्य कहते होंगे? इन दोनों में रहने वाले अन्तर का पता ही न था, या फिर उनका अभ्यास करने वाले तत्ववेत्ता अपनी बुद्धि के द्वार बन्द कर बैठे थे? सत्य घटना लिखने वाले इतिहासवेत्ता ऐसी बात करें तो यह सचमुच दुःखद कही जायेगी। सत्य बात तो बिलकुल भिन्न ही है। ऐसा विपरीत विधान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करने वालों को हम अपने 'गुरु' मानते हैं और उनके ऐसे विधानों को वेद प्रामाण्य समझते हैं। हम विचार भी नहीं करते कि ये लोग हमको कितना गिराने का प्रयत्न करते हैं। तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर पता चलेगा कि आज के इतिहासवेत्ता भी जिसको प्रमाण मानते हैं ऐसे चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार का वकील मेगेस्थनीज अपनी डायरी में लिख गया है –

"They report everything to the king where the people have a king and to the Magistrates where the people are self governed." अर्थात "जहाँ राजा था, वहाँ जनता राजा के पास जाकर फरियाद करती थी, और जहाँ गणराज्य थे वहाँ जनता न्यायाधीश के पास शिकायत ले जाती थी। संक्षेपतः भारत में प्राचीनकाल से ही Republic पद्धति विद्यमान थी।

अंधक वृष्णि संघ

पाणिनि के व्याकरण में भी 'वृष्णि' और अंधक शब्दों का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार सभी एक ध्वनि से कहते हैं कि भारत में प्राचीनकाल से संघराज्य की प्रथा जारी थी। मात्र अंग्रेज इतिहासकारों के मस्तिष्क में ही यह बात नहीं उतरती। इसका पर्याप्त संशोधन आवश्यक है। कुछ भाई इसका प्रयत्न कर रहे हैं। प्रभु उनको संशोधन में प्रेरणा प्रदान करें।

यादवों की राज्यव्यवस्था प्रजातांत्रिक गणराज्य की थी। यादवों में दो कुल थे-एक अंधक और दूसरा वृष्णि। अंधक कुल का शासन मथुरा के आस पास के प्रदेशों पर था। ये प्रदेश अंधक संघ के रूप में प्रचलित थे। इस संघ के प्रमुख उग्रसेन थे। इतिहास का अध्ययन करना है, इसलिए एकतंत्री राज्य-व्यवस्था, साम्राज्य और गणराज्य पद्धति आदि के भेद जिन्हें हम अब देख चुके हैं, ध्यान में रखने पड़ेंगे, अन्यथा अर्थ का अनर्थ होगा। उग्रसेन के आगे 'राजा' शब्द लगने के बावजूद वह गणराज्य था। 'राजा' यह मात्र एक शाब्दिक प्रयोग ही था। गणराज्य के प्रमुख के लिए 'राजा' शब्द का प्रयोग करते थे, यह बात हमने देखी।

इसीप्रकार दूसरा संघ वृष्णिसंघ था, उस संघ के तत्कालीन नेता-प्रमुख अक्रूर जी थे। वसुदेव जी वृष्णि कुल के थे। वे तत्कालीन प्रजामान्य, प्रतिष्ठित नेता और शूर के पुत्र थे। भगवान श्रीकृष्ण ने वसुदेव के यहाँ जन्म लेकर वृष्णिसंघ को पवित्र किया। अंधक और वृष्णि, इन दोनों संघों को जरासंध के फैलते हुये आक्रमणकारी साम्राज्यवाद का बहुत बडा भय था। मगधपति जरासंध की समस्त प्रदेशों पर एकछत्र शासन करने की इच्छा थी। संघराज्यों को इससे बढ़कर दूसरा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्या भय हो सकता है? उनको सदैव इन आक्रमणकारी शासकों का भय रहता। (जरासंघ ने ८६ राजाओं को हराकर अपना बन्दी बनाया था।)

ऐसे शत्रु का सामना करने के लिए दोनों संघराज्यों में सहयोग आवश्यक है, ऐसा समझकर उग्रसेन ने अपनी पुत्री सुतनु का पाणिग्रहण अक्रूर जी के साथ किया और शूर-पुत्र वसुदेव के साथ देवक की पुत्री देवकी का विवाह किया। इस प्रकार जरासंध के भय से दोनों राज्य मिल गये। फिर भी उस समय वहाँ द्विराज-पद्धति ही अस्तित्व में थी, ऐसा स्पष्ट समझ में आता है। दोनों संघराज्यों की लोकसभा एक (Common) थी। और एक लोकसभा में एक साथ बैठकर उग्रसेन और अक्रूर जी, दोनों अपने संघों के हित (Interest) और कल्याण (welfare) के लिए चर्चा, वाद-विवाद करते और आवश्यकता पडने पर एकमत न होने पर झगडते भी थे।

उदाहरण स्वरूप, आज महाराष्ट्र और मद्रास (तामिळनाडु) राज्य अलग अलग हैं फिर भी दिल्ली में तो दोनों के हित समान हैं। दोनों राज्यों के प्रतिनिधी दिल्ली में – एक दूसरे के हित के सम्बन्ध में चर्चा करते हैं, और झगडते भी हैं। इस प्रकार दोनों राज्य स्वतंत्र होने के बावजूद एक है। यादव कुल के दोनों संघराज्यों का भी ऐसा ही था। संघ राज्य में तो प्रत्येक व्यक्ति का हित समाहित है। प्रत्येक व्यक्ति की उसमें रुचि होती है। इस प्रकार संघराज्य यदि योग्य रीति से चले तो उसकी शक्ति अपार होती है। वह एक अति प्रबल राज्य होता है। इस कारण जरासंध जैसे शक्तिशाली राजा को यदि किसी का भय था, तो इन दो संघराज्यों का ही था।

जिस प्रकार मगधपति को संघराज्यों का भय था, उसी प्रकार संघराज्यों को भी मगधपति का भय था। एक दूसरे से डर कर चलने वाले Common कागज पर हस्ताक्षर कैसे करते हैं, इसका हमें पता है।

जरासंध की भेदनीति

जरासंध को पता था कि मात्र आक्रमण करने से कुछ लाभ नहीं। क्योंकि संघराज्य का प्रत्येक नागरिक – सैनिक मातृभूमि के रक्षण के लिए रक्त के अन्तिम बिन्दु तक लड़ मरेगा। इसलिए उसने चाणक्य भेद-नीति से काम लेने का निर्णय किया, क्योंकि संघराज्य भेद (फूट) के बिना टूटता नहीं। चाणक्य ने कहा है– **'विगुणात् भेददंडाभ्याम्।'**

जरासंध ने युक्ति रची। भेद डालने के लिए संघप्रमुख उग्रसेन के पुत्र कंस के साम्राज्यवादी स्वभाव से परिचित होकर उसने अपनी दोनों पुत्रियों अस्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और प्राप्ति का विवाह कंस के साथ कर दिया। जमाईराज का मूल्य बढ गया। उसके पीछे अब मगध की समस्त शक्ति खड़ी थी।

संघराज्य में संघ प्रमुख का पुत्र युवराज नहीं समझा जाता, जैसे आज प्रधानमंत्री (Prime minister) के लड़के को सामान्य प्रजाजन की अपेक्षा कुछ विशेष अधिकार नहीं हैं। उसी प्रकार उस समय यादव संघों में कंस की स्थिति थी, उसे कोई विशेष अधिकार नहीं थे। वह युवराज नहीं था। जरासंध ने कंस को उत्तेजित किया। बाप की मृत्यु के पश्चात राजगद्दी न मिले तो क्या करना? फिर साम्राज्यवाद का बल मिलने से कंस में सत्तापिपासा जागृत हुई। एकतंत्री सत्ताभिलाषा के स्वप्न आने लगे। उसने संघराज्य के तोडने और अपनी सत्ता जमाने के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये। साम्राज्य लालसा ने कंस को जरासंध का सैनिक बना दिया और बुद्धिशाली जरासंध ने यादवों के गणराज्य में फूट डालने के लिए कंस का समुचित उपयोग किया।

कंस की सत्ताप्राप्ति

एकतंत्री राज्य स्थापित करने के लिए कंस ने प्रज़ा को डराने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। दमन राज्य प्रारम्भ किया। उग्रसेन को गिरफ्तार कर सत्ता का सूत्र अपने हाथ में ले लिया। इस प्रकार कंस राजा बन बैठा। लोकशाही और स्वतंत्र रीति से जीने के अभ्यस्त प्रजाजनों का असंतोष कंस के एकछत्र शासन के विरुद्ध उमड पडा परन्तु उसके भय से बहुत से लोगों ने उसके पक्ष में खड़ा रहना ही स्वीकार किया। कंस तो बारम्बार समर्थ लोगों को एक ही धमकी देता था, 'टेढ़ेमेढे चलोगे तो अपने श्वसूर को बुला लाऊँगा।' परन्तु कितने ही स्वतंत्रताभिलाषी समर्थ व्यक्ति उससे डरते या दबते न थे। ऐसे निर्भय लोगों के नेता थे एक अक्रूर जी और दूसरे वसुदेव जी। दोनों कंस के बहनोई थे। उग्रसेन ने आपने भाई की पुत्रियाँ अक्रूर और वसुदेव जी के साथ व्याही थीं। इससे अक्रूर और वसुदेव परस्पर साढूभाई हुए। दोनों बहनोई और विरोधी होते हुए भी कंस दोनों पर समान रूप से अप्रसन्न न था। वसुदेव जी पर उसे अधिक क्रोध था। तो उसका कारण क्या था? अक्रूर उसका सगा बहनोई था, यह कारण है? पर जिसने सगे बाप को जेल में डाल दिया उसके लिए सगा क्या और सौतेला क्या? इन लोगों के स्वार्थ के सामने कोई सम्बन्ध आता ही नहीं। ऐसा होने पर भी अक्रूर और वसुदेव के प्रति कंस के व्यवहार में बहुत बडा अंतर दिखायी देता है, वह स्वाभाविक ही है। क्योंकि अक्रूर वसुदेव की अपेक्षा कम निष्ठावान थे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धर्मनिष्ठ वसुदेव

वसुदेव जी ज्वलंत धर्मनिष्ठ थे। किसी भी प्रसंग में धर्मच्युत होने की अपेक्षा अपने प्राणत्याग करना अधिक पसन्द करते।

यस्त्वं देवोपमं वृद्धं वसुदेवं वसूपमम्।
मोहत् क्षिपसि दुर्बुद्धे! कुतस्ते शांतिरात्मनः॥

उन्हें देवता की उपमा दी जाती। वे पवित्र, सदाचारी और धर्मपरायण होने के कारण अधिक लोकप्रिय भी थे। अक्रूर जी भी ऐसे ही धर्मपरायण थे। संघराज्य टिकाये रखने की उन्हें बड़ी चिन्ता थी, परन्तु कभी कभी उनके मन में स्वार्थ की अभिलाषा जागृत हो जाती और उसको प्राप्त करने के लिए वे वाममार्ग का भी उपयोग करते। इसलिए ही कुछ अंश तक कभी कभी कंस की पंक्ति में भी जा बैठते। कंस को यह विश्वास था कि समय आने पर अक्रूर जी वाम मार्ग का अनुसरण करते हैं, इसलिए मेरा अनुसरण करने में नहीं हिचकेंगे। इसीलिए अक्रूर और वसुदेव दोनों बहनोई संघराज्य टिकानेवाले समर्थ नायक होने पर भी कंस को वसुदेव के प्रति अधिक चिढ़ थी। अक्रूर जी पर कंस को थोड़ा बहुत प्रेम था। इसीलिए तो अक्रूर जी को कंस ने बलराम और श्रीकृष्ण को लिवाने के लिये गोकुल भेजा।

अक्रूर जी के पात्र का यथोचित अध्ययन करेंगे तो इनमें नीचे गहराई में महत्वाकांक्षायें दबी पडी थीं–यह ज्ञात हुये बिना नहीं रहेगा। इसीलिए कंस के अक्रूर जी और वसुदेव जी के प्रति व्यवहार में इतना अंतर दिखायी देता है, अन्यथा अक्रूर और वसुदेव दोनों संघ प्रमुख थे, दोनों लोकप्रिय थे। दोनों बहनोई भी थे, परन्तु अक्रूर जी में कंस को थोड़ा समान धर्म दिखाई दिया। अमुक विषयों में वह कंस के अनुकूल हो सकता है, ऐसा लगता था। कंस मानता था कि उसको मैं अपने काम में ले सकता हूँ। इसीलिए वसुदेव को उसने बंदीगृह में डालकर पीड़ित किया, परन्तु अक्रूर जी को तो अपने दरबार में ही रखा।

धनलोलुप अक्रूर जी

हम अक्रूर जी को थोड़ा बहुत समझने का प्रयास करें। द्वारिका में सत्राजित के पास एक स्यमन्तक मणि थी। उसे यह मणि मित्रता के नाते सूर्य से मिली थी। मणि का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता था। यह मणि प्रतिदिन आठ भार सोना देती थी। यह बात भगवान श्रीकृष्ण की जानकारी में आयी। ऐसी मान्यता से कि ऐसी मूल्यवान मणि पर किसी व्यक्ति का स्वामित्व हो तो यह उचित नहीं; यह राज्य की सम्पत्ति होनी चाहिए, श्रीकृष्ण ने सत्राजित से राज्य के लिए

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मणि की मांग की। परन्तु सत्राजित ने राज्य के लिए मणि देने से स्पष्ट इनकार कर दिया। श्रीकृष्ण ने समझाकर कहा, 'ऐसी वस्तु को राज्य के हित के लिए दे दो तो यह अधिक हितकर है। दो तो अच्छा, न दो तो मेरा कुछ जोर नहीं।' सत्राजित नहीं माना।

इसके पश्चात सत्राजित का भाई प्रसेन एक दिन इस मणि को पहनकर वन में शिकार करने गया था। जंगल में उसे सिंह ने मार डाला। इसी समय जंबुवान वहाँ पहुँचा। उसने सिंह को मार डाला और मणि को लेकर चला गया।

सत्राजित को जब भाई की मृत्यु की खबर मिली तो वह बड़ा क्रोधित हो गया। भाई के गले की मणि चुराई गयी, यह जानकर वह कृष्ण को गाली देने लगा। प्रसेन को मणि लेने के लिए कृष्ण ने ही मारा होगा, ऐसा उसने मान लिया। इससे वह कृष्ण पर प्रसेन को मारने और मणि ले लेने का प्रत्यक्ष आक्षेप करने लगा।

चोरी का आक्षेप

जब कोई किसी निःस्वार्थ व्यक्ति पर मिथ्या कलंक लगाये, तब उसे बड़ा क्रोध आता है। श्रीकृष्ण को क्रोध तो बहुत आया, परन्तु करें क्या? स्वयं ही राज्य के लिए सत्राजित से मणि की मांग की थी, यह वास्तविकता थी। इस प्रकार यह एक समान घटना – coincident–बन गयी। इसलिये उन्होंने उस समय मौन रहना ही पसंद किया।

परन्तु वे चैन से बैठे न रहे। उन्होंने प्रसेन के पदचिन्हों पर ढूंढ़ प्रारम्भ की। जहाँ प्रसेन मरा था वहाँ से दूसरी दिशा में किसी के पदचिन्ह देखे। जम्बुवान के ही चरणचिह्न येथे। श्रीकृष्ण इन पदचिह्नों के पीछे होकर जम्बुवान के पास पहुँचे। उसको युद्ध कर हरा दिया। पराजित जम्बुवान ने अपनी पुत्रि श्रीकृष्ण को भेंट की। श्रीकृष्ण मणि तथा पत्नी को लेकर द्वारिका वापस लौटे।

श्रीकृष्ण तो अति बुद्धिमान साधुपुरुष थे। उन्होंने मणि अपने पास न रखकर एक आम सभा बुलाकर उसमें सत्राजित को वापस दे दी। कैसी निर्लोभ वृत्ति! हृदय की ऐसी विशालता अन्यत्र कहाँ देखने को मिलेगी! श्रीकृष्ण की ऐसी उदारता देखकर सत्राजित बहुत लज्जित हो गया। श्रीकृष्ण पर किये गये अपने आक्षेपों के लिए उसे असीम दुःख हुआ और प्रायश्चित स्वरूप अपनी पुत्री सत्यभामा श्रीकृष्ण को प्रदान की।

दूसरी ओर, सभा में जब अक्रूर जी ने मणि देखी तो उनके मुँह में पानी आ गया। यह मणि मेरे पास रहे तो कितना अच्छा? कितना दान–पुण्य और यात्रा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हो ? यहीं उनकी निर्बलता का हमें परिचय होता है। श्रीकृष्ण ने मणि मिलने के बावजूद उसे स्वीकार नहीं किया। सत्राजित ने वरदक्षिणा में मणि प्रदान की तब उन्होंने अस्वीकार कर दिया। कितना विशुद्ध चारित्र्य !

अक्रूर जी का मन मणि में ही था। उन्होंने मणि प्राप्त करने के लिए युक्ति ढूँढ निकाली। वाममार्ग के उपयोग करने का विचार किया। सत्यभामा का विवाह श्रीकृष्ण के साथ होने से पूर्व सत्राजित ने उसे शतधन्वा को देने का निश्चय किया था। अक्रूर जी ने शतधन्वा को उत्तेजित किया और उसके हाथ से सत्राजित का वध कराया और मणि स्वयं ले ली।

लोभ क्या नहीं कराता ? अक्रूर जी जैसे कृष्णभक्त मणि के लोभ में ऐसा षड़यंत्र करने में भी नहीं हिचकिचाये !

शतधन्वा ने सत्राजित का वध कर मणि ले ली परन्तु फिर वह घबड़ाया। क्रोध में मनुष्य की बुद्धि काम नहीं करती। उस समय मनुष्य अघटित कार्य कर बैठता है, परन्तु फिर माथे पर हाथ देकर रोने लगता है। शतधन्वा का भी ऐसा ही हुआ। मणि तो मिली, परन्तु श्रीकृष्ण के हाथ से कैसे बचना ? इसलिए वह दौडा – २ अक्रूर जी के पास गया। भगवान मारने आयेंगे तो मेरा क्या होगा ? अक्रूर जी ने कहा, 'डर मत, इसमें घबड़ाता क्यों है ? संघराज्य मेरे हाथ में है। ऐसा कुछ होगा तो मैं तेरी सहायता करूँगा। संघराज्य को कृष्ण के विरुद्ध खडा करूँगा।' इसप्रकार मणि के लिए वे श्रीकृष्ण से लड़ने के लिए भी तैयार हुये !

जिस समय यह घटना घटी, बलराम श्रीकृष्ण हस्तिनापुर थे। सत्यभामा ने रोते – २ श्रीकृष्ण को बुलाने के लिए पत्र लिखा, श्रीकृष्ण दौडते हुये आये। शतधन्वा पर आक्रमण करने चले। शतधन्वा दौडकर अक्रूर जी के पास गया। अक्रूर जी ने कहा, 'मणि तेरे पास सुरक्षित नहीं रहेगी, इस लिये मेरे पास रख जा। फिर कृष्ण कुछ करेगा तो मैं तेरी सहायता करूँगा। शतधन्वा मणि को अक्रूर जी को पास दे गया। रात्रि को लडाई हुयी। अक्रूर जी पक्के व्यवहारू – वचनभङ्ग करते न हिचके। शतधन्वा सहायता की बाट ही देखता रहा और अंत में मारा गया। मणि अक्रूर जी के हाथ में रही।

अक्रूर जी मानते थे कि समय व्यतीत होने पर बात भुला दी जायेगी और मणि के लिए कोई कुछ पूछेगा ही नहीं। इन्होंने तो यज्ञ दीक्षा ली और बगुला भक्त की तरह दीक्षित बने। खूब यज्ञ किये। यज्ञ में दान में सुवर्ण देने लगे। लोग उन्हें धार्मिक मानें इसके लिए प्रयत्न करने लगे। क्यों न दें ? मणि के प्रताप से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खुशहाली थी। बल्कि मौनव्रत का ढोंग किया ताकि कोई कुछ पूछे नहीं। कोई पूछे तो उत्तर देना नहीं। बिल्ली आँख बन्द कर दूध पीती है और मानती है कि मुझे कोई देखता नहीं। ऐसी ही बात अक्रूर जी की थी, परन्तु श्रीकृष्ण तो सभी कुछ जानते थे। अक्रूर जी के ढोंग का उन्हें पता था।

अक्रूर जी पूरे व्यवहारू, इन्हें तो अपनी वाहवाही करानी थी, इसलिये ब्राह्मणों को खूब दान दिया। ब्राह्मण घर घर घूमकर उनकी प्रशंसा करते। जिनको कीर्ति प्राप्त करनी हो उन्हें कभी ब्राह्मणों को अप्रसन्न नहीं करना चाहिए, उन्हें तो प्रसन्न ही रखना चाहिये। अक्रूर जी इस व्यावहारिक बात को समझते थे इसलिये उन्होंने ब्राह्मणों को खुले हाथ दान दिया। समाज में अक्रूर जी की कीर्ति फैल गयी परन्तु अक्रूर जी को पता था कि मणि मेरे पास है, इसे कृष्ण जानते हैं, अतः अंत में राज्य छोड़कर तीर्थयात्रा करने चले गये।

इसके बाद की बात का ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता, पौराणिक बात तो ऐसी है कि फिर अक्रूर जी राज्यत्याग कर चले गये, क्योंकि वैसे तो वे धर्मनिष्ठ थे इसलिये उनका अन्तःकरण कचोचने लगा। काशी में अक्रूरघाट है, इसलिए काशी में चले गये हों-यह भी सम्भव है।

अक्रूर जी को कहीं चैन पडता न था। उनका मन दंसित होता था। बलवान और महान व्यक्ति के साथ विरोध किया यह बात भुलाती न थी। सज्जन पुरुषों से विरोध मोल लेकर कोई सुखी जीवन बिता नहीं सकता। अक्रूर जी फिर द्वारिका आये। कृष्ण के साथ सम्बन्ध सुधारने के लिए अपनी पुत्री का विवाह उनसे किया, परन्तु श्रीकृष्ण यह नहीं भूले थे कि अक्रूर जी ने मणि दबा रखी है। ससुर हुये तो क्या हुआ। उसने एक मणि के लिए कितना अधर्म किया है। बलराम अक्रूर की प्रशंसा कर रहे थे तब बलराम जी को भी भगवान ने यही कहा था 'मैं ससुर को ठीक ठीक पहचानता हूँ।' अक्रूर कौन है, यह बताने के लिए भगवान ने एक बार आम सभा में बलराम जी की उपस्थिति में ही आक्षेप किया, 'मणि तुम्हारे पास है, उस पर हमारा भी पूरा पूरा अधिकार है, इसलिये उस मणि को-जिसे दीर्घकाल से दबाकर रखा है, उसे चुपचाप हमें वापस दे दो।'

सीधा आक्षेप! इसमें शंका को स्थान ही नहीं, बेचारे अक्रूर जी घबडा गये। ऐसे सीधे आक्षेप का उत्तर भी क्या देना? चुपचाप उसने मणि श्रीकृष्ण को वापस दे दी। श्रीकृष्ण ने बलराम से कहा, 'बडे भाई! मैं कहता था न कि मणि अक्रूर जी के पास ही है।' श्रीकृष्ण ने यह मणि अपने पास न रखकर अंत में अक्रूर जी को वापस दे दी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वसुदेव और अक्रूर दोनों वृष्णि संघ के प्रमुख, संघराज्य के समर्थक और बहनोई होने के बावजूद कंस का दोनों के प्रति का व्यवहार कैसा था, वह अब सरलता से समझ में आ सकता है। अक्रूर किसी भी समय उसकी पंक्ति में बैठे जाने वाले थे। वसुदेव कभी भी बैठने वाले न थे। वसुदेव जी की उच्च कक्षा की सात्त्विकता अक्रूर जी में न थी।

कंस के विरुद्ध विद्रोह–क्रान्ति जाग्रत होने की स्थिति थी। उसके मुख्य सूत्रधार थे वसुदेव जी। उन पर कंस का बड़ा अविश्वास था। कंस जानता था कि मेरे विरुद्ध विद्रोह का मूल पुरुष वसुदेव ही है। इसीलिये इस लोक-नियामक को उसने कारागार में डाला। Detention Act लागू कर दिया।

कंस के वध हेतु भगवान को जन्म लेना पड़ेगा यह नारद जी जानते थे। वे बहुत ही खटपटी थे। इन्होंने कंस के मन में यह तो घुसा ही दिया कि अरे कंस! सोता क्या है? वसुदेव की संतान के हाथ से ही तेरा वध होगा। जनता भी कंस के विरुद्ध असन्तुष्ट तो थी ही। उसे आवश्यकता थी मात्र नेता की। अब यदि कंस वसुदेव के पुत्रों का वध करे तो जनता का उसके प्रति का असन्तोष अत्यधिक बढ जाय, यह स्पष्ट है। कंस के विरुद्ध जनता को उत्तेजित करने का यह उत्तम उपाय था।

पौराणिक बात एक ओर रख दें, तब भी नारद का पार्ट खेलने वाला व्यक्ति बहुत चतुर होगा। भगवान जन्में तब जेल के द्वारपाल अंध हो गये थे, यह पौराणिक कथा है, परन्तु वास्तव में कंस के अत्याचार से द्वारपाल इतने पीड़ित हो गये थे कि जब भगवान पैदा हुये तो जेल से जाने का प्रबन्ध भी इन लोगों ने ही कर दिया था।

राजनीतिज्ञ नारद

नारद जी की यह नीति कौटिल्य की नीति जैसी थी। कौटिल्य के राजशास्त्र के पाँचवे अधिकरण में ऐसी एक बात का उल्लेख है। उसमें मारने की पद्धति बताई है। एक प्रतिभासम्पन्न प्रधान और उसके अहंकारी पुत्र का काटा निकालने के लिए ऐसी युक्ति रची गयी थी। कितने ही बुद्धिशाली लोगों ने पुत्र के मन में यह बात घुसा दी कि तेरा बाप तेरी उन्नति नहीं चाहता। तेरे प्रधानपद के सम्बन्ध में तेरा पिता विरुद्ध है। उसे यह बात पसन्द न थी। इस प्रकार कान भरने पर फूट डाली और राज्य के प्रलोभन से उसने बाप की गर्दन उडा दी। ऐसा होता है; तब वे लोग ही पुत्र को पितृघाती घोषित कर, उसे भ्रष्ट करवाते हैं और राजा से फांसी दिलवाते हैं। इसी का नाम है राज खट पट। आज भी हमे पता है कि केवल Propaganda से लड़ाई जीती जाती है। 'V' for Victory और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Victory through defeat – यह सूत्र निरर्थक नहीं। इस प्रणाली के अनुसार नारद जी ने भी ऐसा ही किया। कंसने वसुदेव की छ सन्तानों को जन्मते ही मार डाला। 'षड्गर्भान्निःसृतान कंसस्तान् जघान शिलातले'। परिणाम स्वरूप उसके ऐसे कृत्य अपनी आँखों से देखने वाले द्वारपालों का, उसके सेवकों का, उसके प्रति तिरस्कार बढ़ गया। इसीलिये वसुदेव, श्रीकृष्ण को पैदा होते ही सकुशल बाहर ले जा सके। हरिवंश में यह बात है।

भागवत परमार्थिक ग्रन्थ है। भागवत निर्माण होने का हेतु ही भिन्न है। इस लोक और परलोक में शांति प्रदान करने वाली भक्ति-भावना लोगों में दृढ कराना इस ग्रन्थ का हेतु है। भागवतकार को भी भगवान तक पहुँचने का मार्ग भक्तों को दिखाना है। इस ग्रन्थ की पंक्ति पंक्ति श्रीकृष्ण-भक्ति से भरी हुई है। इसलिये इसका मुख्य उद्देश श्रीकृष्ण के महात्म्य का वर्णन करना और लोगों को कृष्ण भक्त बनाना है। इसलिये उसमें वर्णित अनेक प्रसंगों में ऐतिहासिक भूमिका नहीं होती। इसलिये ऐतिहासिक दृष्टि से हरिवंश अधिक योग्य प्रमाण है और हरिवंश के अनुसार नारद जी ने कौटिल्य अर्थशास्त्र में बताये प्रमाण की नीति का प्रयोग किया है। बुद्धि को भी यही बात योग्य लगती है।

हमको भी श्रीकृष्णजीवन का ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करना है। इसलिय श्रीकृष्ण जीवन की घटनाओं का विचार करते समय हरिवंश को ही अधिक प्रमाण मानना पड़ेगा। आधुनिक दृष्टि से भागवत हरिवंश की अपेक्षा आधुनिक, नवीन ग्रन्थ है। कंस के विरुद्ध मथुरा की जनता में असन्तोष था। नारद जी कौटिल्य-नीति का प्रयोग करते हैं। इससे लोग कंस के प्रति अति तिरस्कार-दृष्टि से देखते हैं और यही उसके नाश का मुख्य कारण था। यह बात ऐतिहासिक दृष्टि से खोजने-देखने के लिए कृष्ण जन्म, उनका बचपन, कंस के क्रोध का कारण इत्यादि का मंगलवार को विचार करेंगे। आज हमने देखा कि कंस को एकतंत्री राज्य की अभिलाषा थी और किस लिये उसको वसुदेव पर क्रोध था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पाँचवा प्रकरण

कृष्णजन्म और बाल्यावस्था

कल गणराज्य और संघराज्य का विवरण दिया, कंस ने देवकी के छः गर्भों की हत्या की, सातवें गर्भ का आविर्भाव हुआ, इस पौराणिक बात का हमको पता है। हमने उसका मात्र निर्देश ही किया है। परन्तु हमको यह तो विदित हुआ होगा कि उस काल में राजकीय और सामाजिक परिस्थिति बिगड़ गयी थी।

जन्म

उस समय ब्राह्मणत्व तथा राजनैतिक विचारों का अधःपतन हो गया था, नीति का नाश हुआ और फलस्वरूप नीति के बदले, स्वार्थ और त्याग के बदले भोग को जीवन में प्राधान्य मिला। पृथ्वी से पुण्य चला गया। इस अधोगति के गहन अंधकार के गर्त में समाज पड़ा था। उस समय भगवान श्रीकृष्ण का अभिजित नक्षत्र में रात्रि के बारह बजे जन्म हुआ।

जमुना में बाढ़

भगवान के जन्म के सम्बन्ध में 'भागवत' की कथा तो विख्यात है। भगवान ने जन्म लिया और इस युग पुरुष को बचाने के लिए वसुदेव को बन्दी-गृह से बाहर निकलने का मार्ग बना दिया। मूसलाधार पानी बरसता था जमुना में बाढ़ आयी हुयी थी। उसका पानी ऊँचे से उँचा चढ़ता जाता था। वसुदेव को यमुना पार जाना था। वह यमुना के पानी को चीरते हुये आगे बढ़ते जाते थे और जब बाढ़ का पानी अत्याधिक बढ़ने लगा तब भगवान ने जल को अपने चरण का स्पर्श कराया। भगवान के चरण स्पर्श होते ही यमुना-जल नीचे उतर गया। जल ने मार्ग दिया और वे अज्ञातवास में रहने के लिए गोकुल में चले गये।

सहज ही प्रश्न होता है कि इस प्रकार चरण-स्पर्श होते ही यमुना का जल उतर जाय और मार्ग दे, यह क्या सम्भव है? सत्य मानने जैसी बात नहीं है। तर्क से विचार करने वाले के गले में भी न उतरे, परन्तु, यदि सत्य मानने के लिए कारण नहीं तो असत्य मानने की भी आवश्यकता नहीं। जगत में बहुत सी बातें हमें अशक्य लगने वाली घटती हैं। इसलिए इस प्रसंग की तुलना भी तर्क लगाकर नहीं करनी चाहिये। चित् शक्ति की लीला के लिए क्या असम्भव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है ? भगवान का जीवन तर्क से परे है। इसलिये यह बात तर्क में नहीं उतरती, अतः यह सत्य से परे हो-ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये। ऐसा ही हुआ होगा, ऐसा मानना ही हितकर है। विशेष रूप से विचार करेंगे तो ज्ञात होगा कि विश्व के गोले को जिसने अधर में लटकाया है उसके लिए क्या अशक्य है? भागवत में जो वर्णन है वह तर्क से परे है इसलिये वहाँ बुद्धि लड़ाने की आवश्यकता नहीं। हम तो पामर जीव हैं, - मानव हैं, फिर भी अनेक असम्भव लगने वाले कार्य मानव जाति ने किये हैं, तो फिर प्रकृति के ऊपर सत्ता चलाने वाले भगवान के लिए क्या अशक्य हो सकता है ? भगवान भी अपने जीवन कार्य द्वारा हमको बताते रहे हैं कि तुम अशक्य जैसा कुछ मनो ही नहीं।

मैंने जैसे पहले कहा कि भागवत प्रभु-भक्ति बढ़ाने वाला ग्रन्थ है और उसका उद्देश्य कृष्ण-भक्ति की महिमा बढ़ाना है, परन्तु हरिवंश का ऐसा नहीं है। हरिवंश तो भागवत की अपेक्षा भी प्राचीन ग्रन्थ है। वह ऐतिहासिक दृष्टि से कृष्ण-जीवन का निर्देश करता है। तर्क बुद्धिवाला भले ही उसे पकड़े, हरिवंश से ही भागवत का उद्भव हुआ है। भागवत तो इस लोक में शांति देने वाला, जीवन में भक्ति और प्रेम के साम्राज्य द्वारा हम सबको आत्मसमर्पण से निरहंकार पारमार्थिक कार्य करना बताता है। वह प्रभु-प्राप्ति का मार्ग दिखाने वाला भक्ति प्रधान ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ तो पारमार्थिक, दिव्य और अद्वितीय है। हरिवंश की मूल कथा में फर्क करके यह तैयार किया गया है। भागवत की महिमा को कम करने के लिए मैं यह नहीं कहता। भागवत के लिये मेरे हृदय में नितान्त आदर है, प्रेम है, इसलिये जो लोग यह सुनकर भागवत की कीमत कम समझें या इसका महात्म्य कम हुआ, ऐसा मानें उनके सम्बन्ध में कहूँगा कि श्रीकृष्ण-भक्ति में वे अभी अपरिपक्व हैं।

नन्द के घर

हरिवंश को ऐतिहासिक ग्रन्थ गिना जा सकता है, इसलिये ऐतिहासिक घटना देखते समय हरिवंश और भागवत में अंतर रहता है, प्रभु-लीला के पीछे भागवतकार ने दिव्यता का भाव सृजन किया है और फिर कथा लिखी है। हरिवंश की कथा के अनुसार जिस बंदीगृह में वसुदेव जी को रखा गया था, उस कारागृह के पहरेदार कंस के अत्याचार से पीड़ित हो गये थे। इसीलिये जब कृष्ण का जन्म हुआ तो उन्होंने ही वसुदेव जी के बाहर जाने का प्रबन्ध कर दिया था। नन्द उस समय मथुरा में कर चुकाने आये थे, इस बात का वसुदेव को पता था, इसलिये वसुदेव ने मथुरा में ही, जिस बाग में आकर नन्द टिके थे, वहीं उनके हाथ में भगवान श्रीकृष्ण को सौंप दिया था और उनकी देखभाल का उत्तरदायित्व भी उसी के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऊपर छोड़ कर कहा, 'तुम शीघ्र जाओ।' इसके पश्चात भगवान ने अपना बचपन गोकुल में ही व्यतीत किया, अर्थात हरिवंश में यह बात नहीं कि वसुदेवजी ने नन्द के घर श्रीकृष्ण को पहुँचाया, परन्तु यह कार्य अकस्मात सरल हुआ; ऐसी विना चमत्कार की घटना बतायी है।

पुनः कहूँगा कि हरिवंश की इस कथा को पढ़कर आपकी भागवतनिष्ठा यदि कम हो तो निश्चित समझों कि आपकी भागवत निष्ठा है ही नहीं।

अस्तु, चाहे जैसी बात हो, पानी की बात भले ही न मानी जाय और चाहे जो हो, हमने इतना देखा कि साँस्कृतिक द्रष्टा, शाश्वत मूल्यों के प्रणेता, लोकोत्तर पुरुष गोकुल में गये और वहीं अपना बचपन बिताया।

भगवान की बाल-लीला के लिए तो भागवत ही पढ़ना चाहिए, सँस्कृत वाङ्मय में इस के समकक्ष दूसरा ग्रन्थ मिलना दुष्कर है। इसे क्या उपमा दी जाय? भागवतकार भगवान की बाललीला का आलेखन करते हुये पागल बन गया है।

संस्कृत वाङ्मय में भागवत अमूल्य है और उसमें इसका दशम स्कन्ध और उसमें बाललीला से भरपूर पूर्वार्द्ध तो अपूर्व है। भागवत तो हृदय रख कर पढ़ा जाय तभी उसका आनंद है। श्रद्धा और भक्तिपूर्वक पढ़ा जावे तभी उसकी अलौकिकता का अनुभव किया जा सकता है। इसलिये जब जब हम भागवत पढ़े और सुनें तब उसमें सहृदयता होनी चाहिए।

श्याम सौन्दर्य

युगपुरुष भगवान श्रीकृष्ण के गोकुल में चरण रखते ही वहाँ की समृद्धि बढ़ने लगी–

"तत आरभ्य नंदस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान्।
हरेर्निवासात्मगुणै, रमाक्रीडभभून्नृप!" वर्णन है। श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन तो हमने खूब पढ़ा है। वे अतिशय सुन्दर थे, परन्तु इनके पिता वसुदेव तो इनकी अपेक्षा अधिक सुन्दर थे। वसुदेव के समान तत्कालीन सुन्दर पुरुष कोई न था।

'मनुष्य लोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि' सौन्दर्य श्रीकृष्ण की पैतृक सम्पत्ति थी और ऐतिहासिक तो आगे बढ़कर कहते हैं, आर्यवंश का रूप श्रेष्ठ ही था। आर्य और अनार्य का रक्त एक दूसरे के साथ मिला, तब से रूप गया। भगवान श्रीकृष्ण का रूप तो मनोहारी था। इनका सौन्दर्य अलौकिक था। भगवान श्याम रंग के थे, ऐसा कहा जाता है। श्याम अर्थात् अति सुंदर परन्तु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हरिवंश में 'इनका वर्ण तप्त सुवर्ण जैसा था' ऐसा वर्णन है। ध्यानमग्न योगी कहते हैं कि सुन्दर तो बहुत होते है, परन्तु यह तो ऐसी सुन्दरता हैं कि देखने के पश्चात जगत में कोई दूसरा देखने योग्य नहीं रहता। साक्षात कामदेव जैसा स्वरूप अरे! कामदेव का भी गर्व उतार डाले ऐसा रूप 'साक्षात मन्मथमन्मथ:।' सुन्दरता के साथ साथ श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व भी अद्भुत था। इनका व्यक्तित्व (Personality) इतना आकर्षक था कि जो एक बार देख ले उसका मन आकर्षित हो जाय और मुग्ध हो जाय। जो लोग इनको देखते वे पागल ही हो जाते। कितना अद्भुत होगा इनके स्वरूप का आकर्षण! '**कर्षणात् कृष्णः**' इनके स्वरूप– वर्णन के कुछ मधुर श्लोक हम देखें—

'विक्रेतु कामाकिल गोपकन्याः मुरारिपादार्पित चित्तवृत्तिः।
दध्यादिकं मोहवशादवोचद् गोविंद दामोदर माधवेति॥
गृहे गृहे गोपवधूकदम्बाः सर्वे मिलित्वा समवाप्ययोगम्।
पुण्यानि नामानि पठन्ति नित्यं गोविन्द दामोदर माधवेति॥
सुखं शयाना निलये निजेऽपि नामानि विष्णोः प्रवदंति मर्त्याः।
ते निश्चितं तन्मयतां व्रजन्ति गोविन्द दामोदरमाधवेति॥'

कितनी मधुरता है इस श्लोक में। यदि कंठस्थ कर नित्य प्रातः बोला जाय तो परम आनंद का अनुभव हो। प्रातः स्मरणीय श्लोक है।

स्नानघर में सिनेमा के गीतों को गाने की अपेक्षा यदि इन मधुर श्लोकों का गान किया जाय तो इसमें कोई बुराई नहीं। जीवन में कुछ भव्यता और दिव्यता का अनुभव होगा। लोग व्यापार व्यवसाय छोडकर उनका नाम लें–आदि बातें हमने देखीं नहीं इसीलिए अशक्य लगती होंगी परन्तु वस्तुतः वे सत्य थीं।

भागवतकार ने भागवत की रचना हरिवंश के आधार पर की फिर भी भागवत में जो उत्कटता है वह हरिवंश में नहीं। कृष्ण के जिस मनोहारी अलौकिक और लोकोत्तर व्यक्तित्व का वर्णन भागवत में पढने को मिलता है वह हरिवंश में नहीं। य सभी बातें उनकी जन्मजात सम्पत्ति थीं। पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त हुयी उनकी सम्पत्ति की बात अब हम आगे पढेंगे।

त्रिचक्षण लोकप्रियता

भगवान श्रीकृष्ण की लोकप्रियता कितनी अधिक अद्भुत थी! वह तो Born Leader थे। 'स्वयमेव मृगेन्द्रता' सिंहशावक की तरह जन्म से लेकर ही नेता। उनके लिए राज्याभिषेक या मतगणना की आवश्यकता नहीं होती। इनका शासन तो लोगों के दिलों पर होता है। लोग उनके लिए कितने पागल थे! लोगों क।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उनके लिए कितना प्रेम था यह जानने के लिए कालीय नागवाला प्रसंग देखें।

भगवान कालीय नाग को नाथने के लिए यमुना में कूद पडे थे। हम यदि गाँव के किसी लडके के ऐसे साहस का समाचार सुनें तो हल्ला मचायेंगे वह कुयें में पडा या नदीं में इसकी मीमांसा करने लोंगे, चक-चक करेंगे, अथवा 'आह' ऐसा गहरा निःश्वास छोड़ेंगे और बहुत होगा तो खाते-खाते फुरसत से खोज़ करने के लिए निकलेंगे। परन्तु खाते-खाते मुँह का कौर छोड़कर दौड़ नहीं पडेंगे। और व्यापारी ये तो अपनी दुकान छोडकर क्यों नीचे उतरें! ये लोग तो प्राण जायँ, उसकी भी परवाह नहीं करते, जब कि यहाँ तो सब कुछ विपरीत ही देखने को मिलता है। भगवान के नदी में कूदने का समाचार सुनते ही गोकुल का प्रत्येक ग्राम-जन हाथ का काम छोड़कर नदी की ओर दौड़ पडा। गोपी और ग्वाल-बाल दौड़कर जायँ, यह तो ठीक है परन्तु उस समय तो पूजा करने वाला सालिग्राम छोडकर, दुकानदार पैसा गिनना छोडकर और अन्य ग्रामीण अपने-अपने काम त्यागकर श्रीकृष्ण की खोज करने के लिए दौड गये। लोगों का अपने नेता के प्रति कैसा अलौकिक प्रेम!

जिस समय श्रीकृष्ण अक्रूर जी के साथ गोकुल छोड़कर मथुरा जाने के लिए निकले, उस समय गोकुलवासी फूट-फूट कर रोने लगे। कृष्ण को बुलाने के लिए आये हुये अक्रूर जी के लिये लोग ऐसा भी कहते है 'तुममें नाम के अनुरूप गुण नहीं है नाम तो है अक्रूर परन्तु हो बड़े क्रूर!'

भगवान के अलौकिक सौन्दर्य, आकर्षक-व्यक्तित्व और विलक्षण लोकप्रियता का यह प्रमाण है। भगवान ने इतनी छोटी वय में लोगों के हृदय में लोक प्रियता का ऐसा विलक्षण अलौकिक स्थान प्राप्त किया, इसका मुख्य कारण यह है कि वे अपना श्रेष्ठत्व भूलकर लोगों में मिल गये थे, एक रूप हो गये थे, अर्थात् यह इनका निराभिमानीपन था। इस समय श्रीकृष्ण नन्द राजा के पुत्र थे, महापराक्रमी थे। परन्तु इससे 'मैं लोकोत्तर हूँ' ऐसा मानकर लोगों से दूर नहीं रहते थे। वे तो प्रत्येक व्यक्ति के साथ उसके आत्मीयजन की तरह मिल गये थे अपने श्रेष्ठत्व का मिथ्या 'अहं' रखे बिना वे लोगों के साथ ओतप्रोत हो गये और इसीलिये उनको लोगों का ऐसा अभूतपूर्व प्यार प्राप्त हुआ, प्रत्येक के हृदय में स्थान प्राप्त किया। उन्हें हृदय दिया इसलिए उनको मिला।

रूस के विश्वविख्यात लेखक मैक्सिम गोर्की ने एक स्थान पर लेनिन के सम्बन्ध में लिखा है, "लेनिन अति बुद्धिमान और कर्तृत्ववान समर्थ नेता थे, इसमें सन्देह नहीं। उनकी लोकप्रियता की बातें सुनकर मैं भी एक बार एक सार्वजनिक सभा में इनका व्याख्यान सुनने गया। मुझे लगा कि सम्पूर्ण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राष्ट्र को पागल बनाने वाले इस व्यक्ति के वक्तव्य को मैं भी सुन आऊँ! सभा में लोगों की भीड़ जमा थी। लोग अपने प्रिय नेता के आगमन की राह देख रहे थे। लेनिन के दर्शन करने के लिए लोगों की आँखें आतुर थीं। मेरी कल्पना थी कि उसकी सवारी आयेगी या वह चोबदारों के साथ आयेगा, परन्तु वह तो एक कोने में कुछ मजदूरों के साथ बात करते हुये बैठे थे। सभा का समय हुआ कि एक व्यक्ति ने मंच से लेनिन का नाम पुकारा। नाम पुकारते ही वहाँ एकत्रित मानव भेदनी से ही लेनिन बाहर आये। यह दृश्य देखकर मेरे आश्चर्य की तो सीमा ही न रही। लेनिन समर्थ नेता होते हुये भी कितने निरभिमानी। इसका कारण यह था कि मैं तुममें से ही एक हूँ, विशेष नहीं। यह विश्वास उन्होंने लोगों को दिलाया था। उन्होंने लोगों के साथ इतनी अधिक एकता साधी थी, इसलिए ही मुझे उनके प्रति, उस दिवस से सन्मान उत्पन्न हुआ, मेरा आदर-द्विगुणित हो गया।"

लोग विद्वान पुरुषों का आदर करेंगे, पराक्रमी पुरुषों से डरेंगे, आश्चर्यजनक कार्य करनेवालों के प्रति आश्चर्य, कुतूहल और आदर के भाव से देखेंगे, दुःख से मुक्त करने वालों का आभार मानेंगे, या उनके प्रति सदैव कृतकृत्यता से देखेंगे, परन्तु इनमें से किसी भी व्यक्ति को अपना प्रेम और हृदय का सर्वस्व अर्पण नहीं ही करेंगे। यदि लोगों का हृदय जीतना हो तो हृदय में तन्मय बनकर प्रवेश करना चाहिए। जीवन में प्रवेश करने और डुबकी मारने की शक्ति चाहिए। सहानुभूतिपूर्वक लोगों के हृदय में झाँके बिना और हृदय का प्रेम दिये बिना लोगों का हृदय जीता नहीं जा सकता। हृदय और प्रेम अलौकिक और अद्वितीय है। बाजार में नहीं मिलते। इसका तो सीधा हिसाब है। जितना प्रेम देंगे उतना प्रेम मिलेगा, **Love is not getting but giving, it is the result of pure living,** इसलिए लोग प्रेम न करें तो समझें कि हमारी ही कोई कमी है।

भगवान श्रीकृष्ण के विद्वान, पराक्रमी, चमत्कारी और दुःखभंजक होने के बावजूद लोगों को उनका भय न था। उनके प्रति मात्र आदर ही न था; केवल आभार का भाव एवं कृतज्ञता ही न थी बल्कि वे तो उन्हें अपना हृदयसम्राट मानते थे, कृष्ण अपने में से ही एक है ऐसी भावना का वे अनुभव करते थे, क्योंकि गोकुल-वासियों ने निःसंकोच अपना हृदय उनको अर्पित किया था। यह तो उनका सहज गुण था। अर्जुन भी उनको विश्वरूप-दर्शन से पूर्व तक ऐसा ही समझता था, तभी तो वह कहता है '**सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं... तत् क्षामये त्वामहमप्रमेयम्**।' इस प्रेम की बात को सुनकर राजा परीक्षित भी आश्चर्यचकित हुये। उन्होंने शुकदेव जी से पूछा कि लोग अपनी संतान की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपेक्षा भी कृष्ण को अधिक क्यों चाहते थे? शुकदेव जी ने आध्यात्मिकता का वृत्त निर्माण करते हुये उत्तर दिया, "कृष्ण को प्रत्येक व्यक्ति अपनी ही आत्मा समझता था और वे सबके होकर रहते थे–सबकी वे आत्मा थे। '**सर्वेषां भूतानां नृप स्वात्मैव वल्लभः।**' अर्थात् वे अपना स्वयं का भाव भूलकर लोगों को देखते थे।

भगवान ने विविध रूपों में अनेक अवतार लिये हैं, परन्तु कृष्ण अर्थात् प्रेम का सम्राट। इसीलिये इनकी जो अलौकिक लोकप्रियता जीवन में थी, उसका वर्णन नहीं हो सकता।

अप्रतिम शौर्य

भगवान श्रीकृष्ण के जीवन में पग–पग पर इनकी श्रेष्ठता के अनेक प्रमाण देखने को मिलते हैं। बचपन में ही इन्होंने जो असाधारण शौर्य प्रदर्शित किया था उसकी समता नहीं मिल सकती। मौसी पूतना को मारकर दूसरे राक्षसों को मारा और कालियनाग को नथा। यह सब असामान्य पराक्रम थे, फिर भी आपने शौर्य के लिये इन्होंने कभी मिथ्याभिमान नहीं किया। इसीप्रकार, स्वयं लोगों की अपेक्षा विशेष व्यक्ति हैं, ऐसा मानकर लोगों का कभी अनादर नहीं किया। उल्टे वे तो लोगों में जाकर बैठते, उनकी बातें सुनते और उनमें सविशेष समरस होते, परिणामस्वरूप इस गुण के कारण वे लोगों में एकरस हो गये थे। श्रीकृष्ण बचपन में ही यह कर सके इसलिये ही वे महान और असामान्य हैं।

Krishna Made The play Divine

श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण पराक्रमों का मूल उनकी स्वस्थता, दृढ़ और सशक्त शरीर तथा उनका निर्भीक स्वभाव था। शरीर–विकास के लिये वे खेल खेलते, स्वस्थ और सुन्दर शरीर का, सम्बन्ध हो तभी यह सब शोभा देता है। श्रीकृष्ण का बाल पर्व यान–खेल–क्रीडा का पर्व। इसमें खेल–क्रीडाका जीवन में कितना महत्व है यह समझाया गया है। इस पर्व का मुख्य आदेश यह है–खेलो और प्रसन्न रहो। जीवन उल्लास और उत्साह से भर दो। खेल अर्थात् जीवन का आनंद, खेल अर्थात् Recreation–that which re-creates याने गयी हुयी शक्ति का खेल पुनर्निर्माण करता है। जीवन में कम हुयी शक्ति को पुनः लाकर प्रदान करता है–पुनर्निर्माण Recreation करे उसका नाम खेल, इसलिये खेल से अरुचि नहीं होनी चाहिए। खेलने के पश्चात् न तो दुःख होना चाहिए और न थकान लगनी चाहिए, सिनेमा देखने से और ताश खेलने से शरीर और मन दोनों थक जाते हैं, परिणामस्वरूप हम ऊब जाते हैं। इसे Recreation नहीं कहा जा सकता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शरीर और मन को स्वस्थ रखने के लिये खेल अनिवार्य है। खूब खेलो, स्वस्थ रहो और बलवान बनो। शरीर स्वस्थ और बलवान हो तो सब कुछ ठीक रहेगा। जीवन में जितनी आवश्यकता प्रेम और ज्ञान की है उतनी ही बल की भी है। श्रीकृष्ण और बलराम ने यह उपदेश स्वयं लिया और सबको दिया। '**शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्**' जिस प्रकार दीपक के बाहर काँच की चिमनी जितनी स्वच्छ होती है उतना ही स्वच्छ उसका प्रकाश पडता है, इसी प्रकार शरीर रूपी घर को जितना स्वच्छ, स्वस्थ और रमणीय रखेंगे उतना ही हम शीघ्र आत्मा का प्रकाश जीवन में अनुभव करेंगे। श्रीकृष्ण के बाल जीवन का तात्पर्य यही है।

'कृष्ण' शब्द का उच्चारण करते ही हमारी आखों के सामने गोधन और ग्वाल-बालों के खेल-कूद का दृष्य खड़ा हो जाता है। भगिनी निवेदिता ने तो कहा है, 'Krishna made the play Divine' श्रीकृष्ण का पर्याय ही खेल-आसक्ति के बिना खेला गया खेल है और ऐसा मनुष्य ही अच्छी प्रकार से खेल खेल सकता है। जिसमें निष्ठा, सत्यता और शौर्य हैं, जो व्यक्ति अपने को भूल जाता है उसके जीवन में ही स्वयं का भाव जा सकता है। मानव के जीवन में खेल-क्रीडा की कितनी आवश्यकता है, यह हमको भगवान श्रीकृष्ण का बचपन समझाता है। परन्तु दुःख की बात यह है कि हम तो उसे भूल गये हैं। खेलेंगे तो इससे भूख भी अधिक लगेगी ही। खेल के साथ पौष्टिक आहार आवश्यक है परन्तु यह आहार सात्विक होना चाहिए, जैसे दूध, छाछ, घृत, मक्खन आदि। खेलने के पश्चात भूख लगे तब चेवडा, पकौडे खाये जायें तो इसका कुछ अर्थ नहीं। आज तो कृष्ण उपासक भी विशेष कर चाय चेवडा जन्माष्टमी के दिन खाते हैं।

बालकों को खेलना और खाना, दोनों चाहिए। इनसे गाँव या शहर का कोई बालक वंचित नहीं रहना चाहिए। भगवान ने यही आंदोलन खडा किया था। गोकुल के प्रत्येक बालक को पौष्टिक खाना पीना मिलना चाहिये। गाँव के बालकों के लिये परायापन नहीं होना चाहिए। यदि एक को खाने को मिले तो सबको मिलना चाहिये। जिसके पास है, यदि स्वेच्छा से दूसरों को न खिलाये तो उसके यहाँ चोरी कर लेते! श्रीकृष्ण सम्पूर्ण गोकुल को एक इकाई (Unit) गिनते, इसलिये बालकों के हित में ऐसा करते।

भगवान मक्खन चोर के रूप में विख्यात हैं। भला नंदराजा के घर दही-मक्खन की क्या कमी थी, जो कृष्ण को दही-मक्खन की चोरी करनी पडी? और भगवान ने चोरी की, तो वह भी किस चीज की? दही-मक्खन की! उन्होंने हीरा, माणिक, मोती, स्वर्ण या वस्त्र आदि की चोरी न की होती? चोरी की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तो माखन की, इनका आदेश यह था कि जीवन की प्रत्येक आवश्यक वस्तु प्रत्येक को मिलनी ही चाहिए।

इस प्रकार कृष्ण का बचपन हमको दो मुख्य बातें सिखाता है। एक तो यह श्रेष्ठता का घमण्ड छोडकर लोगों के बनकर रहो, और दूसरी शरीर को स्वस्थ और बलवान बनाये रखो। आकर्षक व्यक्तित्व के साथ अलौलिक लोकप्रियता के ये दो मुख्य कारण हैं।

अन्याय का प्रतीकार

भगवान को अन्याय के विरुद्ध तो बचपन से ही क्रोध थी। अभयता उनका जीवन-मंत्र था। स्वार्थरहित वृत्ति पग-पग पर देखने को मिलती है। बचपन से ही पूतना आदि के वध में अपूर्व पराक्रम देखने को मिलता है। गोकुल में उस समय असुरों का जोर था। अघासुर, पूतना, केशी, कालिय आदि समाजकंटक असुरों के त्रास से लोग त्रसित हो गये थे। हम असमर्थ और निर्बल हैं, ऐसा लोंगों को लगता था। इसलिए गोकुल के लोग चुपचाप अन्याय सहन करते थे। भगवान ने लोगों की आत्मा को जगाया और ऐसे असुरों को भी दंड देना शक्य है, यह श्रीकृष्ण ने बचपन में ही बताया। 'हम कुछ नहीं कर सकते' – ऐसी मन की कायरता दूर कर लोगों में नयी भावना जगायी कि, 'यदि वे हमारा वध कर सकते हैं तो हम भी उनका वध कर सकते हैं।' इस प्रकार कृष्ण ने असुरों को विनम्र बनाया और गोकुलवासियों में आत्मविश्वास का निर्माण किया।

जनता में आत्मप्रत्यय की जागृति

भगवान ने लोगों को कहा, डरते किसलिये हो ? हम लोग बकरे–मेढ़ा नहीं, हम दुर्बल नहीं। हम में अपार शक्ति है। समाज के कंटकों से ड़र जाऍंगे तो काम नहीं चलेगा। असुरों से डरने का कोई कारण नहीं। समाज–कंटकों से तुम जितना अधिक डरोगे, उतने ही वे अधिक चुभेंगें। हम अपना आत्मविश्वास जाग्रत करें। तुम जो चाहो कर सकोगे। अन्यायी को मारना ही चाहिए, उनका अन्याय सहन करते हुये क्यों बैठे ? भगवान के इस आदेश ने अपनी आत्मा को भूले हुये गोकुलवासियों में नव जीवन भर दिया।

ऐसे सौंदर्यवान, दैत्यमर्दन करनेवाले, पराक्रमी, ज्ञानी और शक्तिशाली श्रीकृष्ण को आपने साथ सामान्य मानव की तरह मिल गये देखकर गोकुल-वासी पागल हो जायँ तो इसमें आश्चर्य क्या है ? गोकुलवासियों के हृदय में इनको कैसा स्थान मिला होगा। इसकी कल्पना तो कीजिए। कृष्ण मुरली बजायें और लोग पागल बनकर उनके पास दौडे चले जायँ, इसका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कारण लोगों के अन्तःकरण के साथ की इनकी एकाग्रता है चराचर सृष्टि उन्हें सुनने में तल्लीन होती। इस प्रकार भागवत में भागवतकार को दशमस्कन्ध में वर्णन करते हुये देखते हैं। उस समय भवगद्भक्त सुधबुध भूलकर श्रीकृष्ण में लीन हो जाते हैं। उनके अंग अंग में रोंगटे खड़े हो जाते हैं। नाद माधुर्य से भरा हुआ यह वर्णन है। ऐसी अपूर्व थी श्रीकृष्ण की बाललीला।

इस प्रकार श्रीकृष्ण के बचपन में ही क्रान्ति का पूर्वारम्भ हो गया था परन्तु यह क्रांति समाज के मन से उत्पन्न होनी चाहिए। मानव के मन में क्रान्ति तो समाज की अनिवार्य आवश्यकता के रूप में होनी चाहिए। ऐसा हो तभी उसमें दिव्यता आती है। आज जब हम क्रांन्ति करने की बात करते है तब परिणाम देखते हैं कि इस प्रकार से कराई गयी क्रांति निष्फलता में ही बदलती है।

श्रीकृष्ण के काल की क्रांन्ति का वर्णन जब हम पढ़ते हैं, तब लगता है कि क्रांति के अनुष्ठान में स्वार्थ की गंध भी नहीं होनी चाहिए। ऐसी क्रान्ति का नेता निःस्वार्थी और पवित्र होना चाहिये। निर्हेतुक जनसेवा, समाज–सेवा यही जिसका जीवन ध्येय है, ऐसा नेता ही क्रान्ति को सफल बना सकता है।

कंस के प्रति लोगों का अपार तिरस्कार था। श्रीकृष्ण के प्रति उनमें अपार प्रेम था। इसलिये जिस समय कंस के विरुद्ध जनमत जाग्रत हुआ और क्रान्ति की अनिवार्य आवश्यकता अनुभव हुयी, उस समय लोगों को श्रीकृष्ण जैसा निर्भीक, प्रामाणिक, पवित्र और निःस्वार्थी नेता मिल गया। श्रीकृष्ण का जीवन–ध्येय अधर्म के विरुद्ध लडना, उसका पराभव कर धर्म राज्य की स्थापना करना था। वे दुष्ट राजा को राज्य सिंहासन पर बैठना नहीं चाहते थे, और इसी-लिये वे कंसादि के सहायक अगणित समर्थ लोगों को मारते थे।

कंसकी भूल

जिस समय कंस के कान में बालकृष्ण के पराक्रमों की बातें आने लगीं तब वह चौंक गया। श्रीकृष्ण के पराक्रमों और उनकी लोकप्रियता से वह भयभीत हो गया। उसमें उसे एकतंत्रीय शासनवाद के विरुद्ध चुनौती दिखायी दी। ऐसी परिस्थिति में उसके सामने दो विकल्प थे–या तो ससुर साहब की सहायता ‘(Backing’) प्राप्त करना या षडयंत्र रचकर श्रीकृष्ण का विनाश करना। पर उसने अपने समर्थ ससुर जरासंघ की सहायता न लेकर दूसरे विकल्प को क्रियान्वित करने का निर्णय लिया। कृष्ण के वध का षडयंत्र रचा। उसके जीवन की यह सबसे बड़ी भूल थी। यदि उसने जरासंध की सहायता ली

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होती तो कदाचित् वह कुछ कर सकता। और कुछ नहीं तो दस एक वर्ष का जीवन–दान उसे मिला होता। क्योंकि जरासंध शक्ति था, व्यक्ति नहीं। कंस असामान्य शक्तिशाली राजपुरुष था परन्तु उसने मूर्खता की।

कृष्ण अति लोकप्रिय थे। वे केवल लोकप्रिय ही न थे वरन् जनमानस पर उनका शासन था; जनमन पर अधिराज्य प्राप्त किया था। कंस ने मान लिया कि कृष्ण लोकप्रिय अवश्य हैं परन्तु जनता के मानस पर उसका शासन नहीं। उसके चमत्कारों से भले ही लोग आकर्षित हुये हों। उसकी यह मान्यता बिलकुल ग़लत थी। लेकिन वह उसे सच्ची मानकर षड़यंत्र रचने लगा। लोकमानस पर कृष्ण का आश्चर्यजनक अधिकार था। लोकप्रिय तो बहुत होते हैं परन्तु लोगों के मानस पर जिनका शासन चलता हो ऐसे तो भाग्य से ही पैदा होते हैं। कंस ने राजनीतिज्ञ होने पर भी राज्यशास्त्र की दृष्टी से, जिस विषय का गहन अध्ययन आवश्यक था उसका अध्ययन नहीं किया। मतिभ्रष्ट होने से उसे भान न हुआ। पतन होना होता है तब मानव की बुद्धि को जड़ता मार देती है यह इस बात का प्रमाण है।

गोवर्धन पूजा

लोगों के मानस पर कृष्ण की कितनी पकड़ थी यह इन्द्रपूजा वाली कथा से जाना जा सकता है। गोकुलवासी सदियों से प्रतिवर्ष एक दिवस इन्द्र की पूजा करते थे, यह वंशपरम्परागत रूढ़ि थी। लोग नेताओं के भाषण सुनने के लिए एकत्रित हो जायेंगे, परन्तु इनके कहने से अपनी परम्परागत रूढ़ि छोड़ना पसन्द नहीं करते हैं। जिनको चाहते होंगे, उनका लोग हृदय से स्वागत करेंगे, अनेक विषयों में उनकी सलाह मानेंगे, परंतु यही नेता यदि उनको अपनी वंशपराम्परागत रूढ़ि त्याग देने को कहेंगे तो उनकी इस बात को कोई नहीं मानेगा। पीढ़ियों की रूढ़ियों (मान्यताओं) पर आघात करनेवाले नेता को गालियाँ दी जायेंगी या उनकी बात छोड़ देंगे। आज यदि हमको कोई कृष्णभक्ति त्यागने के लिये कहे, तो हम क्या उसे मानेंगे? फिर भले ही कहनेवाला व्यक्ति कितना ही लोकप्रिय हो, लाखों लोग भले ही सभा में हों।

किसी व्यक्ति का रूप, गुण या दूसरा कोई आकर्षण हो तो लोग उसके पीछे पागल बने हुये दिखायी देते हैं। उसको सुनने के लिए बड़ी भीड़ करेंगे परन्तु जो वह कहेगा उसे करेंगे नहीं, क्योंकि ये नेता लोकप्रिय तो होते हैं परन्तु जन–मानस पर उनका साम्राज्य नहीं होता। श्रीकृष्ण में यह कमी न थी। लोगों के वे हृदय-सम्राट थे और इसीलिये लोगों ने उनकी बात मानी।

इन्द्रपूजा–यह गोकुलवासियों की परम्परागत रूढ़ि थी, परन्तु आठ नौ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्ष के बालकृष्ण ने गोकुलवासियों का आह्वान किया "तुम इन्द्र पूजा किसलिये करते हो ? हमारा रक्षण करनेवाला तो गोवर्धन है। तो गोवर्धन को न पूजकर इन्द्र को किसलिये पूजा जाय ? और इस बालक के आदेश को सम्मान देकर गोकुलवासियों ने वंशपरम्परा से चलती आयी रूढ़ि को कुछ बिना शंका किये, त्याग दिया और दूसरे ही दिन से इन्द्र के बदले गोवर्धन की पूजा प्रारम्भ कर दी।

यह घटना सामान्य नहीं। राजनीति में जिनको रस है उनके लिये यह अभूतपूर्व घटना है। यह एक ही घटना लोगों के मानस पर, जनमन पर इनका कितना शासन स्थापित था, प्रमाणित कर देती है। यदि जनमानस पर इनका साम्राज्य न होता तो गोकुलवासी इनके कहने से इतना बड़ा साहस कदापि न करते। मानसशास्त्रियों और राजनीति के अभ्यासियों के लिये यह अध्ययन करने योग्य घटना है। यदि कोई हमको सात पीढ़ी से चली आने वाली रूढ़ि को त्याग देने के लिये कहेगा तो हम उसे पागल कहकर उसकी बात रद्द कर देंगे। इस सम्बन्ध में उसकी सम्मति की आवश्यकता नहीं, ऐसा कहेंगे। जब कि इस घटना में तो वंश परम्परा से चली आयी रूढ़ि को लोग त्याग देते हैं।

यह एक ही घटना कंस की आँखें खोलने के लिये पर्याप्त थी। जनमत पर बचपन से ही कृष्ण का कितना अद्भुत अधिकार था ! वह ऐसा समझ गया होता तो दस वर्ष और जीवित रहा होता। जब नाश ही होना होता है तब यह बात समझ में आये ही कैसे ? कंस तो मात्र लोक प्रियता की ही बात समझता था। इसीलिये उसने राजशास्त्री के रूप में ससुर की सहायता लेने के बदले कृष्ण को अक्रूर द्वारा मथुरा बुलाकर काटा निकाल डालने का निर्णय किया। यह था इसके षड्यंत्र का प्रथम चरण।

श्रीकृष्ण की उस समय उम्र भी कितनी रही होगी ? सात वर्ष पश्चात बाल्यावस्था पूरी होती है और कुमारावस्था प्रारम्भ होती है। चौदह वर्ष पूर्ण होने पर तरुणावस्था प्रारम्भ होती है। श्रीकृष्ण जिस समय इन पराक्रमों को कर रहे थे, उस समय इन्होंने कौमारावस्था में प्रवेश ही किया था। आज, इतने आगे बढ़े हुये युग में भी मात्र २१ वर्ष की वय पूरी होने के पश्चात ही मानव की योग्य मान्यता होती है और सात वर्ष के अन्तर्गत के अपराधों के लिए दण्ड नहीं होता है। श्रीकृष्ण तो कौमारावस्था में ही सबल राजनातिज्ञ थे, इनके एक एक पराक्रम के पीछे बाललीला न थी अपितु विचारपूर्ण भावि क्रान्ति की आधार भूमिका थी। राजशास्त्र और मानसशास्त्र का पूर्ण विचार था।

अक्रूर जी भगवान श्रीकृष्ण को मथुरा बुला लाने के लिये गोकुल गये और कंस ने बुलाया था। इसके पश्चात् क्या हुआ यह कल देखेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

छठा प्रकरण

मथुरा गमन

कंस का कुटिल मार्ग

भगवान श्रीकृष्ण का सौन्दर्य अलौकिक था। सौन्दर्य के साथ अलौकिक व्यक्तित्व, अभूतपूर्व लोकप्रियता तथा जन-मानस पर साम्राज्य भी उनका था। हमने कल देखा कि गोवर्धन पूजा का विषय जनमत के उपर उनके अधिराज्य का प्रमाण है। इस घटना से और ऐसे प्रसंगों से कंस को चतुर बनना चाहिये था। जन-मत पर ऐसा अद्भुत अधिकार रखने वाले व्यक्ति के साथ व्यवहार करना है, यह बात कंस को ध्यान में रखनी चाहिए थी। परम्परा से चली आयी इन्द्र-पूजा की रूढ़ि एक लड़के के शब्दों ने ही उड़ा दी थी। श्रीकृष्ण के इस कृत्य को देखकर, उसकी अलौकिकता जरासंध और कंस के ध्यान में आ भी गयी थी।

कंस को इस बात का ज्ञान न था कि मानव के पास चाहे जितना पैसा, सत्ता और सामर्थ्य हो, परन्तु यदि जनता उसके पक्ष में न हो तो वह कुछ भी नहीं कर सकता। अर्थात जनमत अपना करने के लिये पैसा, सत्ता या सामर्थ्य कुछ काम नहीं आता। मतिभ्रष्ट कंस को इस बात का पता न था, इसलिये उसने मथुरा की जनता का सहयोग प्राप्त करने के लिये एक निष्फल प्रयास किया। जनमत अपना करने के लिये उसने मथुरा के अग्रगण्य, पराक्रमी और राजनीति-निपुण नागरिकों की एक सभा रात्रि में अपने यहाँ बुलायी। इस सभा में वसुदेव जी को भी बुलाया। उसमें उसने धूर्त राजपुरुष की अदा से वसुदेव के प्रति लोगों के सम्मान को गिराने के लिये शैतान को शोभने वाला भाषण दिया, कि वसुदेव ढोंगी, कपटी और बगुला भगत है। ऐसा लोगों के मन में बिठाने का प्रयास किया। धर्म, न्याय, राजनीति और समानता की बड़ी-बड़ी बुद्धिमत्तापूर्ण बातें कीं। परन्तु उसके वाग्विलास का परिणाम शून्य निकाला। वसुदेव जी को गिराने के उसके प्रयास को निष्फलता मिली; इतना ही नहीं कितने ही निर्भीक नागरिकों ने तो मुँह के सामने ही उसकी नीति की निंदा की। जनमत पर श्रीकृष्ण के अधिकार के कारण कंस का दाँव निर्बल पड़ गया। (यह इस बात को प्रदर्शित करता है कि क्रान्ति की आवश्यकता थी। यह बात कंस के प्रति तिरस्कार और द्वेष को दिखाती है।) इस सभा में कंस ने बताया; कि वह लड़का कौन है यह मैं खूब जानता हूँ और उसे मार डालने के समस्त प्रयत्न मैं करके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहूँगा। 'Forewarned is forearmed'–सत्य हुआ। मन कैसा है इसका पता चला और इसके पश्चात सभा समाप्त हुयी। उसी सभा में एक वयोवृद्ध कंक नाम का व्यक्ति था। उसने कंस की भर्त्सना करते हुये जो भाषण किया उसको पढ़कर हमें पता चलेगा कि तत्कालीन बुद्धिमान लोग कंस के प्रति क्या मत रखते थे। कंक कंस के शत्रु न थे, उसके पितामह– दादा थे। इसप्रकार कंस के परिजनों को भी कंस के क्रियाकलापों के सम्बन्ध में कितना आक्रोश था, कंस के प्रति जनता की घृणा कितनी दृढ़ थी और जनता में क्रान्ति की अग्नि कैसे धधकती थी, यह इससे जाना जा सकेगा।

अब आश्चर्यजनक घटना कैसे घटी उसे देखें। जो बात होनी चाहिये वह प्रायः एकमत से होती है। अनेक बार प्रतिस्पर्धियों, परस्पर विरोधियों तथा भलेबुरे मानवों को एक ही प्रकार के विचार आते हैं। कंस श्रीकृष्ण को मथुरा बुलाना चाहता था। कंस ने श्रीकृष्ण को मारने का निश्चय किया था, इसलिये वह अब अधिक क्रूर बनेगा, भयंकर षड़यंत्र रचेगा यह सन्देह तो प्रजाजनों को था ही। ऐसी परिस्थिति में श्रीकृष्ण को लिवाने के लिये किसी दूसरे व्यक्ति की अपेक्षा अक्रूर जी जायँ तो अधिक अच्छा है, ऐसा सब को लगता था। दूसरी ओर कंस भी यही विचार करता था। उसने सोचा कि शत्रु को अपनी सीमा (compound) में लाकर मारना ही हितकारक है – (कुत्ता अपने घर में ही भौंकता है न ?) कृष्ण को यहीं बुलालेना चाहिये परन्तु आफत की बात तो यह है कि जो कृष्ण को लाने गोकुल जाता है वह जीवित वापस नहीं लौटता और यदि मैं आपने ही आदमी को भेजूँगा तो लोग शंका करेंगे। इसलिये जो सब को स्वीकार्य हो ऐसा व्यक्ति ही भेजना चाहिए। अक्रूर जी ऐसे आदमी हैं जो अपने हैं फिर भी श्रीकृष्ण के पक्ष के लोग भी उन्हें सम्मान देते हैं क्योंकि वे कृष्णभक्त भी हैं। इस प्रकार का विचार कर कंस ने कृष्णभक्त और अपने पर प्रेम रखनेवाले अक्रूर जी को बुलाया और कहा, 'मुझे धनुषयज्ञ' नाम का एक महायज्ञ करना है, उस समय देश-देशान्तर के मल्ल आयेंगे अतः तुम गोकुल जाकर श्रीकृष्ण, बलराम इत्यादि को निमंत्रण देकर बुला लाओ।' अपने किले में लाने के लिये वह बहुत सी बातें करता है। अक्रूर जी दोनों पक्षों के मान्य थे। जनमत का विचार भी कंस को आता है परन्तु अक्रूर जी तो परिपक्व राजनीतिज्ञ थे। बात निकालने क लिये कंस के पेट में घुसे। उन्हें लगा कि मामा का प्रेम अकस्मात् कहाँ से उमड़ आया ? कंस अक्रूर की चाल में आ गया और उसने सच्ची बात कह दी। उसने कहा, 'मैं उस ऊधमी छोकरे को यहाँ लाकर अपना कांटा निकाल डालना चाहता हूँ। मुझे उसे यहाँ लाकर मारना है। वह किशोर है परन्तु पराक्रमी है। यहाँ मल्लयुद्ध आयोजित करूंगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसको देखकर उसे जोश चढ़ेगा और कुश्ती लड़ने के लिये तैयार हो जायेगा क्योंकि मल्ल को अखाड़ा देखकर लड़ने की इच्छा हो जाती है। मल्लयुद्ध में उसे मरवा डालूँगा और लोगों को कह दूँगा कि वह अकस्मात ही मर गया। इसके अतिरिक्त कृष्ण दुर्घटना में मर गया, यह बताने के लिए कुवलयपीड हाथी को मद्यपान करवा कर उन्मत्त बनाये तैयार रखूँगा। इस हाथी को काबू में करने का भी क्रम आयोजित करूँगा और इस बहाने उसके पास हाथी ले जाया जायेगा और वह मारा जायेगा। फिर मैं भी दहाडें मारकर रोऊँगा और अपना शोक व्यक्त करूँगा।

श्रीकृष्ण की पेशबन्दी

श्रीकृष्ण को मारने की कंस की सभी योजनाओं की जानकारी लेकर अक्रूर जी श्रीकृष्ण को लेने के लिये गोकुल पहुँचे। प्रातः शीघ्र ही पांच बजे तक प्रमुख-प्रमुख व्यक्तिओं से परामर्श किया। मथुरा कैसे जाना, कहाँ जाना, कहाँ ठहरना, यह सब निश्चित कर के श्रीकृष्ण मथुरा जाने के लिये निकल पड़े। क्रान्ति का महान कार्य अक्रूर जी ने किया। श्रीकृष्ण की उसमें आवश्यकता थी इसलिये ही उन्हें ले गये है।

कंस ने तो श्रीकृष्ण के ठहरने की उत्तम व्यवस्था कर रखी थी, परन्तु मथुरा पहुँचते ही अक्रूर जी ने अपना मेहमान बनने का निमंत्रण दिया। श्रीकृष्ण ने कहा, "मैं तो सर्व प्रथम अपने माता पिता से मिलूँगा। उनको मिलने के पश्चात तुम्हारे यँहा आऊँगा।" ऐसा कहकर श्रीकृष्ण ने उस उद्यान में निवास किया जिसमें राजकर देने के लिये आने पर राजा नन्द ठहरते थे। वहाँ निवास करने का दूसरा कारण यह भी था कि मथुरा के लोग वहाँ चाहे कितनी ही संख्या में आकर इकठे हो जायँ, तो भी किसीको पता न चले।

मथुरा की जनता भी श्रीकृष्ण को अपना नेता मानती थी। आनेवाली क्राति के नेता के रूप में लोग उनके प्रति पूज्यभाव रखते थे। दूसरे ही दिन मथुरा में घटी घटना इस बात का समर्थन करती है।

भगवान कृष्ण बगीचे से जब राजदरबार जाने के लिये निकले तब मार्ग में कंस का धोबी मिला। श्रीकृष्ण ने उसका मजाक करते हुये पूछा – "अरे! यह कपडे किसके हैं?' धोबी ने उत्तर दिया महाराज कंस के हैं। श्रीकृष्ण ने कहा, "अच्छा भाई! इन कपडों को मुझे दे दो।' अहीर का छोकरा राजा के कपडे माँगता है? इस प्रकार चिढ़ कर धोबी भगवान के साथ लड़ पडा। द्वंद्व युद्ध जम गया। भगवान ने उसे थोड़े ही समय में भरे बाजार में मार डाला। सार्वजनिक मार्ग पर यह घटना घटी। लोगों की भीड़ के जमा होने के बावजूद किसीने कंस के धोबी का पक्ष लेकर उसे बचाने का प्रयास नहीं किया। श्रीकृष्ण को विरोध नहीं किया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इतना ही नहीं बल्कि उनका पक्ष लिया और 'उन्होंने अच्छा किया' कहकर यश प्रदान किया। यह घटना अति सूचक है; कंस के प्रति अति घृणा और कृष्ण के प्रति अति प्रेम प्रदर्शित करती है यही नहीं बल्कि प्रत्येक को विश्वास था कि, आज कंस को श्रीकृष्ण मारेंगे।

कंस का तेजोवध

कंस का एकाधिकार लोगों को अप्रिय लगता था। कंस को लोग धिक्कारते थे। आबाल-वृद्ध सभी उसके तानाशाही शासन के विरुद्ध थे। (इसीलिये जिस समय किसीने तनिक भी विरोध नहीं किया। उल्टे श्रीकृष्ण के कृत्य की प्रशंसा की।) कंस के कर्मचारी भी उससे असन्तुष्ट थे, कंस की दासी कुब्जा ने श्रीकृष्ण को कंस के हिस्से का चन्दन लगाया था। यह इस बात का उदाहरण है।

भगवान श्रीकृष्ण मथुरा आये, उस समय उनकी अवस्था मुश्किल से चौदह वर्ष की थी। इस वय में तो लड़के गुल्ली-डंडा खेलते हैं। राजकीय दावँ-पेच वे क्या समझें? जब कि श्रीकृष्ण तो इतनी अल्पावस्था में बड़ों-बडों के हाथ नीचे कर दें, ऐसी प्रखर बुद्धिमत्ता रखते थे। श्रीकृष्ण बचपन से ही राजनीति-निपुण थे। वे जानते थे कि यदि शत्रु को पराजित करना हो तो उसके मन में लघुता की भावना-न्यूनताग्रन्धि (Inferiority complex) पैदा करनी चाहिये, इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव (psychological Effect) प्रबल होता है। हीनभावना पैदा होते ही मन संशय में पड़ जाता है। फलस्वरूप सभी कुछ उल्टा होने लगता है। लघुता ग्रन्थि से मानव नष्ट हो जाता है। इसीलिये मथुरा पहुँचते ही श्रीकृष्ण ने एकके पाश्चात एक ऐसे पराक्रम करने प्रारम्भ कर दिये कि कंस गड़बड़ में पड़ गया। सभा में पहुँचने से पहले तुरन्त ही धनुषागार में जाकर देखने के बहाने धनुष को उठा लिया और खेल में ही ऐसे-वैसे घुमाकर तोड़ डाला। इस धनुष को कोई उठा भी नहीं सकता था, कंस को इस बात का पता चला तो वह शिथिलगात्र हो गया। उसकी निराशा की सीमा न रही, आत्मविश्वास समाप्त हो गया।

शत्रु का आत्मविश्वास डिगा देना ही रणनीति है। श्रीकृष्ण ने इस रणनीति का सफलतापूर्वक प्रयोग किया। हनुमान जी का लंकादहनकार्य इस नीति के अनुसार ही था। मन से शत्रु-पक्ष को निर्बल कर देना। आत्मविश्वास तो बहुत बड़ी चीज है। आत्मविश्वास द्वारा ही मनुष्य प्रगति कर सकता है तथा कल्पनातीत अद्‌भुत कार्य कर दिखाता है। आत्मविश्वास गया याने विनाश। हनुमान जी ने लंका जला दी, इसका मानसिक प्रभाव रावण पर बहुत बुरा पड़ा। हम चाहे कितना ही परिश्रम कर अध्ययन करते हों पर मन में यह आशंका बनी हो कि हम सफल होने वाले

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं, तो अवश्य असफल होंगे। "आज का दिन कुछ नीरस (Dull) है, कुछ, आनंद नहीं आता, सिर दर्द करता है-" ऐसा दस मिनट तक विचार करेंगे, तो सचमुच ही वैसा होने लगेगा। यह तो मानसशास्त्र का एक सिद्धान्त है। इसी प्रकार पूर्ण आत्मविश्वास हो तो बिगड़ा हुआ काम भी सुधारा जा सकता है।

दूसरे महायुद्ध के समय अँग्रेजों को बहुत (Honourable retreat) 'सम्माननीय पीछे हट' करनी पड़ी थी। परिस्थितियों के नाजुक होने पर भी ऐसे संकट काल में चर्चिल के 'V' for Victory, Victory through Defeat के सूत्रों ने लोगों में सच्चा आत्मविश्वास जाग्रत किया और वे बाज़ी जीत गये। आत्मविश्वास समाप्त हुआ तो राष्ट्र भी समाप्त हुआ।

कंस ने जब सुना कि जिस धनुष को कोई उठा भी नहीं सकता था, उसको श्रीकृष्ण ने सहज ही दो टुकड़े कर डाले हैं तो वह घबड़ा गया। उसके मन में भय का आविर्भाव हुआ और भय के आते ही उसका आत्मविश्वास समाप्त हो गया। वह आधा मर गया। ऐसा पराक्रम दिखाकर श्रीकृष्ण सभा में गये।

भगवान को तो अक्रूर जी ने कंस की सभी योजनायें समझा दी थीं। भगवान सावधान थे। राजसभा में प्रवेश करते ही वे ऐरावत जैसे मद्यपान कराकर मदोन्मत्त बनाये हाथी से मिले। लोग समझे कि दोनों बालवीर असावधान हैं, परन्तु श्रीकृष्ण तो कदम भी सावधानी से रखते थे। उन्होंने हाथी का नशा उतार डाला। उसका, दाँत पकड़कर वध कर डाला और रक्तरंजित होकर सभा में आगे बढ़े। ऐसे साक्षात् वीररस की मूर्ति के समान कृष्ण प्रवेश करते हैं। इसका वर्णन :—

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजिपतेर्विराड विदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः॥

कंसचारणूमर्दनम्

श्रीकृष्ण के इस स्वरूप को देखकर मल्लयुद्ध करनेवाले मल्ल भी भयभीत हो गये। वहाँ तो श्रीकृष्ण को छलने के लिये कुश्ती चलती थी। उन्होंने तुरन्त ही देख लिया कि यहाँ तो कुश्ती के एक भी नियम का पालन नहीं हो रहा है। यहाँ तो मात्र free style कुश्ती की जा रही है। मल्लयुद्ध के लिये मुष्टिर और चाणूर ने श्रीकृष्ण का आह्वान किया। श्रीकृष्ण ने उस समय लोगों को सच्ची बात का मान कराने और जनमत को अपने अनुकूल करने के लिये कहा, 'यह कुश्ती तो मनुष्य को मार डालने के ही लिये रचायी गयी है। लडकों के साथ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लड़के ही लड़े।' इस प्रकार अपनी ओर होनेवाले अन्याय को बताया, साथ-साथ इस प्रकार कहकर स्वपक्ष को सबल भी बनाया। स्वपक्ष को सबल बनाना राजनीति है। कंसने पहले से ही निश्चित किये गये निर्णय के अनुसार दरबार के दो सब से अधिक चतुर मल्ल-चाणूर और मुष्टिर को श्रीकृष्ण के विरुद्ध उतारा। एक तो कंस आत्मविश्वास खो बैठा था और उस पर भी श्रीकृष्ण ने चाणूर को एक ही तमाचा मारकर प्रभुधाम पहुँचा दिया—**'दृष्टं चाणूर मल्लेन शतचंद्रनभस्तलम्'**– इससे कंस के क्रोध की सीमा न रही। वह गरज उठा, 'इस छोकरे को बाहर निकालो।' श्रीकृष्ण ने समान ललकार दी, 'किस लिये ? बाहर निकालनेवाला तू कौन है ?' कंस ने उत्तर दिया, 'मै राजा हूँ। यहाँ मेरी सत्ता है, मुझे पूछनेवाला तू कौन ?' इसका उत्तर न देकर श्रीकृष्ण ने छलाँग मारकर कंस के बाल पकड़कर उसे सिंहासन से नीचे पटका और कहा, 'यह राज्य तेरे बाप का नहीं, यह संघराज्य हैं। एकतंत्रीय शासन अब तुझसे नहीं चलाया जा सकेगा', फिर मामा-भानजे का द्वन्द्व-युद्ध जमा और भानजे ने मामा को स्वधाम पहुँचा दिया।

इस प्रकार अत्याचारी और उन्मादी राजा का अन्त हुआ। एकतंत्रीय राज्य का अत्याचारी और उन्मार्गगामी राजा समाप्त हुआ। अन्धक और वृष्णिकुल पर से काले बादल दूर हुये।

यह घटना भी अध्ययन करने योग्य है। एकछत्र सत्ता भोगनेवाले, इस बलवान राजा कंस को श्रीकृष्ण उसके ही दरबार में सिंहासन से नीचे फेंककर मारते हैं, फिर भी राजा की रक्षा के लिये उसका कोई सामन्त, सैनिक या कर्मचारी कृष्ण के विरुद्ध मैदान में नहीं उतरता। अरे, विरुद्ध स्वर भी सुनता नहीं। कंस के प्रति जनता और राज्य-कर्मचारियों के असंतोष और तिरस्कार का यह प्रमाण है। उस समय क्रान्ति की अनिवार्यता थी और उस के लिये आवश्यकता थी योग्य नेता की। श्रीकृष्ण ने इस आवश्यकता को पूरा किया।

कंस को मारकर श्रीकृष्ण सीधे ही अपने मातापिता के दर्शनार्थ दौड़े। पाशवी-सत्ता के अन्त होते, एकतंत्रीय राज्य का नाश होने पर वसुदेव, उग्रसेन और अक्रूर जी के आनंद की सीमा न रही। श्रीकृष्ण को देखकर वसुदेव जी की आँखों में हर्ष के आँसू आ गये जबकि उग्रसेन को हर्ष और विषाद दोनों के आँसू आये। कंस चाहे कैसा भी था परन्तु उनका पुत्र ही था। कंस की पत्नियाँ हृदय पीटकर रोती हुयी दौड़कर आईं और उग्रसेन से कहने लगीं 'कंस मर गया और किसीने विरोध भी नहीं किया, उसेक लोग क्या कर रहे थे ?'

जनता के हृदयसम्राट

उग्रसेन जानते थे कि श्रीकृष्ण के साथ समस्त जनता है। श्रीकृष्ण जनता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के हृदय-सम्राट हैं, इसलिये अब मथुरा के राजा भी वही है। इसलिये कंस की अन्तिम-क्रिया राजसी ढँग पर करने के लिये वे श्रीकृष्ण की अनुमति प्राप्त करना उचित समझते हैं। पश्चात् उग्रसेन श्रीकृष्ण से कहते हैं, 'तुम आयु में सब से छोटे होते हुये भी सब से बड़े हो। सारा समाज तुम्हारे पीछे है, जन-मत पर तुम्हारा शासन चलता है, अतः अब वास्तविक राज्याधिकारी तुम ही हो। यह राज्य अब तुम्हारा है। ऋषि-मुनि तुम्हें आशीर्वाद देंगे, राजा के रूप में कंस की अन्तिम क्रिया करने की मुझे अनुमति दो।'

श्रीकृष्ण ने कहा, 'ऐसा कहकर मुझे लज्जित न करें। आप सुखपूर्वक कंस का अन्तिम संस्कार करें। बाकी, मैंने जो कुछ किया है, वह राज्य-लोभ के हेतु से अथवा राज्य प्राप्त करने के लिये नहीं किया, मैंने तो जनता के लिये यह काम किया है। मुझे राज्य नहीं चाहिये, यह मेरा नहीं, आपका राज्य है, अतः इसे आप ले लें।' ऐसा कहकर राज्य का सूत्र उग्रसेन को सौंप दिया। कंस को मारने का उनका हेतु अधिनायकवादी राजसत्ता का अंतकर लोकतंत्र की स्थापना करना था, स्वयं राजा बनना नहीं था। कितना भव्य त्याग! जिस अवस्था में पाँच रुपये का नोट, अरे पेन्सिल या खिलौना भी मिल जाय तो प्रसन्न हो जाय, उस अवस्था में श्रीकृष्ण तो सम्पूर्ण राज्य मिलता था, परन्तु उन्होंने तो उसी समय निःसंकोच नन्दबाबा या वसुदेव जी के परामर्श के बिना ही त्याग का निर्णय किया। दूसरा कोई होता तो पागल हो जाता। शीघ्र निर्णय लेने की उनकी शक्ति कितनी अद्भुत है? इतनी अल्पवय में इतने बड़े विषय पर श्रीकृष्ण ही शीघ्रता से निर्णय ले सके। महानता इसी का नाम है। उग्रसेन राज्य लेना अस्वीकार करते हैं। श्रीकृष्ण बहुत कुछ कहते हैं। अन्त में उग्रसेन श्रीकृष्ण को वचनबद्ध कर राज्य लेते हैं-यह सब पीछे देखेंगे। श्रीकृष्ण ने राज्य देने का निर्णय किया, परन्तु लोगों के हृदय में स्थान प्राप्त कर लिया, लोगों के हृदयसम्राट बन गये। जो अपने स्वार्थ का तनिक भी विचार किये बिना मात्र जनहित के लिये कार्य करता है, वही लोगों के हृदय का सम्राट बन सकता है।

श्रीकृष्ण ने स्थूल-सिंहासन छोड़ा परन्तु लोगों के हृदय-सिंहासन पर स्थान प्राप्त किया। अलौकिक और अपूर्व सिंहासन पर अपना स्थान जमाया। श्रीकृष्ण जगत-सम्राट बने।

तपोवनप्रवेश

इसके पश्चात् भगवान का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। खूब धूमधाम से मौञ्जीबंधन आदि संस्कार हुए हैं। जगत के सूत्र संचालक ने भी सूत के तीन सूत्र स्वीकार किये। उस समय मथुरावासियों को कितना आनन्द हुआ होगा।

बाद में विद्याभ्यास के लिये उन्हें सांदिपनि के आश्रम में भेजने का निश्चय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हुआ। **'यस्य निःश्वसितं वेदाः'** वह भी गुरु के पास जाते हैं। क्षिप्रा नदी के तट पर सांदीपनि के आश्रम में इस समाचार के पहुँचते ही आनंद का साम्राज्य स्थापित हो गया है। बालक पागल-से हो गये और आतुर हो श्रीकृष्ण के आगमन की राह देखने लगे। आचार्य जी को तो रात्रिभर निद्रा ही नहीं आयी! प्रातः शीघ्र ही उठकर ध्यान में बैठे परन्तु ध्यान ही न लगे। मानों निर्गुण ब्रह्म रूठ ही गये हों! ध्यान कैसे लगे? ध्यान में सगुण साकार श्याम स्वरूप के ही विचार आते रहे। आचार्य जी ध्यान का प्रयत्न त्याग कर कहने लगे- 'जाने दो, स्नान संध्या जिसके लिये होती है वह निर्गुण, निराकार, सच्चिद्, सगुण स्वरूप लेकर मेरे यहां आते हैं इसलिये मैं कृत्यकृत्य हो गया हूँ। वे स्वयं मेरे विद्यार्थी बनकर आज आते हैं, इससे बढ़कर आनंद मंगल की बात कौनसी हो सकती है? भक्त और योगी सदैव जिनका ध्यान करते हैं, जिनकें दर्शन के लिये चातक की तरह सदैव तड़पते रहते हैं, ऐसे परम कृपालु परमात्मा आज पैदल चलकर मेरे शिष्य बनने के लिये पधार रहे हैं, तो फिर स्नान-संध्या, ध्यान इत्यादि में मन किस प्रकार से लगे? ऐसा मन को मनाकर, आनंद में मग्न होकर, आचार्य जी श्यामल मूर्ति भगवान के आगमन की राह देखने लगे। आचार्य-पत्नी की मानसिक स्थिति भी आचार्य जी के ही समान थी। वह बारम्बार आचार्य को पूछती, 'श्रीकृष्ण कब आयेंगे? जरा देखो तो, कहीं रास्ता न भूल गये हों।'

आश्रम के विद्यार्थी भी एक दूसरे को यही पूछते थे कि "कृष्ण कब आयेंगे?" वे पुस्तकें अलग रख देते थे। सुबह प्रातः उठकर पाठ रटने के बदले श्रीकृष्ण के नाम का रटन करते थे। अरे! वे तो श्रीकृष्ण को देखने के लिये व्याकुल हो गये थे। इतनी अल्पायु में ३५ नर-पिशाचों का वध करेन वाले कृष्ण कैसे होंगे? शरीर कैसा होगा? स्वरूप-कैसा होगा? यह देखने और जानने के लिये वे आतुर हो गये थे। आचार्य जी ने उनसे कहा 'वे भी तुम्हारी ही वय के कुमार हैं।' कुमारावस्था में चकित कर डालनेवाले पराक्रमों के करनेवाले श्रीकृष्ण क दर्शन करने के लिये सभी कौतुकमिश्रित आँखों से प्रतीक्षा कर रहे थे।

इतने में रथ की आवाज आई। छोटे बालक मन चाहे वृक्षों पर चढ़कर, श्रीकृष्ण को कौन पहिले देखता है, इसकी शर्त लगाने लगे और जब इस सगुण ब्रह्म ने विद्यार्थी के रूप में आश्रम में प्रवेश किया तब सांदीपनि ऋषि ने जीवन की कृतकृत्यता अनुभव की। गुरुकुल में एक विद्यार्थी की अभिवृद्धि हुयी परन्तु श्रीकृष्ण को देखते ही आचार्य पत्नी रो पडी। उन्हें अपने पुत्र दत्त की स्मृति ताजी हो गयी। प्रभास तीर्थ में दत्त स्नान करने गया था तब उसे दैत्य उठाकर ले गये

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

थे। आचार्य ने उन्हें आश्वासन देते हुये कहा, "समग्र जगत की शिखा जिनके हाथ में है, ऐसे श्रीकृष्ण हमारे यहाँ आये हैं, इस लिये तू व्यर्थ शोक न कर। तेरा दत्त तुझे अवश्य वापस मिलेगा। सगुण ब्रह्म की उपासना का जो महद्भाग्य मिला है उसका लाभ उठा। ऐसे मंगल प्रसंग में रो मत।'

सामान्यतः जब नया विद्यार्थी तपोवन में आता है तब छुट्टी नहीं मिलती परन्तु यहाँ तो श्रीकृष्ण के आगमन के अगले दिन और उस दिन की बालकों को स्वाभाविक छुट्टी मिली। गुरु का मन पाठ देने में लगे तब पढ़ावे न ?

गुरुकुल का जीवन कितना अद्भुत होता है, सचमुच जिन्होंने गुरुकुल का निराला जीवन नहीं जिया उन्होंने जीवन का अनोखा आनंद खोया है। गुरु कुल का जीवन आज के छात्रावास (Boarding या Hostel) जैसा न था। उस जीवन में तो दिव्यता थी। आज का होस्टल या बोर्डिंग जीवन तो उसके चरणों के पास भी बैठ नहीं सकता।

आश्रम के छात्रों का निर्व्याज प्रेम

रात्रि को सभी विद्यार्थियों ने श्रीकृष्ण को घेर लिया। नये विद्यार्थी को आश्रम के नियम (Rules and Regulations) तो समझाने ही चाहिये न ? आज की तरह वे नियम लिखे या छपे नहीं होते थे। अरे ! राज्य के नियम भी अलिखित (Unwritten Constitution) थे, तो फिर छत्रवास में तो लिखित नियम हो ही कहाँ से ? गुरुकुल याने एक प्रकार का परिवार। इस परिवार के साथ मिलनेवाले नये सदस्य को समस्त जानकारी देना और उसके प्रति प्रेम भाव प्रदर्शित करना यह परिवार के प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य समझा जाता है।

एक विद्यार्थी ने श्रीकृष्ण से कहा, 'सुबह जल्दी उठना पड़ेगा'। दूसरा कहने लगा – " प्रातः क्षिप्रानदी में स्नान करने जाना पड़ेगा। परन्तु तू तो कोमल है, तू नहाने आयेगा तो तुझे झुकाम हो जायेगा। इसलिये भस्मस्नान कर लेना। गुरुजी कहते हैं कि आपत्तिकाल में भस्मस्नान भी स्नान के बराबर ही है।" इस बेचारे को क्या मालूम कि श्रीकृष्ण तो यमुनानदी में गोते मार मार कर बड़े हुये हैं। वह क्या क्षिप्रा नदी की ठंड से डरेंगे ?

तीसरा बोला, "आज तो तुमने गुरुजी के साथ भोजन किया है। गुरु पत्नी ने खूब मिष्टान्न खिलाया होगा, परन्तु वह नित्य नहीं मिलेगा! अब तो तुम्हें अपने हाथ से भोजन बनाकर खाना पड़ेगा। तुम तो मिष्टान्न खानेवाले ठहरे, हाथ से पकाया हुआ खाना तुम्हें कहाँसे अच्छा लगेगा ? प्रारम्भ में यह भोजन तुम्हें रुचेगा नहीं और पचेगा भी नहीं, इसलिये मेरे हिस्से का दूध तुम पी लेना।"

प्रत्येक जन श्रीकृष्ण को कुछ न कुछ कहने के लिये उत्सुक था। चौथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तुरन्त ही बोल उठा, "कृष्ण! तुम श्रीमन्त के पुत्र हो, सुकोमल और सुन्दर देह वाले हो, कष्ट तुमने कभी झेला नहीं, इसलिये मेरे और मेरे भाई-बन्धुओं के हिस्से का दूध तुम अवश्य ही पी लेना। यहाँ ठंड बहुत लगती है, रात्रि को अधिक सर्दी होती है। मेरे पास दो कम्बल हैं, उनमें से एक तुम्हें दे दूँगा।' कितना निस्वार्थ और प्रेममय यह आश्रम जीवन है? यह सब देखकर श्रीकृष्ण का हृदय भाव-विभोर हो गया।

श्रीकृष्ण सोचते रहे, 'कितना निष्पाप जीवन है! कितना निर्मल प्रेम है! आज तक भोगलम्पटों को देखा। अब निष्पाप, निर्हेतुक, दैवी प्रेम देखने को मिला। असद्वादी विचारों, और पाशवी, भोगवादी संस्कृति की परवाह न करते हुये, दुनिया के प्रकाश से दूर रहकर अनेक मानव अपना जीवन जी रहे हैं।' श्रीकृष्ण ने निश्चय किया कि ऐसे निष्पापों को बचाना मेरा फर्ज है। ऐसे निष्पाप लोगों की वृद्धि हो, इस लिए अधिक तपोवनों की प्रस्थापना होनी चाहिये।

परन्तु दूसरी ओर हम देखते हैं कि आज लोग लाखों-करोड़ों की सम्पत्ति को अपनी अपनी करके बैठे हैं। उसमें से एक पैसा भी किसीको नहीं देते। कहाँ दो में से एक कम्बल देनेवाला यह विद्यार्थी और कहाँ 'सम्पूर्ण सम्पत्ति बाप की' कहकर दबा रखनेवाले और मात्र अपने सुखोपभोग के पीछे ही सम्पत्ति का अपव्यय करने वाले आज के युवान। एक स्थान में दैवी प्रेम है, दूसरे स्थान में आसुरी वृत्ति।

पाशवी और भोगलम्पट जीवन व्यतीत करनेवाले भले ही अपने आपको सुखी मानें परन्तु जगत की सुख-शान्ति तो निःस्वार्थ होकर मानव जाति के कल्याण के पीछे अपने आपको घिस डालनेवाले महामानवों के अस्तित्व को लेकर ही टिकी रहती है। प्रत्येक व्यक्ति ऐसा निर्मल और निस्वार्थ जीवन जी सके इसके लिये ग्राम ग्राम में ऐसे तपोवन स्थापित होने चाहिये। यदि सभी ऐसा जीवन जीने लगें, तो फिर पूछना ही क्या? सुखशान्ति और समृद्धि का जीवन स्थापित हो जाय!

इस प्रकार के विचारों मे दिवस व्यतीत होते हैं और श्रीकृष्ण अध्ययन प्रारम्भ करते हैं।

प्रमुख विद्यार्थी

एक दिन ऐसा हुआ कि आश्रम के कुछ विद्यार्थी एक दुर्बल विद्यार्थी की हँसी-मजाक उड़ाते थे। श्रीकृष्ण ने उनके पास जाकर मधुर उलाहना दिया कि, 'तुम यह क्या कर रहे हो? दुर्बल को बलवान बनाने की अपेक्षा तुम उसका मज़ाक क्यों करते हो? दुर्बलता या दरिद्रता क्या अपराध है? बेचारे को ठीक ठीक खाने को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न मिले तो पुष्ट कहाँ से हो ? तुमको ऐसा व्यवहार शोभा नहीं देता।' आचार्य जी यह वार्तालाप सुन रहे थे, उन्होंने दीर्घ निःश्वास लिया और मन में बोले 'मेरा आधाभार कम हो गया, प्रेम से कैसे जीना है यह पुस्तकें पढ़कर नहीं सीखा जा सकता है। आश्रम-जीवन से ही यह वस्तु सीखने को मिलती है। श्रीकृष्ण के पास यह विद्या थी। इसीलिये आचार्य ने उन्हें आश्रम का प्रमुख बनाया और शिष्यों को कहा, 'तुमको श्रीकृष्ण का निर्णय मान्य करना होगा।' इस प्रकार आश्रम की व्यवस्था का सम्पूर्ण भार उनको सौंप दिया। और स्वयं मात्र विद्याभ्यास करवाने का ही दायित्व लिया।

एक समय किसी कार्य के वशात् आश्रम की सम्पूर्ण व्यवस्था कृष्ण को सौंपकर गुरु दूसरे गाँव गये थे। आश्रम में उस समय अचानक विचित्र परिस्थिति पैदा हुयी। सायंकाल का समय हो गया था। भोजन बनाना था परन्तु लकड़ी नहीं मिली, गुरुपत्नी ने आकर लकड़ी के सम्भन्ध में पूछा है। तुरन्त ही श्रीकृष्ण लकड़ी लाने के लिये वन में जाने के लिये तैयार हो गये। उनके सहपाठियों ने कहा, तुम कोमल, सुकुमार हो, यहीं रह जाओ, तुमसे यह काम नहीं होगा। हम जंगल में जाकर लकड़ी ले आयेंगे।' श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया, 'यह कैसे हो सकता है ? आश्रम के कार्यभार को चलाने का उत्तरदायित्व मैंने लिया है। मैंने बड़प्पन स्वीकार किया है तो बड़े के रूप में उत्तरदायित्व भी मुझे पूरा करना चाहिये। दूसरे के परिश्रम पर बड़ा बनना, यह तो अपराध है--अन्याय है--पाप है सर्वप्रथम मुख्यव्यक्ति को ही जितना हो सके, उतना करना चाहिये। उसके पश्चात ही उसे दूसरों की सहायता लेनी चाहिये।' श्रीकृष्ण के ये शब्द ध्यान में रखने योग्य हैं। फ्रेम (Frame) बनवाकर घर में रखने योग्य हैं। आज तो दूसरों की चमडी घिसकर स्वयं बडे प्रमुख बनते हैं। यदि ऐसे ही विचार हो तो यह पाशवी सँस्कृति होगी। दूसरे के परिश्रम पर ऐसी आराम करने वालों को कृष्ण-भक्त कहलाने का बिलकुल अधिकार नहीं है। दूसरों को चूसकर मस्त बननेवाले लोगों को अपने आप को कृष्ण-भक्त के रूप में प्रदर्शित करते हुये लज्जित होना चाहिये। जो दूसरों के लिये कुछ कर सकता हो और मानवतावादी हो वही कृष्ण-भक्त है।

उसी समय आचार्य आश्रम में वापस लौटे और जब उनको ज्ञात हुआ कि इस रात्रि के समय, मार्ग से अपरिचित श्रीकृष्ण को लकड़ी काटने के लिये भेजा है तो वे अप्रसन्न हो गये। 'उन्होंने पत्नी से कहा, 'तूने उसे जाने क्यों दिया ?' उत्तर मिला, उसने जो कुछ किया, ठीक ही किया है। उसने अपना कर्तव्य निर्वाह किया है। आपने उसे प्रमुख बनाया, इसलिये नीति से वह गया है। मैंने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसे रोका। अन्य शिष्यों की भी एक न सुनकर सब को प्रमुख का कर्तव्य समझाकर स्वेच्छा से वह गया है।'

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण को लेने सभी जंगल में गये। श्रीकृष्ण को लकड़ी लाते देखकर गुरु के आनंद की सीमा नहीं रही। वे कह उठे "हे कृष्ण! जीवन में जो कुछ जानना हैं वह सभी तुमने जान लिया है।" और ऐसा कह कर श्रीकृष्ण को बाहों में ले लिया है! गुरु के मुँह से उद्गार निकले, "तुम परीक्षा में उत्तीर्ण हुये। तुम्हारा अध्ययन समाप्त हुआ, तुम सच्चे विद्यार्थी हो।"

जीवन कैसे जीना चाहिये यह उन्होंने स्वयं आचरण कर के दिखाया। मात्र मोटे--मोटे ग्रन्थों को पढ़कर और फिर जीवन के सिद्धान्तों पर निबन्ध लिखकर "Doctor of Literature" की उपाधि प्राप्त की, परन्तु जीवन कैसे जीना, यह नहीं सीखा तो ऐसे पढ़ने या उपाधि प्राप्त करने का कुछ अर्थ नहीं होता। मात्र पुस्तकों से ही विद्वता आती, तो पुस्तकें ही बड़े विद्वान बन जातीं। उत्तरदायित्व कैसे निभाना, जीवन कैसे बिताना, यह जो समझे वही सच्चा विद्वान है।

भारतीय युवान

आश्रम जीवन पूरा हुआ तो विद्यार्थी युवान बना, यह समझा जाता है। श्रीकृष्ण भी किशोरावस्था में युवान होते हैं। उस युग में आश्रम का जीवन होता था, इसलिये मानों तेज को पीकर विद्यार्थी जब आश्रम छोड़कर वापस घर लौटते थे, तब सच्ची युवानी प्राप्त कर लौटते थे। युवानी आती नहीं, प्राप्त करनी होती है। आज बीस वर्ष के कितने ही वृद्ध होते हैं। मूँछ आवें या उम्र बढ़े, इससे युवान काहे का? यदि उम्र से युवानी गिननी हो तो शास्त्र कहते हैं:—

'आशोडशात् आसप्ततियौवनं'– परन्तु आज परिस्थित विपरीत है। उस युग में मनुष्य ७० वर्ष तक युवान रहता था। आज तो ३० या ३५ वर्ष हों तो बहुत उम्र हो गई ऐसा कहते हैं। युवानी में ही आज के युवान समाप्त हो जाते हैं, और माथे पर हाथ रखकर रोने लगते हैं, अब मुझसे क्या हो सकता है। ऐसा कहकर दीर्घ निःश्वास छोड़ते हैं। संक्षेप में, युवानी प्राप्त करनी पड़ती है। इसके लिये संयम और त्याग अत्यावश्यक हैं। श्रीकृष्ण अत्यन्त तेजस्वी होकर आश्रम से बाहर निकलते हैं।

अँग्रेजी वाङ्मय बहुत विस्तृत, विशाल है, यह बात सत्य है, परन्तु संस्कृत –वाङ्मय जितना श्रीमंत नहीं। युवानी की जो व्याख्या उपनिषद में की गयी है, वह जगत के किसी दूसरे ग्रन्थ में देखने को नहीं मिलती। मुझे मेरे अब तक के अल्पवाचन में तो देखने को नहीं ही मिली है।

'युवास्यात् साधुयुवास्यात् युवाध्यायकः आशिष्टः दृढिष्ठः बलिष्ठः'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपनिषद् में जो कहा है–समस्त जगत युवान के लिये है। युवान के लिये कोई वस्तु दुर्लभ नहीं। जगत की सम्पत्ति उसीकी है। भीष्मपितामह १८५ वर्ष की वय में भी युवान थे।

युवान सरल और साधुमन का होना चाहिये। साधु किसको कहा जाय? भस्म लगा कर, चिलम पीते हुये यत्रतत्र भटकता रहे या धर्मशाला में पड़ा रहे, उसे साधु कहा जाय? क्या उपनिषद् ऐसे साधुवों की बात करता है? ऐसों की आज क्या कमी है? जो सरल मन का तथा निष्कपट अंतःकरण का हो, वह साधु। जो जीवन के सिद्धान्तों को समझा हो, वही उनको जीवन में उतारा सकता है। जो इसके अधिकारी हों, उनको ही विवाह करने, और गृहस्थाश्रम की शोभा बढ़ाने के लिये गुरु आदेश देते हैं। रघुवंश या मनुस्मृति में यह देखने को मिलेगा। उस काल में विवाह करने के लिये गुरु का, स्नातक तरीके का प्रमाणपत्र (certificate) आवश्यक था। आज तो पैसा हो तो शादी होती है, फिर बुद्धि चाहे लौहरकड जैसी हो।

जो सदैव अध्ययनशील रहता है, वह युवान है और ऐसा युवान क्या नहीं कर सकता? ज्ञानदेव की दिव्यशक्ति से भैंसा बोलने लगा था। ऐसे युवानों की दिव्य श्रद्धा से वृक्ष, पर्वत, झरने इत्यादि चराचर सृष्टि उनके साथ वार्ता करने लगती है। युवान सदैव आशावादी ही होना चाहिये। कल मेरा क्या होगा? इसकी वह परवाह नहीं करता। युवान तो पूरा आस्तिक होता है और जो आस्तिक हो, वही आशावादी बन सकता है। अर्थात् जो आशावादी नहीं वह नास्तिक। मेरी आस्तिक और नास्तिक की यह रहस्यमय व्याख्या है। (जो आशावादी हो वह आस्तिक और जो निराशावादी वह नास्तिक) पाशविकता से भरे हुये जगत को दैवी बनाने के लिये जो निष्ठापूर्वक कार्य करे वही सच्चा युवान है। इस प्रकार जगत को बदलने की मनीषावाला महत्वाकांक्षी युवान ही है।

आप कहेंगे, "शास्त्रीजी, आप चाहे कितनी चाखें–पुकारें, परन्तु इसका कोई प्रभाव होनेवाला नहीं। यह बात बुरी है। जिसमें आत्माविश्वास नहीं वह भले ही मृतजीन व्यतीत करे, आप लोग ऐसा मृतजीवन-यापन करनेवाले न बने, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में जगत को सुधारने की शक्ति रहती है। वृद्ध मुझसे कहते हैं, "शास्त्रीजी! हम तो डाकोर जाकर आये परन्तु लड़के जायेंगे या नहीं, यह शंकास्पद है।" मैं उनसे कहता हूँ, 'लडके जायेंगे या नहीं, इसका विचार न करो। आपके लड़के तो जायेंगे ही, परन्तु ऐसा प्रयत्न कीजिए कि समस्त संसार वहाँ आवे। यदि ऐसी अटल-उदात्त श्रद्धा होगी और प्रयत्न होगा तो एक दिन ऐसा आयेगा कि समग्र जगत डाकोर और पंढरपुर की यात्रा के लिये

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जायेगा। ऐसी श्रद्धा मन में है, तो वही सच्चा युवान

युवान, नचिकेता की तरह दृढ़ मन का होना चाहिये। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था— 'Give me hundred Nachiketas and I will Change the world'— मुझे सौ नचिकेता दो और मैं जगत की आकृति बदल दूँगा। जगत को ऐसे मृत्यु के साथ झगड़नेवाले, ज्ञानपिपासु, तेजोमय लोग ही सुधार सकते है। भोगविलास में मग्न, लम्पट लोगों का यह कार्य नहीं। लोभ के पीछे न दौड़नेवाले लोग ही ऐसा काम कर सकते हैं। मृत्यु के साथ संघर्ष करनेवाले नचिकेता जैसे युवान ही जगत को सुधार सकते हैं। जिसमें मृत्यु के साथ लड़ने की, उस पर सवार होने की शक्ति, श्रद्धा है, वही युवान है। मात्र रोता ही रहे, वह क्या कर सकता है ?

नाचिकेता यम को कहता है, 'तुम जो मुझे देते हो वह मुझे नहीं चाहिये, तुम्हारी कृपा से मिली कोई वस्तु मुझे नहीं चाहिये। जो देता है वह ले भी सकता है, तो ऐसी नाशवान वस्तु का मैं क्या करूँगा ?'' कहाँ बालक नचिकेता और कहाँ आज के करोड़पति, जो मुफ्त का कुछ मिलता हो तो पिछले द्वार से पंक्ति (Queue) में खड़े रहने के लिये तैयार हो जाँय !

इन सब के लिये मानसिक, शारीरिक और बौद्धिक शक्ति जिसने प्राप्त की हो वही सच्चा युवान है। यह युवान विश्व की सम्पत्ति का मालिक है, भले ही उसके नाम से बैंक में खाता (account) न हो। **'तस्येयं पृथिवी वित्तेन पूर्णास्यात्'** स्वामित्व तो उसका ही है, हम तो नाम के पुतले हैं। यह सुनकर डरो नहीं। यह युवान मालिक भले ही हो परन्तु स्वामित्व का अधिकार सिद्ध करने वह जायेगा नहीं। वह हमारे पास हाथ बढ़ाने के लिये नहीं आयेगा। रघुराजा जैसा भाग्य हमारा कहाँ से हो !

उस युग में आश्रमों और तपोवनों में ऐसे युवान तैयार होते थे। युवक आश्रमों से बाहर निकलते तब ऐसे गुणों से युक्त होकर ही निकलते थे। समग्र सृष्टि और समृद्धि ऐसे युवानों के हाथ में रहती। आश्रम में इस प्रकार गुरु की अनुज्ञा लेकर विद्यार्थी गृहस्थआश्रम में प्रवेश करता था। आज तो पास में पैसा हो कि काम बन गया। इसीलिये विद्यार्थीजीवन अर्थहीन लगता है। परिणामस्वरूप विवाह के साथ ही बुढ़ापा आने लगता है।

इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण आश्रम से यौवन प्राप्त कर तेजस्वी बनकर ज्ञान के प्रखर सूर्य के समान तेजस्वी बनकर बाहर आये। ये मूर्तिमंत तेजोमय युवान सांदीपनी ऋषि का आश्रम छोड़कर कहाँ गये और फिर इन्होंने क्या किया वह कल देखेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सातवाँ प्रकरण

युवान कृष्ण

तपोवन से बिदा

भगवान श्रीकृष्ण सांदीपनि ऋषि के आश्रम में युवानी के गुणों को प्राप्त कर गुण, वृत्ति और विचार से युवान बने। सांदीपनि ने बिदा की वेला में श्रीकृष्ण से कहा, "तुम्हारा अध्ययन पूर्ण हुआ। यों तो जीवन में अध्ययन कभी पूरा नहीं होता। उपाधि (Degree) प्राप्त करना मात्र क्या शिक्षा है? विशिष्ट प्रकार के गुणों को जीवन में निर्माण करना और वे जीवन में आवें, वही शिक्षा है। केवल उपाधियों (Degree) को प्राप्त करना ही शिक्षा या शिक्षण नहीं है। सच्ची शिक्षा तो जीवन-संघर्ष में जूझने के बाद ही प्राप्त होती है। और जीवनसंग्राम की परीक्षा में सफल होने का शिक्षण तुमने प्राप्त किया है। तुम्हारा तपोवन का शिक्षण भी अब पूर्ण हुआ। अब तुम 'स्नातक' बने। अब आश्रम-गुरुकुल छोड़कर अपने जीवन की सुवास संपूर्ण विश्व में फैलाओ।"

भगवान बिदा लेने के लिये गुरु के सन्मुख विनयपूर्वक खड़े रहे। उनका हृदय भर आया वे बोल नहीं सके। श्रीकृष्ण के तपोवन जीवन को ये अन्तिम नमस्कार थे। उस समय 'साहब जी, (Good bye') का ज़माना न था। अर्थात सांदीपनि श्रीकृष्ण के शिक्षक न थे, गुरु थे। इसीलिये तो श्रीकृष्ण आज के विद्यार्थियों की तरह गुडबाय- (Good bye) कहकर चले न गये। शिक्षक और गुरु के बीच बहुत बड़ा अन्तर है। शिक्षक पेट भरने की कला सिखता है जबकि गुरु हाथ पकड़कर जीवन के आँगन में ले जाता है, वह जीवन जीने की कला सिखाता है। इसीलिये, जो गुरु जीवन सिखलाता है वह-सद्गुरु और ऐसे गुरु के पास विनीत भाव से विनम्र व्यवहार से, सिर झुकाकर, मूक बनकर श्रीकृष्ण खड़े रहे। संयमपूर्वक धीमे स्वर में श्रीकृष्ण ने गुरुदेव से विनम्र भाव से कहा, 'गुरुजी! आपके आश्रम में मैंने आनंद लिया ही है; ज्ञान और प्रेम का आनंद लिया है। आपका मुझपर अपार ऋण है। अब आपको कुछ देने का मन होता है, तो गुरु दाक्षिणा में क्या दूँ?'

इन शब्दों को सुनते ही सांदीपनि ऋषि का सात्त्विकभाव कठोर हो गया श्रीकृष्ण का कुछ ध्यान इनके प्रति नहीं था। वे आगे कहते गये, 'आपको जो चाहिये, वह माँग लीजिये।' गुरु से अब रहा नहीं गया और कठोर भाव से बीच में ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बोल उठे, 'कृष्ण ! मेरे आश्रम में रहकर आज तक तुमने इतना ही सीखा है ? यही शिक्षण तुमने लिया ? मैं किसी तृष्णा से इन विद्यार्थियों को शिक्षण नहीं देता।'

गुरु की ओर क्षणभर दृष्टिपातकर उनकी तेजस्वी कान्ति से चौंधियाकर श्रीकृष्ण ने अति विनम्रता पूर्वक कहा, "कृतज्ञता से मेरा हृदय भरा हुआ है, यह कृष्ण नहीं बोलता, वरन् उसका हृदय बोल रहा है। मात्र लेकर ही जाऊँ, ऐसा मुफ्तखोर जीवन जीने की मेरी इच्छा नहीं। कृष्ण मुफ्त लेकर गया यह अयोग्य आचरण न हो, इसलिये कहा हूँ। आपके आश्रम में आपका विद्यार्थी मुफ्तखोर था यह आपके आश्रम को शोभा नहीं देता। गुरुदेव ! अविनय के लिये क्षमायाचना करते हुये कहता हूँ।'

गुरु बोले, 'आजतक जीवन जीने की तुम्हें जो शिक्षा दी, उसकी तुम इतनी ही कीमत आँकते हो ? कृष्ण, तुम क्या शिक्षण की कीमत आँकते हो ? आजतक आँतें तोड़कर तुम्हें इसीलिये पढ़ाया ?' कृष्ण ने कहा, 'आप तो महान हैं, समर्थ हैं, परन्तु आप मेरे हृदय को समजने का प्रयत्न करें। कृष्ण कीमत आँकने के लिये नहीं कहता, क्योंकि लिये ज्ञान की मैं कीमत कर ही नहीं सकता। कृष्ण की भावना दखो। वानर को मानव और पशु को पशुपति बनानेवाले गुरु को सर्वस्व दे दिया जाय, तो भी उनके ऋण से उऋण नहीं हो सकता। मात्र कुछ देकर सन्तोष प्राप्त करने के लिये ही मैं दिल का भाव व्यक्त करता हूँ। आपसे कुछ आज्ञा करने के लिये विनय करता हूँ।"

इस प्रकार संवाद चलता रहा। हमको उसकी गहराई में जाने की आवश्यकता नहीं है। यह तो मार्गदर्शन किया है; जिज्ञासा हो तो ग्रन्थ खोलकर देखिये। वास्तव में श्रीकृष्ण गुरु की आंतरिक इच्छा जानते थे। अरे ! जब आये तभी, प्रथम दिन से ही जानलिया था। परन्तु संवाद द्वारा श्रीकृष्ण विश्व को बताना चाहते हैं, कि आदर्श और तेजस्वी ब्राह्मण कैसे होते हैं ? अर्थात् ब्राह्मणों को आदर्श और तेजस्वी होना हो तो क्या करना चाहिये ? जीवन में कैसे गुणों का विकास करना चाहिये ? इसका पाठ गुरु के जीवन द्वारा ही श्रीकृष्ण जगत को देते हैं।

गुरुदक्षिणा

सांदीपनि आज के गुरु जैसे न थे। कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर भी किसी चीज की तृष्णा न रखनेवाले वे थे। कल्पवृक्ष से सब कुछ मिलता है, परन्तु उसके लिये इच्छा तो करनी ही पड़ती है। आदर्श और दिव्य ब्राह्मणों में से वे एक थे। ऐसा महामानव गुरुदक्षिणा कैसे माँगे ?

अन्त में शिष्यवर्ग ने कहा, "गुरुदेव के पुत्र को दैत्य बनाने के मन्तव्य से राक्षस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उठाले गये थे। इनका वह एकमात्र पुत्र था। इनका पुत्र ला कर, इनका दुःख दूर करना समर्थ शिष्य के नाते तुम्हारा कर्तव्य है। अतः गुरु का प्रिय इस कार्य द्वारा करो।"

श्रीकृष्ण ने विश्वास दिलाया-"भाईयों! इसका मुझे पता है कि गुरु का प्रेम दाम्भिक, ढोंगी या स्वार्थी नहीं, अपितु अलौकिक और अप्रतिम है। गुरु के प्रियकार्य को किये बिना मैं कभी नहीं जाऊँगा।"

उस जमाने में दैत्य सात्त्विक बुद्धिवाले बालकों को उठाकर ले जाते थे। सांदीपनि ऋषि को भी यह भय था कि दैत्यों के साथ रहकर मेरा पुत्र दैत्य बन जायेगा। यह भी शराब के क्लब (मदिरालय) जैसा है। शराबी सदैव अपने क्लब में सदस्यों को बढ़ाने का प्रयास करते हैं और जो इन लोगों के संग में आया, वह देर सबेर शराबी बन ही जाता है। पाशवी संस्कृति का प्रचार इसप्रकार ही बढ़ता है, क्योंकि स्वाध्याय-मण्डल में ले जाने का विचार कोई भी नहीं करता।

पंचजन्य असुर का वध

सांदीपनि के पुत्र को पंचजन्य नाम का शक्तिशाली राक्षस उठा ले गया था। बड़े बड़ों को भी उसके पास जाने में भय लगता था, परन्तु श्रीकृष्ण को भय किसका? किसीसे भी डरें, वह श्रीकृष्ण नहीं। निर्भयता उनके जीवन का मुख्य सूत्र था। हाँ इनके जीवन में कृत्रिम भय, नाटकीय भय तो बहुत देखने को मिलता है। बचपन में ही बड़े बड़े राक्षसों का वध करनेवाले श्रीकृष्ण यशोदा माता से कैसे डरते थे? कवियों को श्रीकृष्ण के जीवन में भय के भाव का वर्णन करने के लिये यही प्रसंग मिला है, बाकी तो भय शब्द श्रीकृष्ण के शब्दकोष में ही न था।

भगवान अकेले ही पंचजन्य के साथ युद्ध करने के लिये चल पड़े। उन्होंने पंचजन्य को गुरु-पुत्र को वापस करने के लिये बहुत समझाया परन्तु पाशवी संस्कार वाले, सत्तावाले, सीधे बात कभी समझते हैं? धृतराष्ट्र को कम समझाया था? पंचजन्य न माना तब श्रीकृष्ण ने उसकी हड्डियों का चूरा कर डाला, उसका शंख बनाया तथा गुरु पुत्र दत्त को वापस ले आये। उस शंख का नाम पांचजन्य रखा। उस दिन से उनके हाथ में पांचजन्य है। पांचजन्य शंख का नाद कर भगवान ने जगत को चेतावनी दी कि सात्विक वृत्ति के लोगो को तामसी बनाने का प्रयास करोगे, सत्ता-सम्पत्ति के लोभ में पड़कर उसे ही जीवन का सर्वस्व मानोगे, और अहंकारी बनकर दुर्बल को सताओगे तो तुम्हारी भी पंचजन्य जैसी दुर्दशा होगी। अर्थात भोगलम्पट, स्वार्थी और संस्कृतिविहीन दैत्यों की क्या दशा प्रभु करते हैं, यह वे अपने शंख द्वारा सूचित करते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रीकृष्ण विजय प्राप्तकर आश्रम में वापस आये और गुरुदक्षिणा में गुरुदेव को उनका पुत्र दत्त वापस लाकर दिया। क्षिप्रातट का आश्रम चारों ओर से आनंद से ओतप्रोत हो गया। सबके हृदय आनंदाश्रु से उफन आये। कारण दो थे। – एक तो गुरुपुत्र का पुनरागमन–नवजीवन और दूसरा मुख्य कारण श्रीकृष्ण दैत्य को मारकर सकुशल वापस लौट आये। गुरुपत्नी के मनोभावों का वर्णन करना शक्य नहीं। उनका हृदय माता का था, इसलिये भगवान ने जब चरण–स्पर्शकर आज्ञा माँगी तब गुरु–पत्नी का अंतःकरण भर आया। उसने श्रीकृष्ण से गद्गद् कंठ से कहा, " कृष्ण, आज तक तू इस आश्रम में रहा, तेरे प्रेम से सभी पागल से बन गये हैं। तेरे बिना किसीको अच्छा नहीं लगेगा। तुझे यहाँ से कैसे जाने दें ? गोकुल की तरह तू हमको भी छोड़कर जाये यह हमसे सहन नहीं होता। तू यहीं रह, यही हम सब की प्रबल इच्छा है।

सांदीपनिऋषि तो महाज्ञानी थे। उन्होंने कहा, 'ऐसे खिले हुये सुमन को वन में कुम्हलाने नहीं दिया जा सकता। मात्र भावना से आकर्षित होने से काम नहीं बनता। बुद्धिपूर्वक विचार करना चाहिये '– उन्होंने कहा, 'श्रीकृष्ण को अब जगत के जंजाल में जूझने दो। यह अपने उत्तम चरित्र द्वारा युवानी, सद्गुण इत्यादि क्या हैं यह जगत को बतायेंगे। दुःख तो मुझे भी होता है, परन्तु अपने विचार की अपेक्षा विश्व का विचार प्रथम विचारणीय है। "

लोक नेता

इस प्रकार कृष्ण कर्मयोगी बनने के लिये गुरु आश्रम त्यागकर मथुरा गये। मथुरावासी तो भगवान श्रीकृष्ण के आगमन की आतुरता से राह देख रहे थे। कैसे न देखें ? वे तो उनके हृदय–सम्राट थे। एक क्षण का भी विचार किये बिना मथुरा के राज्य को उग्रसेन को सौंपनेवाले श्रीकृष्ण के प्रति ऐसा आदर हो, तो इसमें नवीनता क्या है ? इन्हें राज्य नहीं चाहिये था, इन्हें राजा नहीं होना था। जो लोगों के हृदय का राजा हो, उसे राज्य की क्या आवश्यकता ? जनमत के जीवित सिंहासन पर विराजमान व्यक्ति स्थूल सिंहासन की अपेक्षा किस लिये रखे ? इनका राज्य गोकुल, मथुरा, वृन्दावन अरे ! यत्र-तत्र-सर्वत्र था; इनको राजगद्दी की कोई आवश्यकता न थी। कितना अलौकिक स्वार्थत्याग ! मानव राज्य पाने के लिये अधम से अधम कृत्य करने में भी हिचकता नहीं जब की श्रीकृष्ण को राजगद्दी की तृष्णा ही न थी। श्रीकृष्ण का जीवन राजसत्ता की अभिलाषा से, मनचाहे कुकर्म करनेवाले राजाओं को आत्मनिष्ठा और आत्मत्याग द्वारा स्वार्थ–त्याग की महत्ता समझानेवाला है। जीवन का महान दर्शन श्रीकृष्ण ने अपनी कृति से कराया है।

मथुरा वापस लौटने के पश्चात् भगवान विचार करने लगे, " मैंने आज तक अनेक दैत्यों को मारा है, लोगों को पीड़ित करनेवाले दानवों का विनाश किया है, परन्तु मात्र दैत्यों के विनाश करने से ही सभी प्रश्नों का समाधान नहीं हो जाता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मात्र विरोधी स्वर न सुनने से ही समाज की प्रगति नहीं होती। उसके लिये लोगों में निष्ठा पैदा करनी चाहिये। निष्ठा हो तभी जीवन में तेजस्विता और निर्भयता आती है। इसलिये यदि लोगों को, निष्ठा जाग्रत कर सच्चे मार्गपर न ले जाया जायेगा तो यह बहुत बड़ी भूल गिनी जायेगी।" ऐसा विचार कर उन्होंने गण-राज्य की जनता को तेजस्वी बनाने का पुरुषार्थ प्रारम्भ कर दिया। खुली (सार्वजनिक) सभायें आयोजित कर प्रेरणादायक प्रवचन देकर उन्होंने लोगों को समझाया कि पाशवी संस्कृति के सामने कभी झुको नहीं। मृत्यु आये तो प्रसन्न--वदन उसका स्वागत करो, परन्तु दुष्टों की सत्ता कभी स्वीकार न करो। यह मानसिक--शक्ति प्रत्येक में आये इसके लिये वे स्वयं स्वाध्याय करते--कराते तथा स्वाध्याय का महत्व समझाते थे।

समय के प्रवाह के अनुसार जनता का मार्गदर्शन करना सरल बात है, परन्तु जो लोगों को सच्चा मार्ग दिखाये और जो चल रहे विपरीत प्रवाह के विरुद्ध आवाज उठाकर लोगों को सजग करे वही महामानव है। मात्र भोगविलास और द्रव्यो–पार्जन का ही विचार करनेवाले लोगों को, भोग–विलास तथा सम्पत्ति की अपेक्षा ज्ञान और प्रेम का मूल्य अधिक होता है यह समझाना ही सच्ची महत्ता है। पाशवी सत्ता के विरुद्ध खुला आव्हान करने के लिये हृदय चाहिये, साहस चाहिये, जिस समय सात्विक सँस्कृति के लोग भीरु बन जाते हैं उस समय सँस्कृति निर्बल होकर क्षीण होने लगती है। मानस--शास्त्र के इस रहस्यं को श्रीकृष्ण यथोचित रूपसे जानते थे इसलिये उन्होंने समाज के सद्प्रयत्नी लोगों को, चलनेवाले विपरीत प्रवाह के विरुद्ध खड़े रहने का आदेश दिया। भोग, सत्ता और सम्पत्ति की परवाह न कर ज्ञान, प्रेम और निष्ठा की जयघोषणा करने की श्रीकृष्ण प्रेरणा देते हैं। इसप्रकार जनमत विरोधी प्रवाह के विरुद्ध न बोल सकनेवाले सात्विकों के मन से पाशवी संस्कृति का भय समूल निकाल फेंकने के लिये वे अथक प्रयत्न करने लगे। क्योंकि जो कायर मनोवृत्ति का होता है, वह भीरु होता है और कुछ कर नहीं सकता। मथुरावासियों के हृदय से भय निकाल डालने के लिये श्रीकृष्ण ने अपने रक्त का पानी बनाया। पशुता--यह मूर्खता है, यह बात अन्धक और वृष्णिकुल के लोगों को समझायी। अरे! अहोरात्रि स्वप्न में भी इनके मन में एक ही विचार घूमता रहता था और वह सात्विक लोगों को निर्भय बनाकर, उनका कल्याण सिद्ध करना और इस प्रकार संस्कृति की रक्षा करना, जब लोग धन को ही सर्व शक्तिसम्पन्न समझते हैं तब 'धन से भी मानव बुद्धि और विचार नहीं खरीद सकता'– ऐसी छाती ठोककर चुनौती देनेवाले दल का निर्माण करना उनका लक्ष्य था। श्रीकृष्ण की यह शंखध्वनि थी, राजा तो क्या किसी भी पाशवी शक्ति के आगे माथा न झुका कर उन्नत मन से कार्य कर सकने वालों का संगठन श्रीकृष्ण करते थे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भगवान श्रीकृष्ण के इन प्रयासों के कारण लोगों की कुम्हलायी और मुरझायी हुयी मुखाकृतियों पर नवीन तेज आया। 'हम कुछ करने के लिये पैदा हुये हैं' ऐसी भावना लोगों के मन में जाग्रत होनी लगी। 'हम जंगल के फूल के समान जीवन जीने के लिये पैदा नहीं हुये'– इस बात का लोगों को भान होने लगा और मथुरा पर जिस समय प्रथम प्रचण्ड आक्रमण हुआ उस समय तक मथुरा का इसप्रकार नवनिर्माण (Reconstruetion) हो चुका था। प्रत्येक दिवस, प्रत्येक क्षण, श्रीकृष्ण इस धुन में ही व्यतीत करते थे।

जरासंध की चिढ़

कंस की मृत्यु के कारण विधवा हुयी मगधपति–जरासंध की दोनों पुत्रियाँ–अस्ति और प्राप्ति, रोते–पीटते जब अपने मायके गयीं और बाप को ताना मारते हुये बोलीं, "एक चौदह वर्ष का छोकरा हमारी यह दशा करे और तुम हाथ जोड़कर बैठे रहो, तुम्हारे आक्रमणकारी राज्य का क्या करना ? भले ही तुमने हज़ारों राजाओं को अपना करदाता बनाया"– तो जरासंध अत्यन्त क्रोधित हुआ। श्रीकृष्ण रूपी कांटा निकालने का उसने निर्णय किया और दूसरे राजाओं को जीतकर, समझाकर अपने पक्ष में करने लगा। राजा भी मजबूर होकर, स्वेच्छा से अथवा भयातुर होकर जरासंध के पक्ष में जाते। प्रत्येक राजा को ऐसा लगा कि श्रीकृष्ण ने अत्यन्त अनुचित काम किया है। कंस का वध निश्चित ही अनुचित घटना है। कारण चाहे कुछ हो परन्तु श्रीकृष्ण एक प्रजाजन थे। प्रजा की एक इकाई कंस जैसे सिंहासनारूढ राजा को सिंहासन से खींचे और मार डाले, यह इन लोगों को अच्छा नहीं लगा। ऐसी घटना अभीतक इतिहास में न घटी थी, इसलिये भय निर्माण हो गया था। आज श्रीकृष्ण ने ऐसा किया, कल दूसरे प्रजाजन भी राजाओं के विरुद्ध विद्रोह करेंगे और ऐसा होगा तो राजाओं का अस्तित्व ही धूल में मिल जायेगा। इसलिये, ऐसी घटना हो उससे पूर्व ही श्रीकृष्ण को प्रारम्भ में ही दाग देना चाहिये। कलंकित राजाओं को आजतक राजसत्ता से वरिष्ठ तपस्वी सत्ता ही सिंहासन से नीचे उतारती थी, इसका तो पता था, परन्तु सामान्य प्रजाजन नहीं उतार सकता था। यह तो प्रथम ही घटना थी, इससे भयभीत होकर ही राजा जरासंध के पक्ष में गये।

प्रचण्ड आक्रमण

इसप्रकार के विचार रखनेवाले अनेक राजाओं का सहयोग प्राप्तकर मगधपति जरासंध ने मथुरा पर प्रचण्ड आक्रमण किया, सभी राजाओं की कुल बीस अक्षौहिणी सेना एकत्रित हुई। भागवत के कथनानुसार तेईस अक्षौहिणी सेना ने मथुरा पर आक्रमण किया, एक अक्षौहिणी सैन्य अर्थात् २१८००, रथ इतना ही गज–दल, ६५८४९ अश्वसैन्य और एक लाख साढेच्चार हजार पदाति–यह है

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक अक्षौहिणी सेना की गणना। ऐसी तेईस सेनाएँ साथ मिली थीं! कितनी संख्या होगी? और किस प्रकार की होगी? उसकी व्यवस्था आदि की धमाचौकड़ी भी कैसी होगी? ऐसी प्रचंड शक्तिशाली सेना ने मथुरा पर आक्रमण किया। सत्य और असत्य के मध्य घोर संग्राम हुआ। एक ओर तत्त्वके ज्ञाता, स्वातंत्र्य का मूल्यांकन करनेवाले, न्याय पर अटल रहनेवाले, निष्ठावान और दैवी विचारवाले मथुरा के योद्धा और दूसरी ओर लोभ, मोह, क्रोध तथा मत्सर से भरपूर सत्तालोलुपों के भाड़े के सैनिक! भाड़े के सैनिक कितना और कैसा काम करेंगे? वेतनभोगी नौकरों से उत्तम काम की अपेक्षा कहाँ से रखी जाय। कार्य में हृदय होना चाहिये। परिणामस्वरूप मगधपति को प्रबल और शक्तिशाली सेना के होते हुये भी वापस मगध भाग जाना पड़ा। जरासंघ का माथा नीचे झुका।

श्रीकृष्ण ने जन-संघ की जाग्रति की प्रतीति करायी। भगवान ने कुछ आकाश से जादू नहीं किया, लीला भी नहीं की। श्रीकृष्ण नेता थे। उन्होंने तो लोगों में जीवंत प्रेरणा भरी थी। वे सच्चे और समर्थ नेता थे। लोगों को क्रान्ति और संकट-काल में जो योग्य नेतृत्व प्रदान करे, वही नेता। श्रीकृष्ण की इस विजय का कारण विशेषरूप से ध्यान में रखने योग्य है। नेता यानी लीडर (Leader) one who Leads is leader, यह है लीडर की व्याख्या, one who drives is a driver. यों तो अपनेको नेता के रूप में प्रदर्शित करनेवाले लोगों की कमी नहीं, परन्तु वे नेता 'Leader' नहीं होते 'ड्राइवर' (Driver) ही होते हैं। वे लोगों को चाहे जहाँ हाँक कर ले जायँ। ऐसे नेताओं को 'लीडर' की अपेक्षा 'ड्राइवर' कहा जाय तो अधिक उचित गिना जायेगा। नेता तो लोगों का प्रतीक है, जो जनता में चेतना भर सके, वही सच्चे रूप में नेता गिना जाता है। Leader में लोगों का विश्वास होना चाहिये। उनमें जीवन्तता होनी चाहिये। नेता उनके हृदय के प्रेम का मूर्तिमन्त प्रतीक होता है। उनकी मनोभावना नेता में साकारत्व पायी होनी चाहिये। श्रीकृष्ण ऐसे ही नेता थे। इसलिये ही मथुरा के अल्पसंख्यक लोगों ने जरासंध को पराजित कर भगा दिया था। ऐसे प्रचण्ड आक्रमण को मार भगाना बच्चों का खेल नहीं। फिर भी इस दुष्कर कार्य को भी मथुरावासियों ने कर दिखाया। श्रीकृष्ण की दिव्यता यहीं दिखायी देती है।

श्रीकृष्ण जीवंत पुरुषार्थ थे। लोगों में जीवन्तता निर्माण करना कोई खेल नहीं। समाजशास्त्र के अध्ययनकर्ताओं के लिय भगवान श्रीकृष्ण का जीवन दृष्टान्तस्वरूप है। एक मानव समग्र जनता के मानस को किसप्रकार पलट सकता है, और पौरुषहीन बनी प्रजा में पुरुषार्थ किस प्रकार से पैदा कर सकता है, इसका ज्वलंत दृष्टान्त श्रीकृष्ण के जीवन से मिल रहा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जरासंध ने सत्रह सत्रह बार मथुरा पर आक्रमण किया और श्रीकृष्ण के नेतृत्व में मथुरावासियों ने प्रत्येक आक्रमण को शूरवीरतापूर्वक मार भगाया। श्रीकृष्ण अल्प-सँख्यकों (Minority) के नेता थे। उन्होंने देखा कि जरासंध की शक्ति उसके पक्ष में हंस और डिम्मक के ऊपर है, इसलिये विचारकर भगवान ने चतुराई से हंस और डिम्मक को ही मरवा डाला। यह वृतान्त हम पहले देख चुके हैं। यह राजनीति है; रणनीति है। हमने अभी देखा, भगवान अल्पमत के नेता थे, उनके विरुद्ध प्रचण्ड पाशविक बहुमत (Majority) था, फिर भी जिस युक्ति से श्रीकृष्ण ने इन दो महारथियों का वध किया, वह घटना आश्चर्यजनक थी। हंस और डिम्मक की मृत्यु से जरासंध भयाक्रान्त हो गया और उसकी सेना भी साहस गँवा बैठी। मथुरा-वासियों ने सत्रह बार ऐसे आक्रमणों का सामना किया।

विकद्रु की निर्भय वाणी

सत्रहवें आक्रमण के पश्चात सेना को महाप्रयाण के लिए तैयार कर आन्तिम अठारहवाँ प्रचण्ड आक्रमण करने जरासंध आया। इस समय यादवों की सभा बैठी। इस सभा में विकद्रु नामक यादव ने एक कटु सत्य कहा। उसने कहा, "क्रृष्ण। तुम्हारे प्रति हमारा स्नेह अपार है। हमारे ऊपर तुम्हारे जो उपकार हैं, उनका बदला नहीं दिया जा सकता। तुमको छोड़ने को मन नहीं होता, परन्तु सत्रह- सत्रह आक्रमणों के परिणाम स्वरूप मथुरा का नागरिक जीवन छिन्न भिन्न हो रहा है। व्यापार–व्यवसाय विनष्ट हो गया है। कृषि की ओर लोग ध्यान नहीं दे सकते। फलस्वरूप प्रगति अवरुद्ध हो रही है। जरासंध के आक्रमणों का भय सदा बना रहता है। अब यदि जरासंध अठारहवीं बार आक्रमण करे, तो उसका दृढ़ता से सामना करने की यादवों की शक्ति भी घट गयी है। ऐसे अवसर में समस्त जनता के लिये कटु परन्तु सत्यवचन तुमसे कहता हूँ कि तुम्हारा त्याग करने का समय आ गया है, क्योंकि तुम्हारे कारण ही यह आक्रमण है। तुम्हारे कारण निर्दोष प्रजा को बहुत कुछ सहन करना पड़ता है। तुम सोचकर निश्चय करो। हममें चेतनता फूँकनेवाले, चिन्मय बनानेवाले तथा आत्मनिष्ठा से दीक्षा देनेवाले बुद्धिनिष्ठ श्रीकृष्ण! तुम्हारे शिष्य भावना प्रधान नहीं होते। चुप रह नहीं सकता इसलिये तुमसे यह नग्न सत्य कहता हूँ; विश्वास है कि इस पर तुम अवश्य विचार करोगे। थके लोग कितना लड़ें? तुम्हारे लिये हम प्राण बिछाने के लिये तैयार हैं, परन्तु इस समाज के हित का तुम विचार करो।"

विकद्रु का यह वक्तव्य समाप्त हुआ, उस समय सभा चित्रलिखित सी थी। समाज के विचारकों के मन की प्रतिध्वनि विकद्रु के विचारों में थी। साहस पूर्वक किसी की कहने की शक्ति न थी। इस घटना का प्रभाव ऐसा हुआ कि, पुत्र--प्रेम से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आकर्षित हुये बिना ही श्रीकृष्ण के पिता वसुदेवजी ने प्रत्यक्ष सभा में विकद्रु के कथन का समर्थन किया। वसुदेव जी बुद्धि से निर्णय लेते थे।

मथुरा त्याग

श्रीकृष्ण को भी यह सलाह विचारणीय लगी। गणराज्य पर संकट आया करते हैं। एक व्यक्ति के लिये यदि समाज और राज्य में इतनी अधिक विपत्ति और आपत्तियाँ आती हों तो उस व्यक्ति को समाज या राज्य से दूर हो जाना चाहिये। जरासंध के आक्रमण का मुख्य कारण मैं ही हूँ, इसालिये मुझे मथुरा छोड़कर चले जाना चाहिये--ऐसा निर्णय करके श्रीकृष्ण खड़े हुए और कहा "भाई विकद्रु! मुझे तुम्हारी सम्मति अक्षरशः सत्य लगी है। तुम्हारे प्रेम के लिये मैं ऋणी हूँ, साथ--साथ स्पष्ट–भाषण के लिये प्रसन्न हूँ। ऐसी ही निर्भयता सीखनी चाहिये। अपनी साधना की सिद्धि मुझे देखने को मिली है। तुम्हारे प्रेम को मैं समझता हूँ, मेरे लिये नागरिक जीवन अव्यवस्थित हुआ है, यह भी जानता हूँ, इसलिये मैं जाता हूँ। तुम्हें संस्कार दिये तदनुसार रहना और उनका सिंचन अन्य नये लोंगों में करना। मैंने यादवों की दूसरी बस्ती बसाने का निर्णय कर लिया है। उत्तरी सौराष्ट्र की ओर- आनर्त में जाता हूँ; द्वारिका जाता हूँ।"

भगवान की त्वरित निर्णय--शक्ति का हमको अब तो पूर्ण परिचय हो गया है। जिस समय यादवों का यह विचार था, उसी समय जरासंध मथुरा पर आक्रमण करने के लिये कालयवन को साथ लेनें का विचार करता है। कालयवन जगत का काल था। फिर दोनों युद्ध में झूझ पड़े। कालयवन को पैसे के अतिरिक्त दूसरा विचार नहीं था। जरासंध ने कालयवन से कहा, "एक ओरसे तुम आक्रमण करो; वे तुम्हारे साथ लड़ने और तुम्हें रोकने के लिए आयेंगे तब दूसरी ओरसे मैं मथुरा पर आक्रमण करूँगा, और मथुरा को समाप्त कर दूँगा।"

श्रीकृष्ण ने मथुरा छोड़ने का निश्चय किया और प्रातःकाल ही संकट आ पड़ा। कालयवन श्रीकृष्ण के साथ लड़ने के लिये आ पहुँचा। श्रीकृष्ण ने शीघ्र विचार किया– मेरे पास राज्य नहीं, मुझे लड़ना नहीं; कालयवन मेरे साथ लड़ने आया है। मैं लड़ बिना ही पलायन कर जाऊँगा। कालयवन अपनी सेना के साथ मेरा पीछा करेगा और मथुरा युद्ध की विपत्ति से बच जायेगा। संकट काल में त्वरित निर्णय लेना ऐसे वेसों का काम नहीं। ऐसे समय में बुद्धि को जड़ता मार देती है, कुछ सूझता नहीं। परन्तु जगत को नेतृत्व और सम्मति देनेवाले श्रीकृष्ण को जगत की नसीहत की आवश्यकता न थी। चाहे कितना ही कठिन समय हो, उनकी त्वरित बुद्धि की निर्णय लेने की शक्ति अद्‌भुत थी। श्रीकृष्ण इसीलिये

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुरुषोत्तम गिने जाते हैं, श्रीकृष्ण जैसा अथाह बुद्धिवाला व्यक्ति दूसरा हुआ नहीं और भविष्य में भी होगा या नहीं, यह एक शंका ही है।

‘ रणछोडराय ’

श्रीकृष्ण ने निर्णय किया कि युद्ध तो करना ही है। जरासंध को इसके बिना व्यग्र नहीं किया जा सकता; केवल उसका स्वरूप बदल दूँगा। मथुरा के संकट को दूर करने के लिये पहिले से ही गुप्तचरों द्वारा ऐसा घोषित करा दूँगा कि, कालयवन को यह ज्ञात हो जाय कि श्रीकृष्ण भागता है। पिछले द्वार से तो सभी भागते हैं, परन्तु भगवान तो पहले ही स्पष्टकर आगे के द्वार से भागे। ऐसा प्रत्यक्ष पलायन ! ऐसे अप्रतिम साहस का इतिहास को आज तक पता नहीं। पहले तो कालयवन को ही इस बात पर विश्वास नहीं होता था; श्रीकृष्ण जैसा महारथी भाग जाय, यह बात उसके गले न उतरती थी परन्तु जब श्रीकृष्ण के मथुरा छोड़कर पलायन करने की बात सुनता है तो कालयवन सैन्य को साथ लेकर श्रीकृष्ण का पीछा करता है। श्रीकृष्ण आगे और कालयवन पीछे। श्रीकृष्ण ने चातुर्य का उपयोग किया, निकट की मुचकुन्दऋषि की गुफा में प्रविष्ट हुये। कालयवन वहाँ भी पहुँच गया। क्रोध और अभिमान में उन्मत्त, विवेकशून्य कालयवन ने अन्धकार में मुचकुन्द ऋषि को लात मार दी। ऋषि ने लात मारनेवाले को क्रोधित हो आँखें खोलकर देखा और इससे कालयवन जलकर भस्म हो गया। कोई कहते हैं कि मुचकुन्द ने उसे शाप देकर भस्म किया, तो कुछ लोग कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने ही कालयवन का वध किया। चाहे जिस प्रकार भी वह मरा और चाहे उन्होंने उसे मारा परन्तु वह मर गया, यह बात सत्य है।

द्वारिकाधीश

श्रीकृष्ण कालयवन की मृत्यु के पश्चात वापस लौटे तब मार्ग में शृगाल-वासुदेव की भेट हुई है। श्रीकृष्ण के जीवन की ओर विशिष्ट दृष्टि रखकर पढ़ेंगे तभी उनका रहस्य समझ में आयेगा। जीवन की दिव्यता दृष्टि में आयेगी; जीवन दिव्य होगा। यथार्थ नामी उन्मत्त शृगाल को मारकर, श्रीकृष्ण ने राजसत्ता का सूत्र, पतवार उसके पुत्र के हाथ में सौंपकर, उन्मत्त न होकर, प्रजा–पालन की प्रतिज्ञा करवाई। और परोक्ष रूप से अपने उपकार के नीचे भी दबाया है। इसके पश्चात् तुरन्त ही यादव सेना को लेकर भगवान गोमान्तक पर्वत (गिरनार) को लाँघ कर काठियावाड़ गये और काठियावाड़ी बन गये ! वहाँ, सौराष्ट्र में प्रभास–पाटन से बीस मील की दूरी पर उन्होंने ‘ द्वारिकापुरी– ’ सुवर्णनगरी बसाई। जगत का नवनिर्माण करने की शक्तिरखनेवाले के लिये ऐसी नवीन नगरी बसाना कुछ बहुत बड़ी बात न थी। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने यादवों की नई नगरी बसाई।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गृहस्थाश्रम में प्रवेश

श्रीकृष्ण इस समय युवान थे। लड़का युवान हो तो माता पिता को उसकी शादी की चिंता होती है। देवकी माता को भी श्रीकृष्ण के विवाह की चिंता होने लगी। यह तो जगत के कार्यों से निवृत्त नहीं होता – इसलिये शादी हो जाय तो अच्छा है। जगत को सुधारने के लिये बहुत कुछ किया है, ऐसी छलांगें कब तक मारेगा? उसके जीवन में ध्येय आना चाहिये, वंशपरम्परा रहनी चाहिये। अब घर के लिये भी कुछ करना चाहिये परन्तु श्रीकृष्ण को समझाये कौन? क्षत्रियपुत्र स्वयम्बर में जाय अथवा कोई लड़की दे तो स्वीकारे। श्रीकृष्ण को तो तत्कालीन प्रत्येक व्यक्ति अपनी लड़की देने के लिये तैयार था, परन्तु इस तेज के पास जाने का साहस कौन करे? ऐसे में एक स्वर्णिम–सुयोग बनता है–रुक्मिणि के साथ विवाह का।

राजा भीष्मक की पुत्री रुक्मिणि अलौकिक सौन्दर्यवती कन्या थी। उस के सौन्दर्य और गुणों की प्रशंसा चारों ओर फैली हुयी थी। उस लावण्य मूर्ति के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कवियों की प्रतिभा भी समाप्त हो गयी थी। श्रीकृष्ण के जीवन के इस सुकोमल प्रसंग का वर्णन करते हुये कवियों की लेखनी भी कुंठित हो गयी, तो मेरी वाणी की तो बात ही क्या करनी?

रुक्मिणी की पसंद–श्रीकृष्ण

भीष्मक राजा को उसके विवाह की चिंता थी। आते जाते तपस्वी, ऋषि तथा सज्जनों को सब से रूपवान, विद्वान और महापराक्रमी वरों को ध्यान में रखने के लिये कहते। पिता के पास जो जो विदेशी, तपस्वी और मेहमान आते उनसे रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण की प्रशंसा सुनी और मन से उन्हें वरणकर चुकी। श्रीकृष्ण को अपना हृदय–सम्राट मानकर उसने उनके साथ ही विवाह करने का निर्णय किया। प्रत्येक व्यक्ति भी श्रीकृष्ण को ही योग्य वर बताता था।

परन्तु भीष्मक जरासंध का आश्रित था और उसका पुत्र रुक्मि जरासंध की 'जीहजूरी' करने वाला था। उसने राज्य के अतिरिक्त अपनी बुद्धि और मन भी जरासंध के चरणों में अर्पित कर दिया था। भीष्मक की इच्छा अवश्य ऐसी थी कि रुक्मिणी का विवाह श्रीकृष्ण के साथ ही हो परन्तु जरासंध से प्रभावित मन–बुद्धिवाले रुक्मि को यह नहीं रुचता था। परिणाम स्वरूप घर में ही विरोध हुआ, परन्तु रुक्मिणि ने तो श्रीकृष्ण के सौंदर्य और पराक्रमों का वर्णन सुनकर उनको अपना भाव–सम्राट बना लिया था। रुक्मि ने एक जाल रचा। श्रीकृष्ण राजा न थे, वे तो राजाओं को बनानेवाले थे–King Maker थे। उसने सोचा रुक्मिणि का स्वयंवर रचाया जाय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तो यादव आयेंगे ही नहीं, क्योंकि वे राजा नहीं और भविष्य में भी नहीं होंगे ऐसा शाप है, इसलिये वे तो हतोत्साहित हो जायेंगे।

भीष्मक सात्त्विक वृत्ति का राजा था। उसने सोचा कि श्रीकृष्ण को भी स्वयंवर में आने का निमंत्रण देना ही चाहिये। कृतकौशिक भी श्रीकृष्ण को बुलाना चाहते थे। वह भीष्मक के Inner Circle का सात्त्विक राजा था। उसकी इच्छा थी कि श्रीकृष्ण रुक्मिणि का पाणिग्रहण करें। इसीलिये वह श्रीकृष्ण को अपना राज्य देने के लिये तैयार था। इस प्रकार श्रीकृष्ण को राजा बनाने का वह प्रयत्न करने लगा। उसने श्रीकृष्ण से उसे स्वीकार करने की प्रार्थना की।

स्वयम्बर में देश–विदेश के राजा, भीष्मक के यहाँ एकत्रित हुये। जरासंध का आग्रह यह था कि भीष्मक को अपनी कन्या का पाणिग्रहण शिशुपाल के साथ ही करना चाहिये। इसके लिए वह राजा भीष्मक पर दबाव डाल रहा था। यह सब देखकर श्रीकृष्ण ने भी विचार किया कि वहाँ जाकर खेल तो देख आयें। क़िमती वस्त्रभूषणों से सज्ज उन पशुओं को देखना तो चाहिये! उन्होंने अच्छे वस्त्र और अलंकार भले ही धारण किये हों, परन्तु वे प्रेमहीन, उन्मत्त और वैभव को ही परम ध्येय माननेवाले हैं। इसके अतिरिक्त यह भी जानने को मिलेगा कि मेरा किन व्यक्तियों से पाला पड़ेगा। सभी मरणार्थियों को देख लेना चाहिये।

श्रीकृष्ण ने अपने पौरुष से निराला ही स्थान प्राप्त किया था। उनको विश्वास था कि कोई मेरी उपेक्षा कर नहीं सकता। क्योंकि कृतकेशीक के निमंत्रण पर वहाँ जाना था। उन सभी राजाओं का श्रीकृष्ण के प्रति चाहे जितना अनादर हो, परन्तु प्रत्यक्ष रूप से श्रीकृष्णा का विरोध करने का साहस उनमें न था। इसलिये श्रीकृष्ण जब वहाँ पहुँचे तब बाहर बाहर से सभी राजा उनको नमस्कार करते रहे। इन लोगों को आशंका भी थी कि श्रीकृष्ण कुछ पराक्रम दिखाकर रुक्मिणि को भगा ले जायेंगे। रुक्मि श्रीकृष्ण के पराक्रम को जानता था, इसलिये उसने युक्ति प्रयोग कर स्वयम्बर को रोकने की घोषणा कर दी। श्रीकृष्ण तो वहाँ एकत्र हुये राजाओं के ढ़ंग देख उनकी गणना कर वापस द्वारिका चले गये।

रुक्मिणि का प्रेमपत्र

जब रुक्मिणि को ज्ञात हुआ कि जरासंध शिशुपाल के साथ उसकी शादी करने के लिये, उसके पिता भीष्मक पर दबाव डाल रहा है और उसके पिता ने यह बात स्वीकार भी करली है तब उसका मस्तिष्क घूम गया। उसने सोचा "स्वार्थ, लोभ और मोह की वेदी पर ये लोग मेरा–मेरे सौंदर्य का बलिदान दे रहे हैं और कदाचित् मेरा भाई, मेरा बलिदान कर भी दे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परन्तु क्या मैं बलि का बकरा हूँ ? किसी भी स्थिति में अपना बलिदान होने नहीं दूँगी, अपनी इच्छा के प्रतिकूल कदापि अपने को बेचने न दूँगी। भली प्रकार से विचार करने के पश्चात् रुक्मिणि श्रीकृष्ण को प्रेमपत्र लिखती है। कदाचित् जगत के इतिहास में यह सर्वप्रथम प्रेम-पत्र (Love letter) होगा। और वह भी कितने सुंदर ढंग से लिखा गया है ? ऐसा प्रेम-पत्र अन्यत्र भाग्य से ही देखने को मिलेगा। यह प्रेम संकेत सुदेव ब्राह्मण द्वारा रुक्मिणि श्रीकृष्ण को भेजती है।

" श्रुत्वा गुणान् भुवन सुंदर ! शृण्वतां ते " ' भागवत के दशम स्कन्ध के बावनवें अध्याय में इसका वर्णन है। प्रत्यक्ष श्लोकों को पढ़कर उनका सौन्दर्यपान करने योग्य है।

रुक्मिणि ने कृष्ण को लिखा कि तुम्हारे गौरवपूर्ण अद्‌भुत शौर्य, अलौकिक निष्ठा और तेजस्वी व्यक्तित्व देखकर कोई भी लड़की पागल हो जाय, यह बिलकुल स्वाभाविक है और मैं भी मुग्ध हुयी हूँ इसीलिये इस पत्र को लिखने का साहस करती हूँ। यहाँ मेरे बड़े मेरा हाथ पशुओं के हाथ में सौंप देने का प्रयत्न कर रहे हैं। अपने स्वार्थ के लिये वे मेरा बलिदान देने के लिये तैयार हैं, परन्तु मैं तो तुम्हारे गुण शील और बुद्धिमत्ता के पीछे पागल बनी हूँ। मुझे तो ऐसा पति चाहिये, जिसके सामने मेरा सिर झुके, जिसके आगे मस्तक नत हो-ऐसे अलौकिक व्यक्ति एक तुम्हीं हो, तुम्हारा जन्म " परित्राणाय साधूनाम् " है। सिंह का भक्ष्य शृगाल ले जाता है। शिशुपाल के सामने मेरा मस्तक निर्भयता से कदापि नहीं झुकेगा। भय से पत्नी का मस्तक झुकावें; ऐसे तो अनेक पति होते हैं। उसमें उनकी विशेषता क्या है ? तुमको मिलने का सरल मार्ग तो यह भी है कि मैं भागकर तुम्हारे पास आ जाऊँ, परन्तु तुम जैसे वीर को इस प्रकार भागकर आयी हुयी कायर युवती पसन्द नहीं होगी। दूसरा मार्ग अंतःपुर में दूसरों को मारकर ले जाना, परन्तु यह तुम-शूरवीर के लिये शोभनीय नहीं, तुम यहाँ एकत्र पशुओं का संहार करके ही मुझे ले जाओ - यह इच्छा है। मुझे रात ही रात भगाकर ले जाओ यह भी उचित नहीं इसीलिये तुम्हें तो मुझे खुल्लम खुल्ला सब के देखते हुये अपहरण कर ले जाना पड़ेगा। विवाह से पूर्व गिरिजा के मन्दिर में दर्शन करने के लिये जाना हमारे घर की परम्परा है। मैं वहाँ दर्शन करने के लिये आऊँगी और तुम वहाँ से सब शृगालो के देखते ही मुझे अपहरण कर ले जाओ, यही मेरी अभिलाषा है।

यह प्रेमपत्र कितने चातुर्य से भरा है ! कैसे पति की अपेक्षा है, यह, रुक्मिणि बताती है, और स्वयं भागना पसन्द नहीं करती, उसमें उसकी राजनैतिक बुद्धि है क्योंकि कदाचित् श्रीकृष्ण उसे अस्वीकार करें तो ? और फिर कृष्ण के पौरुष की प्रतीति भी कर लेना चाहती है। इस प्रकार यह (Political Love

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Letter) राजनैतिक प्रेमपत्र कहा जा सकता है। बुद्धिमान ही ऐसे प्रेम पत्र लिख सकते हैं। मानसशास्त्र का कितना गहन अध्ययन उस काल में होता होगा! श्रीकृष्ण और रुक्मिणि के गुणों का वर्णन और रुक्मिणि के प्रेम पत्र की कथा भागवत में जिस प्रकार वर्णित है वह सचमुच अद्भुत है।

सुखदेव ने द्वारिका आ कर श्रीकृष्ण को पत्र दिया। भगवान ने रुक्मिणि का पत्र पढ़ा और तुरन्त ही उसके बलिदान होने को रोकने का निर्णय लिया। उन्होंने विचार किया, "रुक्मिणि को मुझे उन लोगों के पंजों से मुक्त करना है। भयभीत व्यक्ति को भयमुक्त करना मेरा कर्तव्य है।"

रुक्मिणि हरण

श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन रुक्मिणि ने आर रुक्मिणि के गुणों का वर्णन श्रीकृष्ण ने सुना हुआ था। दोनों में परस्पर आकर्षण था ही, परन्तु कृष्ण का मात्र आकर्षण से ही खिचकर या रूप के मोह में पड़कर जाने का निर्णय नहीं हुआ बल्कि निर्णय तीन प्रकार से विचार कर किया गया। एक तो भयातुर लोगों को निर्भय करना, दूसरा–भावी धर्म संस्थापन के महान कार्य के लिये राजपरिवार के साथ मृदु–सम्बन्ध स्थापित करना और तीसरा जरासंध द्वारिका पर आक्रमण करने नहीं आता था, इसीलिये इस बहाने पशुत्व को समाप्त करने का अवसर मिल जायेगा; इस विचार से श्रीकृष्ण सुदेव के साथ जाते हैं। शूरवीरों का विवाह याने–रणसंग्राम! चायपानी या आइस्क्रीम की पार्टी नहीं!

श्रीकृष्ण सब के देखते अपने पौरुष से रुक्मिणि का अपहरण कर ले गये हैं उस समय उन सब का क्या हुआ वह पढ़ने योग्य है। हमारे सभी महाकाव्य ऐसे वर्णनों से भरे हैं।

लग्न समारोह

श्रीकृष्ण के पराक्रम के आगे यहाँ भी 'यः पलायति स जीवति' ऐसा विचार कर जरासंध, शिशुपाल आदि पाशवी-वृत्ति के राजा पूँछ दबाकर भाग निकले। रुक्मि श्रीकृष्ण के हाथ में पड़ गया। भ्रातृप्रेम और पति–प्रेम की द्विविधा में पढ़ी रुक्मिणि ने अंत में अपने भाई की मुक्ति के लिये प्रार्थना की। श्रीकृष्ण रुक्मिणि को लेकर द्वारिका वापस लौटे और द्वारिका में श्रीकृष्ण–रुक्मिणि का बड़ी धूमधाम और अत्यन्त ठाठ–बार से विवाह हुआ। आज तो वैभववाले–पैसेवाले सादगी के नाम पर थोडे में ही काम निकालने का विचार करते हैं। मन उदार चाहिये न! वास्तव में वैभव के प्रदर्शनमात्र से ही कितनों को आजीविका मिलती है, इसलिये कभी कभी वह भी आवश्यकीय है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस कथा से दो सार निकलते हैं। एक तो यह, कि पराक्रम किये बिना उत्तम पत्नी नहीं मिलती, इसके लिये शौर्य और पुरुषार्थ चाहिये, और दूसरा यह कि जिनके पास सम्पत्ति है, उनको ऐसे प्रसंगों में इसका खुले हाथ से प्रयोग करना चाहिये। वैभवशाली लोगों को व्यय भी करते रहना चाहिये, परन्तु आजकल तो काम निबटाने की भावना बढ़ गयी है। संक्षिप्त व्यय में ही कार्य निकालने की ही बातें होती हैं। इसे लोभी वृत्ति कहते हैं। मात्र संग्रह करना–मानवता नहीं। मानवता तो सम्पत्ति प्राप्त कर उसके व्यय करने में है।

महापुरुष आनन्दोपभोग के लिये विवाह नहीं करते; वैवाहिकजीवन उन्हें कर्तव्यच्युत नहीं कर सकता। विवाह के तुरन्त बाद ही श्रीकृष्ण ने नरकासुर का विनाश किया। नरकासुर ने प्रागज्योतिष के राजा की सैकड़ों युवतियों को अपने राजमहल में बन्दी बना रखा था। श्रीकृष्ण ने जाकर नरकासुर का वध किया और सभी युवतियों को बन्धन मुक्त किया, नरकासुर के पुत्र भगदत्त को गद्दीपर बिठाकर वे वापस द्वारका आये। अब उनके जीवन में स्वस्थता का अवसर आया।

इसप्रकार श्रीकृष्ण ने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। यों तो उनकी बहुतसी पत्नियाँ थीं, परन्तु उनमें से प्रमुख आठ थीं।

गृहस्थाश्रम का जो वर्णन उपनिषद में किया गया है वह अतिशय, हृदयस्पर्शी है। प्रत्येक गृहस्थ को उसे पढ़कर उसीप्रकार का गृहस्थी बनने का प्रयत्न करना चाहिये।

गृहस्थाश्रम में स्थिर होने के बाद श्रीकृष्ण विचार करते हैं, कि मात्र दैत्यों और पिशाचों का वध करना ही मेरा कर्तव्य नहीं, ऐसा करने से पशुता समाप्त नहीं होती। वह तो बढ़ती ही रहती है। मेरा कार्य तो धर्म की पुनर्स्थापना करना है। मेरा जीवन का मुख्य कार्य अधर्म का नाश कर धर्म का साम्राज्य स्थापित करना है। इसके लिये मुझे अब क्या करना है? धर्म की स्थापना करने के लिये साधन तो चाहिये न? अनैतिक राजसत्ता का नाशकर–उन्मूलनकर उसके स्थान पर नैतिक और धर्मप्रधान राजसत्ता की स्थापना करना यह मेरे जीवन का लक्ष्य है।

इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण अपने धर्मस्थापना के कार्य के लिये साधन ढूँढ़ने लगे। अब हम श्रीकृष्ण को साधन ढूँढने का अवकाश देंगे। जीवन में कभी 'माथा न खुजलानेवाले' श्रीकृष्ण माथा खुजलालें, तब हमको भी उन्हें चौबीस घण्टे का समय तो देना ही चाहिये।

भगवान ने अपनी अभिरुचि किसके प्रति व्यक्त की? धर्म स्थापना के लिये निमित्त किसे बनाया? इन सभी बातों का विचार कल एकादशी के अति पवित्र और मंगल दिवस को करेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आठवाँ प्रकरण

व्यवसायी श्रीकृष्ण--धर्मसंस्थापना

साधन की खोज

भगवान श्रीकृष्ण द्वारिका में स्थिर हो गये हैं, ऐसा लगता था। परन्तु युग-पुरुष चुप चाप बैठे-बैठे भी महान् कार्य करते रहते हैं। उनकी आँखों के समक्ष जगत के अनंत कार्य पड़े होते हैं। श्रीकृष्ण भी द्वारिका में जब चुप-चाप बैठे थे तब उनका मन पुनः दुष्टों का उन्मूलन कर धर्मराज्य की स्थापना करने के अपने जीवन-ध्येय में लगा हुआ था। कहा है- '**सर्वे धर्मा राजधर्मप्रधानाः**'।

उस समय राजा लोग बिगड़ चुके थे; वे अनीतिमान बन गये थे और जब राजा अनैतिक हो जाय तो प्रजा नीतिमान रह नहीं सकती अर्थात् राजसत्ताधारी अनैतिक हो तो कुछ भी शक्य नहीं क्योंकि 'राजाकालस्य कारणम्'-जैसा राजा वैसी प्रजा। श्रीकृष्ण के समक्ष मुख्य प्रश्न राजसत्ता का शुद्धिकरण कर तेजस्वी सत्ता की स्थापना करना था, क्योंकि वह हो, तभी स्वाध्याय और तप समाज में बढ़ता है। ऐसा कर भोग-विलास के स्थान पर प्रेम और त्याग का साम्राज्य स्थापित करने की प्रभु की इच्छा थी।

यह सुधार-सिद्धि दो प्रकार से हो सकती है। एक तो प्रवर्तमान राज्य सत्ता में स्वच्छता लाना और दूसरे नवीन राज्यसत्ता की स्थापना करना। प्रभु ने पूर्णरूप से विचार कर देखा कि सत्ताशून्य व्यक्ति सँस्कार और उपदेश से जिस प्रकार शीघ्र सुधारा जा सकता है ऐसा सत्तावान के सम्बन्ध में सम्भव नहीं।

अनियंत्रित राजसत्ता से ललचाये राजा भोगविलास और भौतिक सुख को ही जीवन का सर्वस्व माननेवाले होते हैं। ऐसे लम्पट और अनैतिक राजाओं को सुधारना असम्भव है। इसलिये विकल्प के रूप में वर्तमान राजसत्ता को उलट कर यदि नवीन राजसत्ता की प्रस्थापना की जाय तभी देश में सुख, शान्ति और न्याय का साम्राज्य स्थापित हो सकता है।

द्रौपदी के स्वयंवर में

श्रीकृष्ण को तो राज्य की तृष्णा थी ही नहीं। वे तो राजाओं के राजा थे। तो अब नये धर्मराज्य की स्थापना के लिये निमित्त, साधन के रूप में किसका उपयोग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करना है ? विचार करते हुये श्रीकृष्ण की दृष्टि पाण्डवों पर स्थिर हुई। पाण्डव पूर्ण त्यागी, न्यायी, महापराक्रमी और धर्म का बन्धन माननेवाले थे। यह उनका सर्वोत्तम प्रमाण-पत्र था। श्रीकृष्ण ने आपने पुण्यकार्य में पाण्डवों को ही साधन के रूप में उपयोग करने का निश्चय किया।

पाण्डव श्रीकृष्ण की प्रतिमा को उत्तम रीति से समझते थे। श्रीकृष्ण भी उनको जानते ही थे और उनकी माता के साथ तो उनका फूफी भतीजे का सम्बन्ध था; परन्तु पाण्डवों के साथ कृष्ण का सम्बन्ध दृढ़ तो हुआ द्रुपद की राजसभा में। द्रोपदी का स्वयंवर आयोजित किया गया था। देश के कोने कोने से राजा लोग स्वयंवर में भाग लेने के लिये आये हुये थे। श्रीकृष्ण भी वहाँ पधारे हुये थे। इस स्वयंवर में शरिर पर भस्म धारण किये हुये पाँच ब्राह्मणवंशधारी युवान भी उपस्थित थे। पाण्डव उस समय गुप्त वेष में भ्रमण करते थे। बल्कि निष्कासित पाण्डवों का तो लोगों ने श्राद्ध भी कर डाला था। वे पाण्डव द्रुपद के यहाँ स्वयंवर में गुप्त वेष में दिखायी दिये। महाभारत संहिता भी इसके पश्चात ही अति दिव्य और तेजस्वी बनी है, क्योंकि उसका पन्ना--पन्ना श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व से ठसा-ठस भरा है। महाभारत पढ़ने का आनंद यहाँ से ही है। राजनीति निपुण होना है तो अवश्य महाभारत पढ़िये। श्रीकृष्ण बलराम को स्वयम्बर-मण्डप में इन पांच भस्मधारी युवानों का परिचय साधने को सोचते रहे " इस भस्म के पीछे तो धुयें से ढ़की हुयी अग्नि छिपी हुयी है। मैं आज तक गणराज्य-स्वराज्य स्थापित करने के लिये निमित्त ढूँढ़ता था; अब मुझे मिल गया है। यादवों का सुखद स्वप्न इनको साधन बनाकर ही सिद्ध हो सकता है। इन पाण्डवों को साधन बनाकर मैं गणराज्य, स्वशासित राज्य-धर्मराज्य की स्थापना करूँगा," ऐसा विचारकर श्रीकृष्ण स्वयम्बर में पाण्डवों की ओर सतत एकाग्र दृष्टि से देखते थे।

राजनीतिज्ञ वही है जिसमें आकृति को देखकर ही व्यक्ति को परखने की शक्ति है। श्रीकृष्ण में यह शक्ति अलौकिक और अद्‌भुत थी। श्रीकृष्ण जैसा राजपुरुष आज तक पृथ्वीतल पर 'न भूतो न भविष्यति'- न कोई हुआ है और न कोई होगा ही।

पाण्डव एक कुम्हार के घर बैठे थे। श्रीकृष्ण बिना निमंत्रण के ही इनके निवास को ढूढ़ंते-२ कुम्हार के घर आ पहुँचा। श्रीकृष्ण जैसा पुरुषोत्तम अपनी महत्ता, प्रतिमा और व्यक्तित्व का मिथ्याभिमान न रखकर बिना बुलाये ही पाण्डवों को मिलने के लिये जा पहुँचे। जिसको जगत का कल्याण करना है उसके लिये बड़प्पन क्या ? युग-पुरुष को सामने से चलकर अपने आँगन में आया हुआ देखकर पाण्डव तो पानी-पानी हो गये। यों वे सँस्कारी और विनम्र तो थे ही। उसमें इस घटना ने तो उनको अत्यअधिक विनम्र बना दिया। श्रीकृष्ण के इस सौजन्य के कारण तो पाण्डव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आधे-आधे हो गये। पाण्डव आजीवन श्रीकृष्ण के इस उपकार को भूल नहीं सके। कोई भी कार्य श्रीकृष्ण की इच्छा के विरुद्ध और सलाह के बिना किया नहीं। पाण्डवों के पास अनेक गुण थे। उन्हें श्रीकृष्ण की महत्ता काभी पता था, इसलिये जिस समय इतने बड़े ख्याति प्राप्त व्यक्ति ने बिना निमंत्रण के अपनी झोपड़ी में आकर प्रगाढ़ आलिंगन लिया उस समय वे गद्‌गद होकर कृतज्ञ बुद्धि से श्रीकृष्णके समक्ष हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

फूफी जी को (कुन्ती माता को) प्रणाम कर सब की कुशल क्षेम पूछकर भगवान ने पाण्डवों की पीठ थपथपाई। 'डरो मत, हिम्मत न हारो, तुम तो सिंह की संतानें हो। जगत से अन्याय दूरकर न्याय का साम्राज्य स्थापित करने के लिये ही तुम्हारा जन्म हुआ है। तुम और हम सगे हैं; मैं तुम्हारे साथ हूँ; तुम अकेले हो, ऐसा मत समझो। कल प्रातः तुम्हें द्रुपद का साथ मिलेगा और यादव-द्रुपद--दो सत्ताओं की शक्ति के साथ तुम असम्भव को भी सम्भव कर सकते हो; अपना स्वप्न सिद्ध कर सकते हो।'

मानव को आपत्ति में जब सहानुभूति के दो शब्द कहनेवाला भी कोई न हो, उस समय यदि कोई इस प्रकार का आश्वासन और हिम्मत दे तो वह कितना अमूल्य गिना जायेगा! मानव में नवजीवन, नवचेतन भरने के लिये इतना ही प्रर्याप्त है। भगवान की विनम्रता और सहानुभूति ने पाण्डवों में नया चैतन्य ला दिया। पाण्डव आजीवन श्रीकृष्ण-विदुर की दृष्टि में रहे, इसका कारण भी यही है। संकट के समय पार्श्व में आकार खडे रहनेवाले का ऋण किस प्रकार चुकाया जा सकता है?

पाण्डवों की योग्यता का माप

श्रीकृष्ण को पाण्डवों के अलौकिक चारित्र्य और उत्कृष्ट चोटी के नैतिक जीवन का जिस प्रकार पता था, उसी प्रकार पाण्डवों की दुर्बलता को न जानते हों, ऐसा भी नहीं था। पाण्डवों में अनेक गुण थे, कुछ अवगुण भी थे, लेकिन जगत में पूर्णव्यक्ति तो मिले भी कहाँ से? यदि कुछ भी कमी न हो तो वह मानव ही काहे का? परन्तु श्रीकृष्ण को विश्वास था कि मेरा मार्ग-दर्शन, व्यक्तित्व और नेतृत्व इनके दोषों को दूर करेगा तथा नवीन धर्म संस्थापना के लिये राजव्यवस्था निर्माण करने के कार्य में ऐसा योग्य निमित्त कोई दूसरा मिलेगा नहीं, इसलिये उन्हीं को निमित्त बनाया। पाण्डवों में उन्होंने विश्वास, साहस और उत्साह भरते हुये कहा, "तुम तो तेजस्वी और पराक्रमी हो, तुम डरो या रोओ मत। पाण्डव टूट जाँय पर झुकें नहीं ऐसा मेरा विश्वास है। हमारी सम्पूर्ण यादव सेना तुम्हारे पीछे है। किसी के हाथ का पानी न पीनेवाले चाहे मर जायें पर झुके नहीं। पाण्डव श्रीकृष्ण की इस सौजन्यता से ही उनके सामने विनम्र बने।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिस समय जगत को उनकी चिन्ता न थी, उस दुःख के समय श्रीकृष्ण उनकी सहायता के लिये दौड़ पड़े थे। श्रीकृष्ण उनको हाथ का सहारा देकर तारने गये थे। इसीलिये श्रीकृष्ण उनके जीवन के सार-सर्वस्व होते हैं, हुये हैं। श्रीकृष्ण और विदुर के लिये पाण्डवों के मन में जितना अधिक प्रेम था उतना उस समय के अन्य किसी के भी प्रति न था। इसका कारणं श्रीकृष्ण की सज्जनता और विदुर की सरलता थी।

स्वयंवर में अर्जुन ने मत्स्यवेध किया और दुर्योधन-जरासंध आदि बलवान राजाओं की आँख में धूल झोंककर द्रौपदी जैसी पतिव्रता पत्नी प्राप्त की। इस दिन से पाण्डव अनाथ नहीं रहे। अब उनके पीछे पाचाल और यादव–सत्ता खड़ी थी।

जिस समय पाण्डवों का विवाह हुआ उस समय द्रुपद ने जो दहेज दिया और श्रीकृष्ण ने जो टीका भेंट किया उसकी समता नहीं हो सकती। हमें तो यह बात कवि की कल्पना ही लगती है। इस प्रकार दहेज और टीकाभेंट के पीछे भी श्रीकृष्ण की दीर्घ-दृष्टि काम कर रही थी। पाण्डवों को अब राजा होना था अतः उन्हें बलिष्ठ शत्रुओं के साथ टक्कर लेनी थी। प्रचंड शक्ति के साथ उनको मुकाबला करना था। इसके लिये पाण्डव सभी प्रकार से शक्तिशाली बनें, यह आवश्यक था। किसी भी राजा, राज्य या देश की असली शक्ति का आधार उसकी आर्थिक शक्ति पर निर्भर करती है। धन की दृष्टि से यदि शक्तिशाली न हो, तो ऐसा राज्य दूसरी शक्तियों के वावजूद टिक नहीं सकता। पाण्डव निर्धन थे; उनको धनकी आवश्यकता थी और श्रीकृष्ण ने टीके के रूप में करोडों रुपया देकर इन की इस कठिनाई को दूर किया। टीके के पीछे असली हेतु यही है परन्तु आज तो यदि एक रुपये से काम चल जाय तो हम दो रुपये की भेंट नहीं देते।

राजा के पास वैभव होना ही चाहिये। श्रीकृष्ण की टीका का कारण पाण्डवों को भोग–विलासी बनाना न था। और न अपनी लीला बताना या औदर्य प्रदार्शन हीं था। राज्य और अर्थ के सम्बन्ध में चाणक्य ने सत्य ही कहा है, **'अर्थ एव प्रधानम्'**– कोई दिवालिया सरकार क्या कर सकती है? वह न सुखी हो सकती है और न टिक सकती है। न ऐसी सरकार के अन्तर्गत प्रजाजन सुख से रह सकते हैं। भगवान कौटिल्य ने भी यह बात कही है। कौटिल्य के अथशास्त्र की जोड़ी अन्यत्र जगतमें नहीं मिल सकती, परन्तु हमको तो विदेशी ग्रन्थों में से राजनीति और अर्थशास्त्र (Politics and Economics) का ज्ञान प्राप्त करना होता है। हमारे पास जो अमूल्य रत्न पड़े हैं उनकी तो हमको तनिक भी आवश्यक़ता नहीं। कौटिल्य कहते हैं–

पुरुषभोगं वा हिरण्यभोगं वा मित्रम्" –इसालिये किसीभी बुद्धिमान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राजा को अपने राज्य की आर्थिक शक्ति का ही सर्वप्रथम ध्यान रखना चाहिये। बुद्धिमान राजा किसी ऐसे राजा की अपेक्षा, जिसके पास बहुत सैनिक और फौज़ी शक्ति हो, किसी ऐसे राजा के साथ मित्रता करेगा, जिसके पास सम्पत्ति विशेष है। क्योंकि स्वर्णभोग करनेवाले को सबकुछ मिल जाता है। सैन्य की आवश्यकता तो युद्धकालमें ही होती है। और धन हो तो युद्ध में भी आवश्यकता पड़नेपर सैन्य शक्ति मिल जाती है।

भारतवर्ष क प्रथम विभाजन का स्वीकार

धृतराष्ट्र दुष्ट पुरुष था; भगवान को उसके पुत्रों को देखते ही अनंत विचार आने लगे। उन्होंने देखा कि यदि अब कौरवों को टिकना है तो वे पाण्डवों की उपेक्षा नहीं कर सकते, क्योंकि पाण्डवों के पीछे दूसरी सत्तायें थीं। शंका केवल एक ही थी कि यदि वे पाण्डवों की उन्नति के संकेत को पढ़कर युधिष्ठिर को युवराज बनावें तो युधिष्ठिर उनके दबाव में आजायेगा और धर्मराज्य स्थापित करने का उनका उद्देश्य–स्वप्न सिद्ध नहीं होगा। बल्कि धृतराष्ट्र का दबाव बना रहेगा और उस कपटी बूढ़े को पन्द्रह वर्ष तक कुछ आँच नहीं आयेगी। धृतराष्ट्र ने दाँव भी अच्छा खेला। खलपुरुषों के दिखाने के दाँत और होते हैं तथा खाने के और होते हैं। इन लोगों का दिखाने का व्यवहार भिन्न होता है। मन में चाहे जितना भी विष भरा हो, परन्तु बाहर से तो ऐसा प्रेम प्रदर्शित करते हैं कि बात न पूछो। प्रभावशाली, राजनीति के परामर्शदाताओं, राजनीतिज्ञों की गति ऐसी ही होती है। नीति से, न्याय से समस्त राज्य धर्मराज को सौंपने के लिये भीष्म द्रोणादि धृतराष्ट्र से कहते हैं, तब धृतराष्ट्र मार्ग ढूँढता है और–

'सर्वनाशे समुत्पन्ने ह्यर्धं त्यजति पण्डित:'। इस न्याय के अनुसार सभी सभा में एकत्रित बैठे तब धृतराष्ट्र ने सोचा कि सम्पूर्ण राज्य गँवाने का प्रसंग आये, इसकी अपेक्षा थोड़ा देकर पाण्डवों को मना लेना क्या बुरा है! ऐसा विचार कर उसने वणिकनीति का प्रयोग किया।

धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को प्रेम से बुलाकर कहा (राजनीतिज्ञों में कभी–कभी प्रेम का ज्वार आता है परन्तु वह बाध्यता से होता है। आज कल हम समाचार–पत्रों में देखते हैं न!)– "मेरे लिये तो कौरव और पाण्डव दोनों समान हैं, परन्तु मेरे पुत्रों के साथ तुम्हारी बनेगी नहीं, इसलिये दोनों स्वेच्छा से विभक्त हो जाओ, तो यही उत्तम है।" उसने राज्य के विभाजन का निश्चय किया। पाण्डवों ने अपने राजनतिक सलाहकार की सलाह माँगी। रातभर चर्चा चली और श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को सलाह दी कि जो कुछ मिले उसे तुरन्त स्वीकार कर लो।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तुमको जो कुछ मिलेगा, उसका निर्माण या पुनर्निर्माण (Construction or Reconstruction) करना पड़े तो घबराना मत; थोडा पर स्वतंत्र हिस्सा अच्छा है। थोडे को अधिक और समृद्ध बनाना अपने हाथ की बात है। धर्मराज को उन्होंने समझाया "यदि तुम स्वतंत्र रहोगे तो जो चाहे कर सकोगे, धृतराष्ट्र के दबाव के नीचे शक्य नहीं।"

कौरव-पाण्डवों के पृथक्पृथक दो राज्यों का सृजन हुआ। श्रीकृष्ण ने नवीन राज्य का नियोजन कर दिया। नियोजन में तो वे निष्णात थे ही। बहुत से नियम भी दिये। धृतराष्ट्र का नैतिकबल पाण्डवों की प्रगति को रोकनेवाला था तथा पाण्डव स्वतंत्र रूप से ही जगत को सुधारने के लिये, धर्मराज्य की प्रस्थापना करने के लिये कुछ कर सकते हैं; ऐसा श्रीकृष्ण मानते थे। इस प्रकार पाण्डवों को थोड़े से प्रदेश का सत्ताधीश बनकर 'जिस प्रकार से जगत को सुधारना हो, उस प्रकार से सुधारो'-- कहकर श्रीकृष्ण द्वारिका वापस लौटे।

द्वारिका पहुँचने के पश्चात श्रीकृष्ण को एक दूसरा विचार आया। यादव सत्ता अनिश्चित और अस्थिर स्तम्भ पर अस्तित्व धारण किये हुये थी। लोकमत कहाँ जायेगा यह कैसे कहा जा सकता है? इसलिये यदि पाण्डवों के साथ यादवों का कौटुम्बिक सम्बन्ध जुड़ जाय तो दो सत्तायें एक हो जायँ, ये दो शक्तियाँ एक हो जायँ तो इससे बड़कर आनंद की बात दूसरी क्या हो सकती है? जगत के सुधार के लिये इन दो शक्तियों का सम्मेलन कल्याणकारी सिद्ध होगा। वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा अंधक और वृष्णिकुल तथा पाण्डवों का स्थिर सरल सम्बन्ध स्थापित हो ऐसा श्रीकृष्ण चाहते थे।

सुभद्रा द्वारा यादव-पाण्डव संधान

इस अवसर पर एक प्रसंगोचित घटना (Coincidence) घटी है। वचनभंग के प्रायश्चित स्वरूप अर्जुन तीर्थयात्रा के लिये निकला और घूमत घामता द्वारिका पहुँचा। द्वारिका में वह राज्यातिथि बना। श्रीकृष्ण ने अर्जुन का राज्यातिथि के रूप में समुचित स्वागत किया। नर-नारायण दोनों अवकाश के अवसरपर रैवतक पर्वत के ऊपर भावी योजनाओं का विचार करते रहते है। बड़े लोगों की गप्प भी बड़ी ही होती है। उनकी प्रवृत्ति निरर्थक होती ही नहीं; और उसमें भी राजनीतिज्ञों की। एक दिवस घूमते घामते देवी यात्रा के मेले में श्रीकृष्ण अर्जुन को ले गया। वहाँ ये दोनों स्त्री समुदाय के निकटसे गुजर रहे थे। उस समय पार्थ की दृष्टि इस समुदाय में सब से भिन्न नजर आती रूप के भण्डार के समान एक द्युतिमान दामिनीसी लावण्यमयी युवती पर पड़ी। स्वलावण्य से विद्युत के समान चमकती इस युवती को देखते ही अर्जुन की दृष्टी परिवर्तित हो गयी। मन में विशिष्ट

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भावों का अविर्भाव हुआ, परिणाम स्वरूप उसकी आँख के भाव बदल गये श्रीकृष्ण से ये भाव किस प्रकार छिप सकते थे? यद्यपि भावों को दबाने का पूर्ण प्रयत्न अर्जुन ने किया। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के परिवर्तित भावों को पढ़ लिया और कहा, 'अबे, तू सन्यासी बनकर तीर्थयात्रा के लिये निकला है, तब एक स्त्री को देखकर मन में ऐसे विचार लाना अच्छा नहीं कहा जाता।" अर्जुन तो यह सुनकर बहुत झेंप गया, लज्जित हो गया। मुँह के भावों से परीक्षा करने की श्रीकृष्ण की शक्ति कितनी अद्भुत रही होगी। परन्तु कृष्ण तो स्पष्टवक्ता थे। उन्होंने अर्जुन सें कहा, "डर मत, तेरा विचार क्या है यह कह न! क्या शादी करनी है? यह स्वर्गसुन्दरी युवती मेरी ही बहिन है। उसका नाम सुभद्रा है। अतः उसके कुल, सौन्दर्य या सम्पत्ति के सम्बन्ध में तो तेरे लिये विचार करने जैसा कुछ नहीं है, वह सौन्दर्य की खान है। सौन्दर्य हमारे कुल की पैतृक सम्पत्ति है।"

श्रीकृष्ण ने सीधा प्रश्न किया, 'क्या सचमुच तेरा विचार उसके साथ विवाह करने का है? तुझे मेरी बहिन चाहिये?' ऐसे सीधे प्रश्न और इस अपनत्व को सुनकर तो अर्जुन मस्तक नहीं उठा सकता था। वह बहुत ही लज्जित हो गया। उसका शरीर प्रकम्पित होने लगा, कुछ बोल नहीं सका। परन्तु कुछ देर तक श्रीकृष्ण को स्पष्टवक्तव्य का विचार कर नम्रभाव से, नतमस्तक होकर धीमी आवाज़ मे अर्जुन ने कहा "प्रभु! मुझे इतना ही चाहिये ऐसा तो मैं कैसे कह सकता हूँ? परन्तु मेरा ऐसा सद्भाग्य कहाँ कि ऐसी पत्नी मिले। ऐसी लावण्यवती, वसुदेव जी की सुपुत्री और आपकी बहिन यदि मेरे घर आये, तो मेरा घर पावन हो जाय! यदुकुल के साथ सम्बन्ध जोड़ना किसे नहीं रुचेगा? इस सम्बन्ध से अवश्य हमारा उद्धार होगा। मैं श्रीकृष्ण ने कहा " अधिक बुद्धिमानी की बातें जाने दो। शादी करनी हो तो जैसा " कहूँ वैसा कर। क्षत्रिय-कन्या की शादी दो प्रकार से होती है- या तो स्वयम्बर से या तो अपहरण से। इसलिये स्वयम्बर में स्त्री-मत का विश्वास नहीं किया जा सकता। इसलिये स्वयम्बर में सुभद्रा अर्जुन के गले में ही माल्यार्पण करेगी ऐसा कोई विश्वास नहीं दिलाया जा सकता।

दूसरी बात यह थी कि बलराम सुभद्रा का हाथ दुर्योधन के हाथ में सौंपना चाहते थे। यह श्रीकृष्ण को पसन्द न था। सांस्कृतिक विचार की दीर्घदृष्टि होने से वे तो सुभद्रा का हाथ अर्जुन को ही सौंपना चाहते थे। इसलिये उन्होंने अर्जुन को यह सभी पूर्वभूमिका समझाकर सुभद्रा के अपहरण की सम्मति प्रदान की और अर्जुन सुभद्रा का अपहरण कर गया। यहाँ यह देखना है कि श्रीकृष्ण को पाण्डवों के साथ सम्बन्ध स्थापित करना था इसलिये उन्होंने यह युक्ति बतायी।

अर्जुन ने सुभद्रा का अपहरण कर लिया है यह सुनकर यादवों के क्रोध की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu .

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सीमा न रही। यादवसेना क्रोधित हो गयी। बलराम तो क्रोध से लाल–पीले हो गये। वे कहने लगे, 'यह तो दूध पिलाकर साँप पालने जैसा हुआ। हमारी ही सहायता से इतने ऊँचे आये और हमारे ही साथ इतना धोखा ! पाण्डवों, तुम न्यायी और नीतिमान कैसे ? अरे दुष्टों, तुम्हारी मति क्यों भ्रष्ट हुयी ?' बलराम तो अर्जुन को मारने के लिये समस्त सेना को लेकर तैयार हो गये। उस समय श्रीकृष्ण के पेट का पानी भी नहीं हिलता था। उनके मुख पर उसी शान्ति और स्वस्थता को देखकर प्रत्येक को आश्चर्य लगता है हरेक उनसे कहने लगा, 'अर्जुन तुम्हारी सगी बहन को भगाकर ले गया और तुमको तनिक भी क्रोध नहीं आता; चिढ़ नहीं आती ?'

श्रीकृष्ण ने स्वस्थता से शाँतचित्त होकर गम्भीर स्वर में उत्तर दिया, 'तुम्हारी बात है तो बिलकुल सत्य, अर्जुन ने काम तो ऐसा ही किया है जिससे क्रोध आवे, परन्तु हम यदि तनिक गम्भीरता से विचार करो तो जो हुआ है, उसमें अयोग्य–बुरा कुछ भी नहीं। पुरुवंश जैसे उच्च और अलौकिक वंश के साथ यादवों का कौटुम्बिक सम्बन्ध बँधे, उसमें बुरा क्या है ? वास्तव में तो यह बहुत उत्तम बात है। इस वंश के पराक्रम की यश गाथा तो जगत प्रसिद्ध है। अर्जुन भी वैसा ही है। अर्जुन जैसे पराक्रमी को ही कन्या देनी चाहिये, मैं तो ऐसा मानता हूँ। हाँ, अर्जुन की इतनी भूल अवश्य है कि नियमानुसार माँगनी करने की अपेक्षा वह सुभद्रा को भगा ले गया। परन्तु क्षत्रिय के लिये यह नई बात नहीं। वीरपुरुष इच्छित वस्तु की याचना नहीं करता उसे पा ही लेता है। यह अर्जुन के वीरत्व का स्वाभिमान है। पराक्रमी हाथ नहीं फैलाते। इसलिये सत्य पूछो तो मेरा तो अर्जुन के प्रति प्रेम बढ़ गया है।

श्रीकृष्ण के इस अलौकिक वक्तृत्व का परिणाम तो देखिये। वक्ता इसका नाम। श्रीकृष्ण की इस धीर–गम्भीर वाणी को सुनकर उत्तेजित हुये यादव शांत हो गये। सभी श्रीकृष्ण की वाणी के हिम--प्रवाह में ठण्डे ही हो गये। श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व ही कुछ ऐसा था। परिणामस्वरूप युद्ध के स्थानपर विवाह की तैयारी होने लगी। आश्चर्य की बात तो यह है कि धर्मराज युधिष्ठिर की सम्मति लेने के लिए बलराम स्वयं ही इन्द्रप्रस्थ जाते हैं। धूमधाम से अर्जुन--सुभद्रा का विवाह हुआ। पाण्डवों और यादवों के मध्य वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हुआ। यादवों ने दहेज में सुभद्रा को करोडों की सम्पत्ति प्रदान की। इस वर्णन को पढ़ें तो चकित हो जायँ। पाण्डव धर्मराज्य स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे थे और राज्य की पुनर्रचना के लिये इनको द्रव्य की आवश्यकता थी। श्रीकृष्ण इस बात को यथोचित रूप से जानते थे और इसीलिये भेंटके रूप में पाण्डवों को 'सांस्कृतिक संम्वर्धन' हेतु पुनः पुष्कल धन सम्पत्ति प्रदान की।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धर्मसंस्थापन का घोष

बात यहीं से रुक जाय तो काम कैसे चले ? पाण्डव शांत बैठे रहे तो श्रीकृष्ण का स्वप्न कैसे सिद्ध हो ? और एक नवीन अध्यायका प्रारम्भ हुआ नारदजी ने धर्मराज को राजसू यज्ञ करने की सम्मति प्रदान की। नारदजी ने कहा, " आप जैसों को तो राजसूय-यज्ञ करना ही चाहिये। आपके सभी भाई बलवान हैं; और राजसूय यज्ञ किये बिना राजा, ' राजा ' नहीं कहलाता '।

धर्मराज तो श्रीकृष्ण को पूछे बिना पानी भी न पियें। इसलिये कहते हैं ' भक्त शिरोमणि ! आपकी बात सत्य है, परन्तु श्रीकृष्ण की अनुमति के बिना कैसे हो ? ' फिर सलाह और सम्मति के लिये श्रीकृष्ण को बुलाया गया। श्रीकृष्ण ने कहा, ' यह विचार तो अति सुंदर है। तुमको अनीतिमान तंत्र को नष्टकर नीतिमान तंत्र की स्थापना करनी है। धर्मराज्य की स्थापना के लिये इससे उपयुक्त अवसर दूसरा नहीं हो सकता, परन्तु यह काम सरल नहीं। कुछ पांच पचास ब्राह्मणों को भोजन व दक्षणा देकर या यज्ञाग्नि में घी होम देने से यह कार्य पूर्ण होनेवाला नहीं। बल्कि प्रचण्ड शक्तिशाली राजाओं का सामना करना पड़ेगा। हम आक्रमक न होकर उन्हें यह कहेंगे कि या तो धर्मराज की सत्ता स्वीकार करो अथवा संग्राम के लिये मैदान में उतर पड़ो। ऐसे संयोगों में जरासंध जैसे बलवान के साथ भी टक्कर लेनी पड़ेगी। इस प्रकार अनैतिक सत्ता के संघ को तोड़ने के लिये यह एकमेव सरल उपाय है। ' यह कहकर कृष्ण ने अपनी सम्मति दी कैसी राजनैतिक निपुणता ! ऐसा सुनकर युधिष्ठिर ठंडे पड़ गये। युद्ध करने का यह साहस तो पाण्डवों को मँहगा पड़ेगा, ऐसा भय व्यक्त कर उन्होंने तो कह दिया, ' निरर्थक युद्ध किसलिये करें ? न लड़ना ही अधिक उत्तम है। ' वैयक्तिक जयाजय पर मन केन्द्रित होने से धर्मराज, जरासंध का नाम सुनकर ऐसा शब्दोच्चार करते हों, परन्तु युधिष्ठिर ठंडे पड़ जायें - यह श्रीकृष्ण को कैसे रुचे ? उनकी दृष्टि तो जगत के कल्याण पर केंन्द्रित थी। संस्कृति के सृष्टा, भावि के, उज्वल अरुणोदय देख रहे थे। उन्होंने विचार किया यदि पाण्डव इतना साहस प्रदर्शित न करें तो धर्मराज्य की स्थापना किस प्रकार हो ?

प्रथम निशान - जरासंध

श्रीकृष्ण ने धर्मराज से कहा, ' जरासंध या उसके समान दूसरे बलवान राजाओं से घबड़ाने का कोई कारण नहीं। लडना पड़ेगा, ऐसा सुनकर कायर क्यो बनते हो ? क्षत्रिय हो न ? जरासंध की सैनिकशक्ति प्रबल है; उसके पास विशाल सेना है यह बात तो सत्य हैं, परन्तु उसकी यह सेना है, भाड़े की। गणराज्य के समान इनके सैनिक लोग निष्ठावान नहीं। इन सैनिकों का हेतु मात्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदर-गुहा को भरना ही होता है। ऊपर की सत्ता का प्रमुख कहता है, इसलिये लड़ते हैं। इनको व्यक्तिगत राग-द्वेष नहीं होता, इसलिये कर्ता-धर्ता तो जरासंध है। और हमारी भी सैनिकों के साथ कोई शत्रुता नहीं। हमें सैनिकों के साथ लड़ना भी नहीं चाहिये। हमको तो जरासंध के साथ ही लड़नी है। सेना के साथ आक्रमण करनेवाले जरासंध का तो यादवों ने सत्रह बार सामना किया, परन्तु जरासंध हाथ में नहीं आया! इसलिये इस समय हमको जरासंध के साथ ही द्वन्द-युद्ध करना है। उसपर सीधा आक्रमण करना है। जरासंध को मारने का यही एक मार्ग है। जरासंध के साथ अठारहबार के युद्ध करने के बाद अन्त में मैं इस निर्णय पर आया हूँ।'

युधिष्ठिर की चेतना को जाग्रत करनेके लिये इतने शब्द पर्याप्त थे। पाण्डवों ने राजसूय-यज्ञ करने का निर्णय लिया।

राजनीति-अर्थात् जगत के कुछ राजनीतिज्ञों की महत्त्वाकांक्षा-सनक, जगत के बड़े भाग को युद्ध में झुलसा देनेवाले ये सत्तालोलुप ही होते हैं। ये लोग योजनायें गढ़ते हैं, षड़यंत्र रचते हैं। और मरते हैं बेचारे सैनिक। द्वितीय विश्व महायुद्ध में भारत को कुछ लेना देना नहीं था। उनका जापानियों के साथ कुछ द्वेष थोड़े ही था। उन्होंने भारतीयों का क्या बिगाड़ा था? परन्तु फिर भी भारतीय सैनिकों को जापान में जाकर लड़ना पड़ा। पाँच-पच्चीस राजनीतिज्ञों (Politicians) की सनक अथवा दस-पाँच रुपये-पैसे के व्यापर के स्वार्थी नर राक्षस ही ऐसे हज़ारों प्राणों की बलि लेते हैं। ये लोग तो आनंद से बंगले में बैठकर मौज मारते रहते हैं। सैनिकों को कुछ झगड़े की तो पड़ी नहीं होती। वे तो भोजन और वेतन देखकर ही सेना में भर्ती होते है।

राजसूय-यज्ञ के संकल्प लेने के पश्चात श्रीकृष्ण पाण्डवों से सब से पहला काम नराधमों के प्रमुख जरासंध को वध करने का कराते हैं। एक दिवस मानवता के तीनों उपासक-श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीम जरासंध के पाटनगर में ब्राह्मणों का वेश धारणकर, पिछले द्वारसे प्रवेश किया और आपत्तिकाल में बजाने के लिये राज्य में कुछ धमाल हो तो पांच-पच्चीस से अधिक को सूचना न मिले। उस युग में ऐसे नगाड़े राजा और प्रजा के बीच (Telephone connection) दूरभाष सम्पर्क का कार्य सम्पादन करते थे।

जरासंध काकबलि लेकर आ रहा था, उससमय वहाँ ये ब्राह्मण आये इन तीनों को देखकर वह हैरान हो गया। अनिच्छा से भी उनका स्वागत करना पड़ा उनके आगमन का कारण पूछकर परिचय देने के लिये कहा

जरासंध का वध

श्रीकृष्ण ने कहा, हम यात्रा के लिये निकले हैं, मेरे दोनों साथी मौनव्रत का पालन करते हैं। रात के बारह बजे के पश्चात् ही बोलते हैं, इसलिये जो बात करनी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हो मेरे साथ की जाय। बातचीतकर उसने इनको निवास--स्थान प्रदान किया। इस बीच जरासंध के गुप्तचरों ने सूचना दी कि "जो तीन ब्राह्मण आज आये हैं उन्होंने नगाडे तोड डाले हैं। दाल में कुछ काला प्रतीत होता है।" जरासंध ब्राह्मणों के निवासस्थान पर गया और कड़ककर बोला, 'तुम पाखंडी हो, झूठे हो, ढोंगी हो। तुम न तो तपस्वी हो और न ब्राह्मण। तुम क्षत्रिय हो, तुमने ऐसा असत्य किसलिये कहा?' वह श्रीकृष्ण पर ऐसा मिथ्या आरोप करने लगा तब श्रीकृष्ण ने कहा, "भई, हमने तो सत्य ही कहा है परन्तु तू समझ न सका इसमें हमारा क्या दोष! और इतना भी नहीं समझ सकता तो राज्य किसलिये करता है! ब्राह्मण अपना कार्य बोलकर करता है, क्षत्रिय हाथ से कर दिखाता है। मेरे साथियों ने तेरे नगाड़ों को तोडकर ही, 'हम, क्षत्रिय हैं – ऐसा स्पष्ट कर दिया था। तू समझ न सका इसमें कोई क्या करे! तू निर्बुद्ध है!" चिढ़कर जरासंध ने कहा, "परन्तु तुम इस प्रकार क्यों आये!" श्रीकृष्ण ने दृढ़ता से उत्तर दिया – 'तेरा वध करने के लिये। तू अधर्मी, दम्भी बगुलाभक्त है, भले ही पंच-महायज्ञ करता हो। यह सब ढोंग है, नाटक है। तेरा दुष्ट इरादा मैं जानता हूँ। संपत्ति के बल से और सत्ता के लोभ से तुझे नरमेध यज्ञ करना है, उसके लिये छयासी (८६) राजाओं को तूने कारावास में बन्द किया है। ऐसे पाशवी कृत्य की करने की इच्छा रखनेवाले मानव को धार्मिक कौन कहेगा! मैं कृष्ण हूँ, मेरे साथ भीम और अर्जुन हैं। युद्ध के मैदान में तो कायर तू भाग जाता है, इसलिये इस समय तेरे साथ द्वन्द्व–युद्ध करने के लिये ये दोनों महारथी यहाँ आये हैं। तेरी शक्ति हो तो लडने के लिये तैयार हो जा।"

जरासंध भी कोई कम न था! वह तनिक सी धम की से भयभीत होने वाला न था, उसके मन से तो ये सब मच्छर थे। उसने द्वन्द्व–युद्ध का आह्वान स्वीकार कर लिया। इसके पश्चात् भीम–जरासंध के मध्य जो भीषण युद्ध हुआ, वह अद्वितीय था। लडत लडते जरासंध थका तब श्रीकृष्ण के मार्गदर्शन के प्रताप से भीमसेन ने युक्तिपूर्वक जरासंध का वध किया।

धर्मराज्य के श्रीगणेश

श्रीकृष्ण का जरासंध के प्रति विरोध उसके अनैतिक व्यक्तित्व के कारण था। उसके पुत्र या सैनिकों के प्रति इनके मन में तनिक भी दुर्भावना न थी। जरासंध का वध करने के पश्चात् उसका राज्य हडप लेने की अपेक्षा उसके पुत्र को राजसिंहासन पर बैठाया और स्वयं राज्य न लेकर उसके पुत्रको सौंप श्रीकृष्ण ने भारतीय संस्कृति की महत्ता अपने आचरण से प्रदर्शित की। जरासंध के बन्दीगृह में बन्द छयासी राजाओं को मुक्ति प्रदान की। बदले में जरासंध के पुत्र और छयासी राजाओं से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धर्मराज्य स्थापना के कार्य में साथ देने किसी पर आक्रमण न करने, प्रजा को सुख – चैन से रखने और नीतिमय जीवन बिताने का आश्वासन श्रीकृष्ण ने प्राप्त किया। इस प्रकार पाँडवों की शक्ति अनेक गुनी बढ़ गयी। जरासंध जैसे बलिष्ठ शत्रु का विनाश हुआ और ८७ राजाओं का इनको अन्त तक साथ मिला। एक को मार डालने से, एक दुष्ट का संहार करने से इतना लाभ हुआ कि श्रीकृष्ण के नेतृत्व में पाण्डवोंने बिना रक्त की एक भी बूँद बहाये पृथ्वी के ३/४ भाग में धर्मराज्य की नींव रखी। वह भाग धर्मसत्ता के पीछे आकर खडा रहा। श्रीकृष्ण अर्थात् धर्मसत्ता।

शिशुपाल का शिरच्छेद

जरासंध का वध होने पर अन्य राजाओं का पाण्डवों के साथ लडने का साहस न रहा। इसलिये जहाँ जहाँ पाण्डव गये, प्रत्येक बिना लड़े ही कर चुका कर राजसूय–यज्ञ में उपस्थित हुआ। श्रीकृष्ण ने धर्मराज युधिष्ठिर को सम्राट के रूप में अधिष्ठित किया। इस अपूर्व विजय की प्रसन्नता में श्रीकृष्ण ने पाञ्चाजन्य शंख फूँका और पाण्डवों का विजय–घोष दिगन्त में गूँजा रहा। श्रीकृष्ण की पुकार लग गयी इसलिये दूसरे क्या करें, सिंह के सामने शृगालों की क्या सामर्थ्य ? इस प्रकार देशविदेश के राजाओं की उपस्थिति में जागति धर्मसत्ता के प्रमुख धर्मराज युधिष्ठिर को पाञ्चजन्य के जल से आनन्दाश्रु के साथ श्रीकृष्ण ने अभिषिक्त किया।

जरासंध के पश्चात् धर्मराज्य के लिए यदि कोई दूसरा भय था, तो वह शिशुपाल। उसने धर्मराज का आधिपत्य स्वीकारने से इन्कार कर दिया और घोषित किया कि उसने मात्र धार्मिक महोत्सव मानकर यज्ञ में भाग लिया है धर्मराज को पराक्रम के लिये नहीं वरन् धर्मनिष्ठा के लिये उसने माना है। पाण्डवों के मार्ग की इस बाधा का भगवान ने भरी सभा में शिरच्छेद कर अन्त कर डाला। इसके पश्चात् धर्मराज्य का सूत्र धर्मराज युधिष्ठिर के हाथों में सौंपकर भगवान श्रीकृष्ण द्वारिका चले गये। शिशुपाल के वध द्वारा श्रीकृष्णने नैतिकता की महत्ता का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया और इस घटना ने जनता की नैतिकता को उठाने में बहुत महत्व-पूर्ण भाग लिया। यदि लोग राज्य की पोल को जान जायें और उसके सुदृढ़ आधार के सम्बन्ध में लोगों का विश्वास डगमगा जाय, तो लोगों को-धर्म का भय न रहे, धर्म के पालन की आवश्यकता न रहे। इसलिये धर्मराज को सिखाते हैं, राजसत्ता न्यायी, साथ ही सामर्थ्यवान होनी चाहिये। उसमें यदि कमी होगी तो लोग नीति का पालन नहीं करेंगे।

श्रीकृष्ण तो इस प्रकार धार्मिक सत्ता की स्थापना कर अपने रास्ते गये और इस राज्य का आधार सुदृढ़ करने का भगीरथ प्रयत्न पाण्डवों ने सुरू किया। पाण्डवों पर धर्मराज ने चारों ओर धर्म की पताका लहराई। लोगों की आजीविका और व्यवसाय की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चिन्ता दूर हुयी; सब को धर्म का सरक्षण मिला। ज्ञान और संस्कार का सिंचन हुआ और प्रजा में सात्विकता बढ़ने लगी।

कल्याणराज्य

धर्मराज धर्मका मूर्तिमंत स्वरूप थे; भौतिक सत्ता से प्रजापालन करते थे। आजीविका मिलने के साथ प्रजा को विनयप्रधान साँस्क्रातिक शिक्षण भी प्राप्त हो इस पर जोर देते थे। जब तक साँस्क्रातिक शिक्षण हृदय और प्रेम से न हो तब तक प्रजा का उत्कर्ष संभव नहीं। साँस्कृतिक शिक्षण मिले तभी सँस्कार और नीति का मूल्य समझ में आता है। परिणामस्वरूप जीवन में सात्त्विकता आती है और समाज सात्विकों की कीमत करता है। लोग जिस समय सम्पति को सर्वस्व मानने लगते हैं, तभी समाज का अधःपतन होता है। 'हम तमोगुणी हो इसकी कोई चिन्ता नहीं पास में पैसा चाहिये, क्योंकि समाज वैभव-सम्पन्न तमोगुणी को भी मान देता है' ऐसी भावना पाशवीवृत्ति है। समाज इन लोगों को प्रोत्साहन देता है अतः समाज में 'असुर' बढ़ते हैं। ऐसी वृत्तिवाली जनता दारिद्र और कायर बन जाती है। इसके विपरीत यदि सात्विक भी दरिद्र हो, फिर भी मान मिले, तो लोग देव-तुल्य हो जाते हैं। उस समय लोगों की बढ़ती हुयी न्यायप्रियता और सात्विकता का प्रमाण देनेवाला एक दृष्टान्त हम देखें।

तेजस्वी मानवजीवन

एक ब्राह्मण को दान में हल और भूमि मिली। वह खेती करता था तब उसे एक जगह से भूमि में द्रव्य से भरा हुआ एक चरु (देग) मिला। तुरन्त ही ब्राह्मण द्रव्य-पात्र लेकर दानवीर के यहाँ पहुँचा और उसके सामने उसे रखता हुआ बोला, 'यह चरु आपका है।' दानवीर ने कहा, "नहीं, अब यह घन तुम्हारा हुआ। मैंने तो भूमि तुमको 'कृष्णार्पण' करके दी थी। इसलिये अब इसके अधिकारी तुम ही हो।" ब्राह्मण ने कहा, आपने मुझे भूमि दी है, यह चरु नहीं। चरु तो आपका गिना जायेगा।' यह मामला पहुँचा महाराजा युधिष्ठिर के पास और उनका निर्णय दोनों ने स्वीकार किया। इसप्रकार नीति व न्याय से प्राप्त सम्पत्ति का स्वीकार करना चाहिये, यह भावना धर्मराज ने निर्माण की थी। सचमुच, कितनी अद्‌भुत नैतिकता! कहाँ आज की बीसवीं सदी के ब्राह्मण और कहाँ यह धर्मराज के समय का त्यागी ब्राह्मण। आज तो न ऐसे दानदाता रहे, न ऐसे दानार्थी। जमीन तो क्या, दो रुपये का दान करना हो तो आठ दिन तक विचार विमर्श चलता है और ब्राह्मण तो योग्य-अयोग्य रीति से जो मिला उसे थैले में डालता है। उस समय लोग पैसे के लिये मानवाता को नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

छोडते थे। पैसे के लिये अनीतिमय और बेईमानी पूर्ण कृत्य नहीं करते थे।

इस प्रकार युधिष्ठिर के नेतृत्व में धर्मसत्ता का उदय हुआ और चारों ओर सुख–शान्ति का साम्राज्य स्थापित हुआ। परन्तु भगवान श्रीकृष्ण का दुर्भाग्य था कि यह धार्मिक सत्ता अधिक सामय तक टिकी नहीं। भोग–लम्पट, विलासी और दुष्ट राजाओं ने युधिष्ठिर का आधिपत्य स्वीकार किया था मात्र लाचारी से उन लोगों का परिवर्तन नहीं हुआ था। पाण्डवों की बढ़ती हुयी शक्ति के सामने टक्कर झेलने की शक्ति न होने से इन राजाओं ने धर्मराज का आधिपत्य स्वीकार किया था। जो निर्बल राजा थे वे दबे हुये थे; निःशेष न हुये थे। श्रीकृष्ण इस बात को जानते न थे ऐसा नहीं। द्वारिका जाने से पूर्व वेदव्यास व श्रीकृष्ण ने धर्मराज को चेतावनी भी दी थी– 'नवीन धर्मसत्ता के केन्द्र तुम्ही हो। इसलिये सबसे अधिक सतर्क (Alert) तुम्हें रहना है। अनैतिक शक्तियाँ कब फुँफकार उठें, कहा नहीं जा सकता अतः तुम सदैव अप्रमत्त दान्त और सजग रहना।''

जुआ – धर्मराज की महान भूल

परन्तु भावि मिथ्या नहीं होती। धर्मराज अर्थात गुणों का आगार; धैर्य, पराक्रम की जीवन्त मूर्ति, अप्रतिम बुद्धिमत्ता। परन्तु अनेक सद्‌गुणों के साथ कुछ अवगुण भी थे और उनमें मुख्य था द्यूतक्रिडा का शौक। वे द्यूतक्रीडा में प्रवीण नहीं थे। परन्तु खेलने का शौक अधिक था। उनकी इस दुर्बलता ने उन्हें प्रपंची राजाओं और खल पुरुषों के प्रपंच–जाल में फँसा दिया।

कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में कहा है– '**अधर्मसंयुक्तमनर्थकारकं व्यवहारं न करायेत्** दुर्दैव की गति ऐसी कि ऐसा धार्मिक साम्राज्य खडा करने पर भी उसके साधन रूप अलौकिक धर्मनीति, उदारता आदि गुणोंवाले धर्मराज पर उनके दोषों ने ही प्रहार किया और सम्पूर्ण धर्मराज्य समाप्त हो गया! प्रपंच के आधीन हुये धर्मराज ने जुआ खेला।

जो कार्य करने से राज्य की सुरक्षा को खतरे हो, वैसा कृत्य राजा को करना नहीं चाहिये। द्यूत अधार्मिक हो न हो परन्तु अनर्थकारक तो अवश्य था। 'शकुनि एण्ड कम्पनी' को इस बात का विश्वास हो गया था कि नीति के मार्ग से धर्मराज को किसी प्रकार पराजित नहीं किया जा सकता, इसलिये उन लोगों ने प्रपंच रचा। शत्रु की दुर्बलता का लाभ उठाना खलपुरुषों को अच्छी तरह से आता है। शकुनि और धृतराष्ट्र धर्मराज की दुर्बलता को जानते थे और इसीलिये उन्होंने इनको जुआ खेलने को बुलाकर सफलतापूर्वक जाल में फँसा लिया।

धर्मराज का यह वर्तन अनर्थकारी था। 'बड़े लोग, महापुरुष भूल करते हैं तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बड़ी करते हैं ' यह उसका उदाहरण है। धर्मराज ने भी अपने जीवन में एक भयंकर भूल की और इस भूल ने भगवान श्रीकृष्ण के वर्षों के पुरुषार्थ पर पानी फेर दिया।

जब भवितव्य भुलता है तब कुछ सूझता ही नहीं। कौरव यह जानते थे कि पाण्डव भगवान श्रीकृष्ण के परामर्श के बिना कोई कार्य नहीं करते। इसलिये इन लोगों ने ऐसा अवसर ढूँढा कि जब भगवान श्रीकृष्ण मथुरा को जलाने वाले, शाल्व राजा के साथ लड़ने गये हुये थे, तभी उन्होंने युधिष्ठिर को जुआ खेलने का आमंत्रण भेजा और आमंत्रण भेजने में अनोखी चतुरता थी। यह आमंत्रण धृतराष्ट्र के द्वारा भिजवाया ताकि युधिष्ठिर बडों के आमंत्रण को अस्वीकार न कर सकें।

श्रीकृष्ण का उपालम्भ

पाण्डवों के वनवास-काल में श्रीकृष्ण जब उनको मिलने गये थे तब श्रीकृष्ण ने उनको उलाहना देते हुये कहा था, " यदि उस समय मैं वहाँ होता अथवा उस निमंत्रण की मुझे सूचना होती तो मैं किसी भी परिस्थिति में तुमको वहाँ जाने नहीं देता। तुमने मुझे पूछे बिना (अब तक) कुछ भी नहीं किया और इस बात में ही मेरी सलाह नहीं ली, यही दुर्भाग्य है। मेरे सभी साँस्कृतिक स्वप्न समाप्त हुये। "

धर्मराज कौरवों के जाल में फँस गये। धर्म और जुआ का कोई साम्य हो सकता है ? फिर भी धर्मराज जुआ खेलने गये। धर्मराज जैसे प्रातः स्मरणीय व्यक्ति ने ऐसे अधर्म का आचरण किया। धर्मराज सचमुच प्रातः स्मरणीय थे **' पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः '** परन्तु वे परिपूर्ण न थे, धर्मराज का यह दोष था। हम उनका बचाव करते हुये वे कहते हैं कि जुआ खेलने गये, परन्तु ' धर्म के ' रूप में गये, लेकिन यह बात वास्तविकरूप से बुद्धि में उतरती नहीं।

धर्मशास्त्र द्यूत (जुआ) के विरुद्ध ऊँची आवाज से पुकार कर चेतावनी देते हैं। नल में भी कलि ने प्रवेश किया, तब उसने जुआ खेला है। नल राजा का विनाश जुये ने ही किया। ' धर्म ' यानी विधि निषेध वाली बात, इस लिये जुवा खेलना क्या शास्त्र में ' संध्या ' की जैसी विधि है ?

धर्म विधि निषेध रूप होना चाहिये-**' अहरहः संध्यामुपासीत ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत्।'** नित्य संध्या करनी चाहिये। ज्योतिष्टोम यज्ञ स्वर्ग की कामना करनेवालों को करना चाहिये। इसी प्रकार अमुक दिन जुआ खेलना चाहिये, ऐसा किसी स्थल में नियम नहीं इसके विपरीत ऋग्वेद में एक सम्पूर्ण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूत्र में इसका कठोर शब्दों में निषेध किया गया है। संक्षेप में जुआ खेलना धर्म नहीं है और धर्मराज का यह दोष ही था। शकुनि भी कहता था–धर्मराजद्यूतप्रिय है परन्तु उसे खेलना आता नहीं **द्यूतप्रियश्च कौन्तेयो न स जानाति देवितुम्** द्यूत अधार्मिक है इस बात को युधिष्ठिर, स्वयं जानते ही थे और महाभारत में स्वमुख से स्वीकार भी किया था। यदि ऐसा है, तो प्रश्न उठेगा कि फिर वे द्यूत–क्रीड़ा के लिये क्यों गये होंगे? इसके उत्तर में एक ही कारण जाना जा सकता है और वह पितृगौरव। विदुरजी के साथ बातचीत के दौरान युधिष्ठिर ने बताया था कि मुझे मेरे चाचा धृतराष्ट्र–मेरे गुरुजन बुलाते हैं इसलिये मैं जाता हूँ धृतराष्ट्र बड़े हैं, पूज्य हैं, वे सदा हमारा कल्याण ही करेंगे–

नाहं राज्ञो धृतराष्ट्रस्य शासनात्।
नगन्तुमिच्छामि कवे! दुरोदरम्॥
इष्टो हि पुत्रस्य पिता सदैव।
तदस्मि कर्ता विदुरस्य मां यथा॥

पितृ–गौरव का कितना अन्धा प्रयोग! परिणामतः वर्षों की तपश्चर्या और परिश्रम के पश्चात खड़ा किया गया धर्मराज्य कड़कड़ाकर टूट गया। वर्षों के अपने पुरुषार्थ पर युधिष्ठिर की एक भूल ने पानी फेर दिया। फिर भी श्रीकृष्ण के पेट का पानी तक न हिला। कितनी अलौकिक स्थितप्रज्ञता! उन्होंने इसपतन में भी कुछ शुभ समाया होगा, ऐसा माना और '**स्थितस्य गतिश्चिन्तनीया** ऐसा समझकर तनिक भी अस्वस्थ या हतोत्साहित न होकर पुनः धर्मराज्य की स्थापना के पुरुषार्थ प्रारम्भ करने के समय की स्थिति की राह देखने लगे।

युधिष्ठिर पर अलौकिक श्रद्धा

पाण्डवों के वनवास के समय सात्यकि और दूसरे राजा श्रीकृष्ण के पास गये हैं। (धर्मराज के जाने से धर्मराज्य की रीढ़ टूट गयी थी।) इन धार्मिक और न्यायी राजाओं ने श्रीकृष्ण से एकत्रित होकर, कौरवों पर आक्रमण कर, उनसे राज्य छीन लेने और राजसत्ता का सूत्र अभिमन्यु के हाथ में सौपने की बिनती की। और तर्क देते हुये कहा–"सज़ा पाण्डवों को मिली है इसलिये हम कौरवों पर आक्रमण कर सकते हैं।" पाण्डवों के वनवास के समय अभिमन्यु श्रीकृष्ण से सँस्कारी शिक्षण लेता था।

श्रीकृष्ण को राजाओं की यह बात मंजूर न थी। श्रीकृष्ण ने इन राजाओं से कहा, आपकी बात है तो ठीक, परन्तु दूसरों के जीते हुये राज्य को धर्मराज कभी स्वीकार नहीं करेंगे और धर्मराज्य का नेतृत्व कर सके, ऐसा धर्मराज

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

युधिष्ठिर के अतिरिक्त दूसरा कोई व्यक्ति मैं जगत में कहीं नहीं देखता। भले ही उन में कुछ दोष हों, धर्मराज के अतिरिक्त दूसरा कोई पुनः नीति के पुनर्जीवन और सांस्कृतिक पुनरुत्थान द्वारा धर्मराज्य की स्थापना कर नहीं सकता। इसलिये अभी यदि कौरवों को पराजित करेंगे तो ठीक नहीं होगा। और फिर दूसरे के द्वारा प्राप्त किया हुआ-मुफ्तका, क्षत्रिय स्वीकार करें ऐसी अयोग्य परम्परा डालना मैं भी नहीं चाहता। राजसत्ता भले ही गयी लेकिन लोगों के सांस्कृतिक मूल्य नहीं गये इसलिये उत्थान अवश्य होगा।

पाण्डवों का वनवासकाल

धर्मराज में कुछ दोषों के होने पर भी श्रीकृष्ण उनको छोड़ने को तैयार न थे। इसलिये उन्होंने दूसरे राजाओं का संगठन कर, कौरवोंका पराभव करने का प्रयास न कर पाण्डवों के वनवास-काल के बारह वर्ष पूर्ण होने तक राह देखनी ही पसन्द की। श्रीकृष्ण का मनोबल अनुपम था। उनका जीवन देखें तो जिसे खड़ा किया उसे अपनी आँखों के सामने ही गिरा देखते हैं। अपने ही हाथों से खड़े सिये गये धर्मराज्य का विनाश ही अपने आँखों के सामने हुआ। सर्जन और संहार (Construction destruction), दोनों स्वयं देखे। अपने ही यादव कुल का संहार अपनी आँखों के सामने ही हुआ और फिर भी वे अस्वस्थ नहीं हुये क्योंकि उनके लिए यह कठिन बात न थी।

श्रीकृष्ण ने रुको और राह देखो (Wait and See) की नीति (policy) अपनायी, और जो जगत के कल्याण के लिये जगत को सुधारने के लिये पैदा हुआ है उसके लिये बारह वर्ष कुछ भी नहीं। जगत के इतिहास में भी बारह वर्ष कुछ भी नहीं। ऐसी असह्य विपत्तियों में भी श्रीकृष्ण का उत्साह तनिक भी कम नहीं हुआ। बारह वर्ष के पश्चात इन्होंने नये सिरे से उतने ही उत्साह के साथ प्रयास आरम्भ किये। पाण्डव वन से वापस लौटे तब श्रीकृष्ण ने अपने जीवन का महान कार्य किया और वह थी श्रीकृष्णसन्धि। राजनीतिज्ञ उसको पढ़कर प्रेम से झुम उठाते हैं, आनंदित होते हैं। परन्तु श्रीकृष्ण के मनसे वह खेल ही था मानो कुछ किया ही न हो। वे ' कुछ हुआ, ' कहकर थोडे ही बैठे रहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नववाँ प्रकरण

श्रीकृष्ण--सन्धि

वनवास के अन्त में

भगवान श्रीकृष्ण ने अपूर्व बुद्धिमत्ता दिखाकर, हड्डियों को नरमकर, रक्त का पानी बनाकर अहंकारी दुष्ट सम्राटों को परास्तकर; अभिमान, पशुता और लोलुपता वाले नरराक्षसों को बुद्धिबल और बाहुबल के प्रताप से अंकुश में रखकर धर्मराज्य की स्थापना की। श्रीकृष्ण ने जन्म ही इसलिये धारण किया था –

" धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे "

इस धर्मराज्य के प्रमुख बनने के लिये युधिष्ठिर ही समर्थ थे। दिव्य गुणों से सम्पन्न और त्याग की साक्षात् मूर्ति के समान धर्मराज के हाथों में धर्मराज्य की बागडोर सौंपी, क्योंकि – **'सर्वे धर्माः राजधर्मप्रधानाः'** और श्रीकृष्ण द्वारिका सिधारे। परन्तु उनके भाग्य में अपने स्वजन को अपनी ही आँखों के सामने विनाश होते हुये देखना लिखा था; परिणाम स्वरूप सत्त्वगुण सम्पन्न महाराज युधिष्ठिर की बुद्धि को जड़ता मार गयी और वे द्यूत–क्रीड़ा के लिये गये। द्यूत में सर्वस्व खोया। जुआ खेलने की इच्छा का प्रादुर्भाव और आचार धर्मराज के जीवन की बड़ी भूल (Himalayan mistake) थी। वे उसके विपरीत परिणामों को समझ न सके और उसके प्रवाह में खिंच गये।

श्रीकृष्ण ने वन में पाण्डवों से कहा कि यदि मैं उपस्थित होता तो तुमको विनाश के इस मार्ग में कदापि नहीं जाने देता। कदाचित् तुम्हारे जाने के पश्चात् भी मुझे सूचना मिली होती तो मैं वहाँ आता और देखता कि तुम कैसे नहीं जीतते ?

यथार्थ में देखें तो पाण्डव तो निमित्त मात्र थे। धर्मराज्य की स्थापना के लिये श्रीकृष्ण ने पाण्डवों का तो मात्र उपयोग ही किया है बाकी धर्मराज्य की स्थापना तो उनकी अद्वितीय चित्शक्ति की ही आभारी है। पाण्डवों ने राज्य न तो किया और न प्राप्त किया।

पाण्डव तेरह वर्ष पश्चात् वनवास भोग कर वापस लौटे हैं। शर्त ऐसी थी की पाण्डव वनवास भोग कर वापस आयें, तब कौरव उनका राज्य उन को वापस सौंप देंगे। श्रीकृष्ण जानते थे कि कौरव अपने दिये वचन का पालन करेंगे नहीं। अपने राज्याधिकार को पुनः प्राप्त करने के लिये पाण्डवों को कौरवों के साथ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संग्राम करना ही पड़ेगा। वनवास के अन्त में पाण्डवों की शक्ति पर्याप्त मात्रा में बढ़ गयी थी। बहुत से राजा उनके पक्ष में थे। सब से बड़ी बात तो यह थी कि पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण इनके साथ थे।

पाण्डव कौरवों के साथ युद्ध छेड़े, उससे पूर्व समझौते का एक प्रयास करना चाहिये, ऐसा कृष्ण मानते थे। यहीं उनके कौशल का परिचय मिलता है। कोई यह न कह सके कि कौरवों को समझौता करना था परन्तु पाण्डवों को ही युद्ध की खपत थी। इसलिये उन्होंने पाण्डवों को समाधान के लिये प्रयास करने की सम्मति प्रदान की। पाण्डव पक्ष के सभी इकट्ठे हुये और कौरवों के साथ सन्धि करने के लिये दूत भेजने का निश्चय किया। इस कार्य को श्रीकृष्ण के अलावा दूसरा कौन दक्षता से कर सकता है?

श्रीकृष्ण पागल न थे। कौरवों को शान्ति पसन्द न थी यह वे अच्छी तरह से जानते थे, फिर भी श्रीकृष्ण ने समाधान के प्रयास करने की सलाह दी; उसके पीछे दीर्घदृष्टि थी। श्रीकृष्ण के जीवन का यह महत्वपूर्ण पृष्ठ था। प्रसंग भी बहुत नाजुक था।

संस्कृति के उत्थान के लिए युद्ध

अब प्रश्न उपस्थित होगा कि उनको क्या सन्धि मान्य थी? क्या सन्धि होगी ही ऐसा आशावाद था? नहीं, वे ज़रा भी आशावादी न थे। सन्धि करने की उनकी इच्छा भी न थी। पाँच-पच्चीस बार अपना स्पष्ट मत भी उन्होंने भीम, अर्जुन के समक्ष प्रदर्शित किया था। उन्होंने पाण्डवों से कहा, "कौरवोंने तुम्हारा राज्य तुमको वापस करने का वचन दिया है, परन्तु वे इस करार को भंग करेंगे ही। यदि उनकी मनोवृत्ति पवित्र होती तो वे ऐसे प्रपंच न रचते। करार भंग होने के पश्चात् उनके साथ सन्धि नहीं हो सकती; '**त्वयार्ध मयार्ध**' पाशवी सत्ता के साथ शक्य नहीं। उनके साथ समाधान (Compromise) नहीं हो सकता। पशुतापर तो आक्रमण करके उसका विनाश कर के ही रहना चाहिये। यदि पशुत्व के साथ समझौता किया जाय तो पशुत्व के कितने ही विचार भी हमको अपनाने पड़ेंगे; और यह उचित है क्या? उसका अर्थ तो अपने सिद्धांतों के साथ गठबन्धन निबटारा करने जैसा है। और सिद्धांतों के साथ किसी भी स्थिति में समझौता किया नहीं जा सकता। मानव और पशुता के बीच समाधान सम्भव ही नहीं, यह भारतीय सँस्कृति है। उनके प्रति विनम्र वर्ताव रखेंगे तो वे उसे हमारी दुर्बलता अथवा लाचारी समझेंगे। मानववादी सुसंस्कृत पुरुषों में पशुतावादी, पाशवी सत्ता पर आक्रमण कर उसका विनाश

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करने की प्रभावशाली शक्ति रहती है यह हमें दिखाना भी होगा। पाशवी शक्ति के पूजारियों में भय का निर्माण करना ही होगा।

श्रीकृष्ण कोई सामान्य मानव न थें। दो सौ बर्षों से पूर्व के राजनीतिज्ञों को आज कोई स्मरण नहीं करता। जब कि हजारों वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी श्रीकृष्ण का स्थान लोगों के हृदय में आज भी वैसा ही है। उनकी प्रखर बुद्धि का ही यह प्रमाण है। श्रीकृष्ण की युद्धोन्मुखी नीति के ऊपर आक्षेप करने-वाले कुछ लोग कहते हैं, "मानव–मात्र भूल का पात्र है। कोई व्यक्ति एक आध भूल कर बैठे इसालिये उसकी अवहेलना करना या उसे मार डालना उचित नहीं कहा जा सकता। ऐसे मानव को सुधारने का समय और अवसर देना चाहिये। उसमें रही मानवता और संस्कारिता को जाग्रत करने का प्रयत्न करना चाहिये। इसी न्याय से श्रीकृष्ण युधिष्ठिर को छोड़ना नहीं चाहते थे, तो फिर उन्होंने दुर्योधन को भी आत्मीय बनाना था।" बल्कि बहुत से बुद्धिमान व्यक्ति ऐसा भी कहते हैं 'श्रीकृष्ण '**शठं प्रति शाठ्यम्**' (जैसे को तैसा) नीति का अनुशलिन करते थे पर उनकी यह नीति भूलपूर्ण थी।' यह तो एक चरण है; उससे भी आगे का चरण याने '**शठं प्रत्यपि सत्यम्**' (अर्थात् बुरे के साथ भी अच्छा बर्ताव रखो) की नीति हमको मिली है। 'श्रीकृष्ण को इस नीति का पता ही न था' ऐसे आक्षेप करनेवाले हृदय और मन से सड़े हुये हैं, यद्यपि वे भाव मात्र ईसु, नरसिंह या तुकाराम का लाते हैं। परन्तु ऐसा कहनेवालों को श्रीकृष्ण की फिलॉसफी (Philosophy) के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान नहीं।

श्रीकृष्ण के विचार स्पष्ट हैं। जिस व्यक्ति के हाथ में कोई सत्ता नहीं, ऐसे व्यक्ति को उपदेश, सँस्कार अथवा भय दिखाकर सुधारा जा सकता है; उसके हृदय के सुप्त सँस्कारों को जाग्रत किया जा सकता है। परन्तु सत्तारूढ़ व्यक्तियों को इस प्रकार से सुधारना शक्य नहीं। उनका तो विनाश करना ही उचित है। उन्होंने ऐसे सत्ताधीशों को ही मारा था।

महाभारतकाल में क्या शिशुपाल और जरासंध के अतिरिक्त कोई दुष्ट व्यक्ति ही नहीं थे? क्या सभी धर्म के अवतार थे? उस समय दुष्टों की कमी न थी। फिर भी श्रीकृष्ण ने उन सभी को मारा न था। उनका '**शठं प्रति शाठ्यम्**' का सूत्र मात्र सत्ताधिष्ठित व्यक्तियों तक ही मर्यादित रहा था। सामान्य मानव के लिये श्रीकृष्ण का यह सूत्र न था। अर्थात् सत्ताहीन व्यक्ति को सँस्कार, वातावरण तथा उपदेश द्वारा सुधारना और सत्तावान व्यक्तियों के विरुद्ध युद्ध यही थी श्क्राेिष्ण की नीति! श्रीकृष्ण सब के नाश के लिये तैयार थे, ऐसा कहने से बड़ा असत्य दूसरा कोई नहीं हो सकता। श्रीकृष्ण ने मात्र दुष्ट शासकों का ही वध किया क्योंकि ऐसे व्यक्तियों को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिक्षण या उपदेश द्वारा सुधारना शक्य नहीं। श्रीकृष्ण के समय में मात्र पांच-छः ही भोग-लंपट न थे। इसलिये यह सिद्धान्त हम ध्यान में रखें कि सत्तावान शिक्षण, वातावरण या सँस्कार से कभी सुधरेंगे नहीं। श्रीकृष्ण यदि सब को मारने के लिये उठे होते तो किसीकी शक्ति न थी कि जीवित रहे! इसके अतिरिक्त, श्रीकृष्ण से पहिले सत्तावानों को समझानेवाले कितने ही साधुपुरुष आ गये थे परन्तु कोई कुछ भी परिवर्तन न कर सके।

नारदजी ने वाल्मीकि को ठग से भक्त बनाया, क्योंकि वाल्मीकि शासक न होकर एक सामान्य मानव थे। अधःपतित सत्तारूढ़ मानव को इस रीति से सुधारा नहीं जा सकता। उसकी सत्ता के उच्छेदन के अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग ही नहीं। इसलिये श्रीकृष्ण की फिलासफी में दोनों बातें हैं। सत्तावान के लिये '**शठं प्रति शाठ्यम्**' और सत्ताहीन व्यक्ति के लिये '**शठं प्रत्यपि सत्यम्**' अतएव श्रीकृष्ण का तो दुष्ट कौरवों के साथ सुलह के लिये मंत्रणा करने का विचार भी न था। उनके मतानुसार तो ऐसे अधःपतित को स्थानभ्रष्ट करना ही प्रमुख कार्य था। परन्तु दो कारणों से उन्होंने समझौते का प्रयास करना उचित माना। एक तो जगत को यह दिखाना कि पाण्डव और वे स्वयं समाधान के लिये उत्सुक हैं; और दूसरा युधिष्ठिर को प्रसन्न करना।

श्रीकृष्ण धर्मराज का धर्मराज्य स्थापना के लिये उपयोग करना चाहते थे। उन्हें विश्वास था कि जब युधिष्ठिर राज्य सिंहासन पर बैठेंगे तभी धर्मराज्य स्थापित होगा और जिस व्यक्ति के द्वारा ऐसा महान् कार्य करवाना हो, उसे अप्रसन्न करना उचित नहीं। ऐसे अग्रणी व्यक्ति का मन प्रसन्न रखना चाहिये।

धृतराष्ट्र प्रेरित संजय-विष्टि

युद्ध के प्रारम्भ में संजय धृतराष्ट्र का संदेश लेकर युधिष्ठिर के पास आया। वह संदेश पढ़ने योग्य है। विरक्त मानव के मुँह में शोभा दे, ऐसी भाषा धृतराष्ट्र की थी। उसमें धर्मराज को समझाया था-" क्षुद्र स्वार्थ के लिये, क्षणिक सुख के लिये, और थोड़ी भूमि- राज्य के लिये सैकड़ों व्यक्तियों की हत्या करना तुम्हारे लिये शोभनीय नहीं है। तुम तनिक विचार करो, इससे तुम्हें आभास हो जायेगा कि इस नश्वर जगत में, नश्वर भूमि के लिये लड़ना यह उत्तम पुरुषों का कार्य नहीं,' इत्यादि।

धृतराष्ट्र का यह सन्देश सुन कर सचमुच युधिष्ठिर द्रवित हो गये। असार संसार के क्षणिक लोभ के लिये हम जो कुकृत्य करते थे, उससे चाचाजी ने हमको बचा दिया है- इस निर्णय पर युधिष्ठिर आ गये। संजय-संधि, यदि श्रीकृष्ण उस स्थान पर न होते, इतनी सफल हुयी होती कि युधिष्ठिर कमण्डल हाथ में लेकर हिमालय में चले जाते। श्रीकृष्ण ने आगे आकर संजय से कहा, " मेरा संदेश

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धृतराष्ट्रसे कहो कि 'तुम्हारा संदेश तत्त्वज्ञान और उच्च विचारों से युक्त है। परन्तु जहाँ से यह तत्त्वज्ञान निकला है वहीं से आप की तरफ से ही इसको आचरण की पहले शुरुआत हो यह आवश्यक है।" उसी समय, 'मैं थोड़ी देर में सभा में आता हूँ' ऐसा सन्देश भी भेजा।

संजय-संधि कुटिलता का उत्कृष्ट नमूना है। धृतराष्ट्र का वह षड़यंत्र था। संजय मात्र संदेश वाहक थे। सन्देश वाहक का काम केवल सन्देश ले जाना होता है। ऐसे दूतों का अपना व्यक्तित्व नहीं होता, उसे तो राजा और मंत्री के परामर्श के अनुसार ही मंत्रणा चलानी होती है। पापी सत्ता का दूत पापी ही होता है। इसलिये जिस समय संजय बोलता है उस समय कौरव सत्ता ही बोलती है, संजय तो मात्र एक निमित्त मात्र था। दूत को तो जो राजसत्ता कहे वही करना होता है। आज भी यही परिस्थिति है। अन्तर्राष्ट्रीय सभा (Internation Conference) में प्रत्येक देश के राजदूत होते हैं, परन्तु इन राजदूतों को अपनी सरकारों के द्वारा निश्चित की हुयी नीति का ही अनुसरण करना पड़ता है। इनको अपनी सरकारों के वाहक (mouth-piece) के रूप में जाना जा सकता है।

श्रीकृष्ण – शान्ति के दूत

दूत के रूप में श्रीकृष्ण की बात भिन्न ही थी। श्रीकृष्ण राजदूत के रूप में नहीं, शाँतिदूत के रूप में कार्य करने गये थे। स्वतंत्र रूप से बुद्धि चलाकर विरोधी सत्ता के साथ विरुद्ध मंत्रणा करनेवाले राजदूत तो एक कृष्ण ही हैं। जगत के इतिहास में श्रीकृष्ण ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो पाण्डवों के प्रतिनिधि होने के बावजूद अपनी बुद्धि का प्रयोग कर संधि करने आये। उन्होंने अपनी प्रेरणा से ही यह कार्य हाथ में लिया। वे कौरवों की कुटिलनीति से पूर्ण परिचित थे। इसीलिये किसी दूसरे को दूत का कार्य न सौंपकर, स्वयं ही उन्हों ने उसे हाथ में लिया। हतोत्साहित युधिष्ठिर को कौरवों की कुटिलता का विश्वास दिलाने के लिये ही श्रीकृष्ण गये थे। श्रीकृष्ण के वहाँ जाने में युधिष्ठिर को प्रसन्न करने का कारण तो था ही। पर साथ साथ स्वयं पर के लोकापवाद को दूर करने का दूसरा कारण भी था। महापुरुषों को इसे दूर करना ही चाहिये। राम ने सीता का त्याग इसीलिये किया था।

बलराम आदि यादव ऐसा मानते थे कि कौरवों का भी कृष्ण पर पाण्डवों जैसा ही प्रेम है, इसलिये यदि श्रीकृष्ण सुलह के लिये जाँय तो निश्चित सुलह हो जाय। यदि श्रीकृष्ण शान्ति दूत बन कर न गये होते तो बलराम सहित अन्य यादवों तथा लोगों का यही कहना रह जाता कि श्रीकृष्ण ने जानबूझकर कौरवों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के साथ अपनी घनिष्टता और अपने व्यक्तित्व का उपयोग नहीं किया। श्रीकृष्ण सब को विश्वास दिला देना चाहते थे कि कौरवों का दुष्ट आशय है, वे पाण्डवों के साथ के अपने करार को निबाटना ही नहीं चाहते। कौरवों के साथ संधि किसी भी रीति से शक्य नहीं थी, इसलिये पाण्डवों के लिये एक मात्र मार्ग युद्ध का ही रह गया था। श्रीकृष्ण वहाँ गये, उस समय उन्होंने कहा था—

'न जातु गमनं पार्थ! भवेत्तत्र निरर्थकम्।
अर्थप्राप्तिः कदाचित् स्यादन्ततो वाऽप्यवाच्यता ॥'

अर्थात् "मेरा जाना निरर्थक नहीं होगा। संधि कदाचित् हो या न हो, तो भी लोकापवाद तो निश्चित जायेगा ही। यह भी बहुत बड़ा कार्य हुआ, ऐसा मानूँगा।"

श्रीकृष्ण-विष्टि का राजकारण

इसके अतिरिक्त महत्वपूर्ण एक तीसरा कारण भी था। श्रीकृष्ण जिस समय सन्धि करने गये उस समय कौरवों के राजदरबार में कौरवों तथा पाण्डवों के पक्ष-पोषक सारे राजा उपस्थित थे। जो पाण्डवों के पक्ष-पोषक थे वे तो पाण्डवों को ही समर्थन देने वाले थे। वे केवल उनके सगे-सम्बन्धी ही थे, जब कि कौरवों का पक्ष लेनेवाले सभी राजाओं की पाण्डवों के साथ कोई शत्रुता न थी और न दुर्योधन पर प्रेम ही उभर आता था। वे राजा श्रीकृष्ण के विरुद्ध मोर्चा बनाने के लिये कौरवों का पक्ष ले रहे थे। श्रीकृष्ण एकतंत्री शासन के काल हैं ऐसा उन्होंने जान लिया था, इसलिये एकतंत्री शासन व्यवस्था को टिकाने के लिये ही वे कौरवों का साथ दे रहे थे। अर्थात् श्रीकृष्ण विरोधी व्यक्ति थे, और उनका विरोध करने के लिये ही सब एक संघ बना कर एकत्रित हुये थे, क्योंकि श्रीकृष्ण ने अनियंत्रित राजव्यवस्था को तमाचा मारा था।

श्रीकृष्णने अपने वर्ताव से इन राजाओं को बता दिया था कि यदि सीधे नहीं चलो गे तो प्रजा का सामान्य व्यक्ति भी तुम्हारा शिरच्छेद करेगा। कंस का वध कर उन्होंने बता दिया कि राजा इस लोक में भी दण्डनीय है। यह महासिद्धांत उन्होंने ही प्रस्थापित किया था। उन्होंने बताया कि उन्मार्गगामी राजा को दण्ड देना ही चाहिये और वह भी इसी लोक में। श्रीकृष्ण ने पाण्डवों के राजदूत के रूप में इन डरपोक, कायर और भीरु राजाओं को इस भरी सभा में बता दिया कि स्वेच्छाचारिता के दिन अब अस्त हो गये हैं। मेरे विरुद्ध ऐसे प्रत्याघातियों का संघ बना कर भी तुम टिक नहीं सकते। श्रीकृष्ण की क्रान्ति ने तो राजाओं को अस्थिर कर डाला था। ये राजा जरासंध की मृत्यु के पश्चात मिले हुये इस अवसर को नहीं छोडते। ये लंपट राजा पुनः दुर्योधन के नेतृत्व में श्रीकृष्ण का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विरोध करने के लिये एकत्रित हुये थे। वास्तव में तो वे इस भ्रामक आग्रह को पकड़े हुये थे कि ईश्वर के अतिरिक्त दुसरा कोई उनको दण्डित नहीं कर सकता और राजा तो मानव के रूप में देव है, वह चाहे जो कर सकता है।

ना विष्णुः पृथिवीपतिः। नराणां च नराधिपः॥ श्रीकृष्ण ने उनका भ्रम भंग कर डाला और बता दिया कि राजा भी यदि धर्मानुसार राज्य न करे तो वह भी दण्डनीय है। महाभारत में वर्णन है कि, विदुरजी ने जब सब राजाओं को पूछा कि तुम किसलिये एकत्रित हुये हो? तब उन्होंने उत्तर दिया कि हमारा विरोध श्रीकृष्ण के साथ है। इसीलिये जब श्रीकृष्ण सन्धि करने गये उस समय विदुरजी ने उनसे कहा कि "आपने इस प्रकार यहाँ आकार बहुत ही बड़ा साहस किया है। यहाँ एकत्र हुये राजा पाण्डवों के नहीं अपितु आपके शत्रु हैं। शत्रुओं के बीच इसप्रकार अकेला आना खतरनाक कहा जायेगा।"

विष्टि का लक्ष्य

श्रीकृष्ण ने विदुरजी को आश्वासन देते हुये कहा, 'आप इस बात की तानिक भी चिन्ता न करें, सब कुछ जानने के बावजूद जान बूझकर ही यहाँ आया हूँ। 'पाण्डव दुर्बल हो गये हैं; इसलिये उन पर दया करो'– ऐसी याचना करने के लिये नहीं आया। अपितु, तेरह वर्ष के वनवास के अन्त में भी पाण्डव उतने ही शक्तिशाली हैं, प्रभावशाली हैं यह घोषणा करने के लिये आया हूँ। मैं उन राजाओं को तुच्छ समझता हूँ; मुझे उन की परवाह नहीं। वे भले ही शूरवीर या पराक्रमी हों, परन्तु मुझे विश्वास है कि जब वे पाण्डवों के बारे में मेरी इस घोषणा को सुनेंगे तब वे अवश्य ही गलितगात्र हो जायेंगे। उनका आत्मविश्वास डगमगा जायेगा और हीन भावना–न्यूनता ग्रन्थि (Inferiority Complex) पैदा होगी। शक्तिशाली पाण्डव समय की बाट देख रहे हैं यह बताने के लिये मैं आया हूँ। इस के अतिरिक्त द्रोणाचार्य और भीष्म पीतामह की नीति की बातों का खोखलापन भी प्रमाणित करने आया हूँ। इन नीति की मूर्तियों की आँखों के पर्दे को दूर करने के लिये आया हूँ। इस प्रकार उनकी शक्ति को भंग कर देना चाहता हूँ। पाण्डवों की शक्ति का परिचय देकर इन के मन में लघुता–ग्रन्थि (Inferiority Complex) पैदा करना मेरा लक्ष्य है, जिससे हाथ में शस्त्र लेते ही वे कम्पित होने लगें।

वास्तव में यदि हम कौरवों के दरबार में दिये गये व्याख्यान को ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे, तो उनके वाक्चातुर्य और बुद्धिमत्ता पर मुग्ध हो जायेंगे। बड़े–बड़ों के मन में भी भय पैदा कर दे ऐसा यह व्याख्यान है। और इसका परिणाम भी श्रीकृष्ण की इच्छानुसार ही आया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वरक्षण के लिए श्रीकृष्ण की जागृति

श्रीकृष्ण जानते थे कि कौरव और उनके साथी राजा धोखेबाज और हराम-खोर हैं। वे कब दगा करेंगे यह कुछ नहीं कहा जा सकता, यह भी वे जानते थे। श्रीकृष्ण ने अपने चरित्र द्वारा जगत के समक्ष एक योग्य राजनीतिज्ञ का चित्र प्रस्तुत किया है। वे कौरवों के दरबार में कोई अपनी ईश्वरीय शक्ति का प्रदर्शन करने नहीं गये थे। जहाँ आवश्यकता थी वहाँ उन्होंने अपनी दैवी शक्ति प्रदर्शित की भी है। प्रत्येक बात में ईश्वरीय शक्ति से ही कार्य करना होता, तो अवतार ही किसलिये लेते? ऊपर बैठे ही सब कुछ न कर लेते?

अतः श्रीकृष्ण जब सन्धि करने गये तब पूर्ण सावधानी से गये थे। उन्होंने समस्त आयुध अपने साथ रखे थे। जिस रथ में बैठकर वे गये थे, वह भी सांग्रामिक-रथ था। उस में आकस्मिक आपत्तियों का सामना करने के लिये आवश्यक तैयारियाँ (साज-सज्जा) विद्यमान थीं, बल्कि सात्यकि को उन्होंने अपने साथ ले लिया था और संकट पड़ने पर मुकाबिले के लिये कृतवर्मा की दो लाख शस्त्र-सज्ज सैनिकों को हस्तिनापूर में तैयार खड़ा रखा था। इसीलिये जब श्रीकृष्ण के साथ छल होने का था, तब कृतवर्मा सभाद्वार के सम्मुख सुसज्जित होकर आ खड़ा हो गया और ललकार देता है। इतनी सावधानी तो होनी ही चाहिये। परन्तु श्रीकृष्ण की दीर्घदृष्टी अजीब थी! कौरवों की नीयन पर उन्हें तनिक भी विश्वास न था, इसीलिये प्रवास (यात्रा) एवं कौरवों की राजधानी में रुकने की अवधि तक भी कोई परेशानी न हो इसके लिये अन्न की पर्याप्त मात्रा भी अपने साथ रखी थी। हरामखोरों का अतिथि बनना था ना?

धृतराष्ट्र की कुटिल नीति से कृष्ण पूर्णतया परिचित थे, इसलिये उन्होंने पूर्ण सतर्कता से समस्त पग उठाये और सम्पूर्ण तैयारी कर कौरवों के पास गये। कुटिल नीति का आचार्य कणिक और उसका पटु शिष्य धृतराष्ट्र; फिर उसमें कमी क्या हो? ऐसे पुरुष तो जिसको मारना होता है, उसके प्रति अत्यधिक स्नेह पूर्ण और प्रेमयुक्त व्यवहार प्रदर्शित करते हैं।

'प्रहरिष्यन् प्रियं ब्रूयात् प्रहरन्नपि भारत!
प्रहृत्य च कृपायीत शोचेत च रुदेत च॥'

उस समय विरोधी व्यक्ति को भी लगता है कि जगत में मेरा कोई हितेच्छु है तो यही है। बल्कि ऐसे खलपुरुष उसको मारने के पश्चात भी स्वयं ऐसा शोक करेंगे मानो उसके मरण से उनके जितना दुःख दूसरे किसीको हुआ ही नहीं। ऐसे खलपुरुष ढोंग और प्रपंच में पटु होते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धृतराष्ट्र का दम्भपूर्ण सत्कार

जिस समय श्रीकृष्ण समझोता करने के लिये गये, उस समय धृतराष्ट्र ने दुर्योधन से कहा की समझोते के लिये आनेवाला कृष्ण ही समस्त विपत्तियों का मूल है। यही मूलाधार चक्र है इसलिये उसका कुछ होना चाहिये और जब श्रीकृष्ण वहाँ पहुँचे तब उस ने श्रीकृष्ण के रहने और खाने की सुन्दरातिसुन्दर व्यवस्था करने के आदेश (orders) किये। श्रीकृष्ण को दुःशासन के महल में ठहराने का आदेश दिया। दुर्योधन के महल की अपेक्षा भी यह महल अधिक सुन्दर था। श्रीकृष्ण का प्रथम निवास वक्रस्थली में होना था इसलिये वहाँ भी उत्तमोत्तम मण्डप बनाकर व्यवस्था की गई थी।

श्रीकृष्ण उसके इस कृत्रिम प्रेम के मिथ्या उभार को परख गये। जिस नीच और दुष्ट मानव ने मीठा--मीठा बोल कर अपनी अनाथ विधवा भाभी (कुन्ती) और उसके पाँच पुत्रों को जीवित जलाने के लिये इतने प्रपंच और षड्यंत्र रचे, उस धृतराष्ट्र का श्रीकृष्ण विश्वास कैसे करते ?

श्रीकृष्ण–मूर्तिमंत राजनीति

धृतराष्ट्र ने श्रीकृष्ण के लिये उत्तम से उत्तम व्यवस्था की थी परन्तु उन्होंने तो किसी चीज की ओर देखा भी नहीं। महाभारतकार लिखते हैं :—

'ताः समाः केशवः सर्वाः रत्नानि विविधानि च।
असभीक्ष्यैव दाशार्हः उपायत्कुरुसद्म तत्॥
भोज्यं च विपुलं राजन् प्रेष्याश्च शतशोत्परे।'

श्रीकृष्ण किसी मित्र के यहाँ सैर करने नहीं गये थे। शत्रु के साथ मंत्रणा करने गये थे। श्रीकृष्ण ने मार्ग में उनके छप्पन प्रकार के पकवानों को छोड़कर अपने साथ लाया हुआ पाथेय ही खाया। दुष्ट कब और किस प्रकार दगा करेंगे, क्या भरोसा ! श्रीकृष्ण की व्यवहारकुशलता का यह उत्तम उदाहरण है।

श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र–दुर्योधन की मेहमानदारी चखी भी नहीं, और बुरा भी नहीं लगने दिया, इसलिये किसीके यहाँ नहीं गये, ऋषिमुनियों के पास भी नहीं गये सब को प्रेम से अपने पास बुलाया था। श्रीकृष्ण ने दूसरों का आतिथ्य स्वीकारा होता तो, कौरव कह सकते कि कृष्ण का हम पर विश्वास नहीं हैं। परन्तु अब तो कहा जा सकता था कि मुझे तुम्हारा विश्वास नहीं है, ऐसी बात नहीं है, वल्कि मैं किसी के यहाँ नहीं गया। सन्धिकार किसीका भी अतिथि न बने यह अपेक्षित है।

श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर में भव्य स्वागत हुआ। भीष्म, द्रोण आदि सभी नें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रीकृष्ण का स्वागत किया। कर्ण, दुःशासन आदि भी श्रीकृष्ण की अगवानी के लिये गये। श्रीकृष्ण प्रत्येक के सामने हँसते और सब का नमस्कार स्वीकार करते हुये आगे बढ़े। अग्रगण्य राजपुरुषों के साथ संक्षिप्त बातें की। किसी के साथ हाथ भी मिलाया। जिस के साथ जैसा वर्तन होना चाहिये वैसा किया; किसीको अप्रसन्न नहीं किया। दरबार में धृतराष्ट्र नें प्रेमपूर्वक उनका स्वागत किया, थोड़ी बातचीत हुयी। श्रीकृष्ण वहाँ से शीघ्र छुटकारा चाहते थे, उनको भय था कि धृतराष्ट्र अब कहेगा कि 'तुम्हारे लिये दुःशासन के महल में व्यवस्था कर रखी है।' धृतराष्ट्र के हरामखोर और पशुवृत्तिवाले पुत्रों को श्रीकृष्ण भलीभाँति पहचानते थे। और यदि कृष्ण उन्हें न पहचाने तो दूसरा कौन पहचानेगा? श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र से कहा कि "जरा फूफीजी को मिल जाऊँ" और वे कुन्ती को मिलने चले गये। कुन्ती माता विदुरजी के यहाँ थीं। भीष्म, द्रोण आदि सभी कृष्ण को अपने यहाँ निमंत्रण देने के लिये आये परन्तु श्रीकृष्ण ने विनयपूर्वक सब के न्योतों को टाल दिया। 'काफ़ी विलम्ब हो गया है, आप अब जाइये, प्रेम से बुलाते हैं इतना ही काफ़ी है; इसके लिये धन्यवाद।' इस प्रकार सब को नमस्कार कर विदा किया। और विदुरजी के यहाँ रहे।

महाअमात्य विदुर जी

विदुर जी के सम्बन्ध में हमारी मान्यता गलत है। विदुर जी याने दरिद्र, दुर्बल भक्त ऐसा बहुत से लोग मानते हैं। वास्तव में विदुर जी मंत्री थे, बहुत ही बुद्धिशाली थे। श्रीकृष्ण ने विदुर जी के यहाँ भोजन किया। विदुर जी ने श्रीकृष्ण की स्वागत की व्यवस्था बहुत ही ठाठ-बाटसे की। सामान्य मानवी भी अपने यहाँ असामान्य व्यक्ति के अतिथि होने पर ऋण लेकर भी दो पदार्थ अधिक बनायेगा ही, तो, फिर विदुर जी जैसे कौरवेश्वर के प्रमुख अमात्य के यहाँ मात्र चावल, भाजी की बात कवि की विनोदी कल्पना ही लगती है।

दूसरे दिन गान्धार देश का शकुनि मामा श्रीकृष्ण को बुलाने आया। श्रीकृष्ण उसके साथ ही उसीके रथ में नगर की शोभा देखते हुये राजदरबार में जाने लगे। रास्ते में स्वागत की व्यवस्था-सजावट, शोभा देखकर मन में सोचा, 'स्वागत तो बहुत उत्कृष्ट है परन्तु **'मधुतिष्ठतिजिह्वाग्रे!'** शकुनि को विदुर जी अच्छी तरह से जानते थे, इसलिये श्रीकृष्ण जब उसके रथ में बैठे तब विदुर जी भी लपककर अपने मेहमान की संभाल के लिये उन के साथ ही रथ में बैठ गये। ऐसे दक्ष विदुर जी को हम भोला भगत कहते हैं।

श्रीकृष्ण जब राजदरबार में पहुँचे तब राजदरबार ठसाठस भरा था। सभी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राजा, मंत्री उपस्थित थे परन्तु दुर्योधन कहीं दिखाई नहीं दिया ! दुर्योधन भयंकर चालबाज था। श्रीकृष्ण जब सन्धि करने आये, उस समय वह अपने महल में 'चाण्डाल-चौकड़ी' इकठ्ठी कर षड़यंत्र रचता था। कुटिल षड़यंत्रकारियों का वह प्रमुख व्यक्ति था। श्रीकृष्ण ने आगे चल कर दुर्योधन से भेट की। प्रारम्भ में तो दुर्योधन ने व्यंग्यपूर्वक बोलना शुरू किया, ताकि झगड़ा हो, परन्तु भूल समझकर तुरन्त ही पलटता हुआ कहने लगा,–'आपके आगमन से बहुत आनंद हुआ। हमने आप के लिये पर्याप्त व्यवस्था की थी, परन्तु आप हमारे यहाँ नहीं ठहरे ! आप के लिये तो पाण्डव और कौरव, दोनों समान हैं, परन्तु आप का यह व्यवहार पक्षपाती लगता है।' फिर दृष्टि बचाकर (नेत्र कटाक्ष से) कर्ण की ओर देखकर इशारे से उसे कहा-समझाता है कि 'मछली जाल में नहीं फँसी' श्रीकृष्ण ने उनका आतिथ्य स्वीकार नहीं किया इससे उसे बुरा लगा हो यह स्वाभाविक है। मछियारा जाल डाले और एक भी मछली न फँसे तो बेचारे को कितना बुरा लगेगा ! कितना दुख होगा !

श्रीकृष्ण ने दुर्योधन से कहा, "मैं यहाँ दूत के रूप में आया हूँ और जिस कार्य के लिये आया हूँ, जब तक वह सफल न हो तब तक मैं आदर–सत्कार स्वीकार नहीं कर सकता। आपने मेरे निमित्त जो सुन्दर व्यवस्था की है, उसके लिये मैं आपका आभारी हूँ परन्तु अभी उसका लाभ नहीं उठा सकता इसलिये मजबूर हूँ।"

श्रीकृष्ण अर्थात् मूर्तिमन्त राजनीतिज्ञ, किस से कितना काम लेना यह वे खूब जानते थे।

श्रीकृष्ण की स्पष्टवानी

दुर्योधन की ज़हरीली बातों का श्रीकृष्ण ने ऐसा कड़ा उत्तर दिया कि बात न पूछो। उसकी मीठी-मीठी कृत्रिम बातों को काटते हुये श्रीकृष्ण ने कहा, "तुम ने विषय छेड़ा है, इसलिये कहता हूँ। तुम कहते हो तुम्हारा मेरे साथ बैर नहीं, परन्तु जितने सज्जन हैं उतने तुम्हारे शत्रु हैं। तुम मुझे शत्रु के रूप में देखते हो; मैं भी तुम्हें उसी प्रकार देखता हूँ। सत्ता के मद में चूर हुआ मानव, सज्जन का मित्र नहीं हो सकता। ऐसे मदान्ध और मोहान्ध को मारना मेरा जीवन लक्ष्य है।"

"मैं तुम्हारे यहाँ किस प्रकार खाने के लिये आऊँ? खाना या तो अत्यन्त प्रेम हो, वहीं खाया जाता है, या तो जब कहीं खाने को नहीं मिलता हो, तब चाहे जहाँ कहीं खा लिया जाता है। मुझे तुमपर तनिक भी स्नेह नहीं और अन्न की मेरे यहाँ कमी नहीं, तो फिर मैं तुम्हारे यहाँ भोजन करने किसलिये आऊँ ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मैं कोई तुम्हारा शत्रु नहीं, तुम्हारे दुर्गुणो का शत्रु हूँ। अपनी सत्ता-लालसा छोड़ दो तो मैं तुम्हारा मित्र। तुम्हारी मोहान्धता दूर हो जाय तो मैं और तुम एक हैं।"

श्रीकृष्ण ने दुर्योधन को पहली ही मुलाकात में ऐसे कठोर वचन सुना दिये इसके कारण दुर्योधन दूसरे दिन सन्धि--मंत्रणा के समय भी राजदरबार में आने को तैयार नहीं था। मंत्रीयों ने जब कहा कि यदि आप नहीं आयेंगे तो यह राजनीतिक अपराध गिना जायेगा, तब वह अनिच्छा से आया था।

राजसभा में श्रीकृष्ण ने जो व्याख्यान दिया वह अद्भुत था। श्रीकृष्ण ने व्याख्यान करते हुये कहा, 'हे धृतराष्ट्र! विचार करो, आज कौरव और पाण्डव दोनों वंश विनाश के कगार पर खड़े हैं। यदि इन दोनों वंशों का विनाश होगा तो उसमें दोष तुम्हारा गिना जायेगा। कुल-यश और कुल-क्षय का उत्तरदायित्व तुम्हारे ऊपर है। तुमको जो पसन्द आये उस मार्ग को ग्रहण करो। तुम्हारे सभी दुष्कृत्यों को पाण्डवों ने सहन किया है। आज तक उसके विरुद्ध उन्होंने एक भी शब्द न कहा, परन्तु उसका तुमने अनुचित लाभ उठाया है। तुमने उनको तंग करने में कोई कमी नहीं रखी, अब तो समय आ गया है। अन्याय पूर्ण दुष्कृत्यों की भी जब अति हो जाती है तब सज्जन भी ऊब जाते हैं; उनका धैर्य खत्म हो जाता है। मौन-भङ्ग करना ही पड़ता है।" इस प्रकार कौरवों की सभा में उनके असत पक्ष का सुन्दर शाब्दिक चित्रण उपस्थित कर के आगे कहा, "तुम्हारे मुख में सज्जनता और धार्मिकता की भाषा है, परन्तु वह तुम को शोभा नहीं देती। मैं तुम्हारे मन के भावों को अच्छी तरह से जानता हूँ। 'मुह में राम बगल में छुरी' जैसी तुम्हारी नीति है। तुम 'बगुला भगत' हो।"

भीष्म और द्रोण को सम्बोधित करते हुये उन्होंने कहा, 'यदि युद्ध होगा ही तो धर्मयुद्ध होगा और उसमें आप अधर्मियों के पक्ष खड़े रहेंगे, यह आपको शोभा नहीं देगा। हाथी के दातों के जैसी नीति आपके लिये शोभनीय नहीं है। आप सत्य का पक्ष लेकर मानव-संहार को रोकने में समर्थ हैं।" भीष्म को लक्षित करते हुये विशेष रूप से कहा "इस भीषण मानव संहार से जगत को बचाने में दो ही समर्थ हैं, एक आप और दूसरा मैं।" आप जगत की संहार स क्यों नहीं बचाते? भीष्म की बात श्रीकृष्ण ने की परन्तु 'मैं' की बात जानबूझ कर टाल दिया। यह व्यख्यान मूल संस्कृत में है। मूल पढ़ने में बहुत आनंद आयेगा। कायर को भी शूर बनायेगा।

धृतराष्ट्र ने यह तर्क प्रस्तुत किया, 'तुम चाहो तो युद्ध रोक सकते हो, तो तुम्हीं युद्ध किसलिये नहीं रोकते?' श्रीकृष्ण ने उसका उत्तर देते हुये कहा, 'संतान,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धन–दौलत या सत्ता–यही जीवन का सर्वस्व नहीं। आप सत्य को जानते हुये भी असत्य का पक्ष ले रहे हैं, ऐसा बुरा करनेवालों को दण्ड देना, कंठ–स्नान कराना सत्कर्म है, धर्म है! जीवन में ऐश--आराम ही सर्वस्व नहीं, और भी बहुत कुछ है। आप असुरों का जीवन जियें यह उचित नहीं गिना जायेगा। इन सब खोटे कर्मों के मूल आप ही हैं।'

श्रीकृष्ण के इस वक्तव्य ने धृतराष्ट्र को अनावृत कर दिया था। वक्तव्य पूरा होते ही धृतराष्ट्र ठंडा हो गये। विदुरजी ने भी धृतराष्ट्र को इस षड्यंत्र का आधारस्तम्भ कहा था। अब कृष्ण ने भी वही कहा है। अतः वह घबड़ा गया। उसके पाप उसे डरा रहे थे।

दुर्योधन की चुनौती

दूसरे दिन की सभा में श्रीकृष्ण ने धृतराष्ट्र को अन्तिम निर्णय पूछा, "बोलो! तुमको क्या करना है?" धृतराष्ट्र ने धूर्तता से उत्तर दिया, "तुम्हारी बात तो सत्य है परन्तु मेरी संतान लंपट है। दुर्योधन दुरात्मा है, दुष्ट बुद्धि का, क्रूरकर्मी और बहुत ही हठी है। अतः मैं लाचार हूँ।" अवसर मिलते ही श्रीकृष्ण ने दुर्योधन को सम्बोधित करके पूछा, "तुम्हारे मन में जो हो तुम भी कह दो, परन्तु निर्णय लेने से पहले सभी बातों का विचार कर लो तुमको किस के साथ लड़ना है यह भी सोच लेना। कर्ण या शकुनि तुम्हें बचा नहीं सकेंगे। अर्जुन के साथ लडाई–लड़ना मृत्यु के साथ लड़ने के समान है। खाण्डव-वन–दहन तथा उत्तर-गो–ग्रहण के प्रसंग की उसकी शूरता याद करना। खाण्डव–वन में उसने अकेले देवता, गन्धर्व, यक्ष, असुर, पन्नग आदि सब को जीता था। पशुपति शंकर के साथ युद्धकर उनको भी थका देनेवाले महारथी के साथ तुम लोग किस प्रकार टक्कर लोगे? सत्रह बार के तुम भगेडू क्या खड़े रहोगे? मैं तो तुम्हारी भलाई के लिए ही सब कहता हूँ। इसलिये अपनी हठ छोड़ दो।"

यह सुनकर दुर्योधन ने कहा, "क्या हमारा पक्ष असत् है? शतरंज (द्यूत) खेलने के शौक में धर्मराज अपना राज्य खो बैठा, उसमें मैं क्या करूं? मेरा क्या दोष? दोष तो पाण्डवों का ही है। हमने अधर्म से राज्य जीत लिया, ऐसा कहना बिलकुल ग़लत है। खेल की अनभिज्ञता, अज्ञान से वह हार गया, उसमें कोई क्या करे? खेलने से पहले विचार करना चाहिये था न?"

श्रीकृष्ण ने उत्तर में कहा, "तू तो अधम से भी अधम है। धर्मराज को जुआ खेलने के लिये बुलाया किसने था? यह सम्पूर्ण षड्यंत्र रचा किसने? इन्द्रप्रस्थ की साम्राज्ञी का भरी सभा में अपमान करने वाला तुझ जैसा दुष्ट और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कौन हो सकाता है ? और फिर तू कहता है कि मैंने अधर्म नहीं किया ? राजसूय -यज्ञ में जिसका साम्राज्ञित्व सिद्ध हुआ, उस सती साध्वी को हाथ खींचकर सभा में घसीट कर लानेवाले के मुख में धर्म बातें शोभा नहीं देतीं। ऐसा मिथ्या प्रलाप करते हुये तुझे शर्म नहीं आती ?"

श्रीकृष्ण के ऐसे कटु वचनों को सुनकर दुर्योधन तो इतना उत्तेजित हो गया कि उसको सभा से बाहर ले जाना पड़ा। बाहर जाकर वह नये षड्यंत्र करने की तैयारी करने लगा।

बुजुर्गों को श्रीकृष्ण की सीख

इसके पश्चात् 'हम क्या कर सकते हैं ?' ऐसी पंगु दलील करनेवाले वृद्धों को सम्बोधित कर श्रीकृष्ण ने कहा, "छोकरे शरारती हो गये हैं, ऐसा कहना तुमको शोभा नहीं देता। एक मात्र दुर्योधन की सत्ता--लालसा को तुष्ट करने के लिये ऐसा मानव--संहार आयोजित करना उचित नहीं। किस लिये तुमसे कुछ नहीं हो सकता ? मानव-जाति की भलाई के लिये दुर्योधन को नियंत्रितकर सकते हो, उसे कैद करो। हमारे यादव कुल का उदाहरण तुम्हारी आँखों के सामने है। हम यादवों ने यह कर दिखाया है तत्पश्चात ही कहने के लिये निकले हैं। जनता के कल्याण के लिये और धर्म के हेतु मैंने कंस का वध किया। एक कंस के जाते ही यादव, अन्धक और वृष्णि--कुल सुख से रहते हैं। तुम्हारे अन्दर धर्म का अंश मात्र भी हो तो दुर्योधन को कैद करो। मैं ऐसा नहीं कहता कि उसे शूली पर चढ़ाओ, उसे कारागार में डालकर सभी आपत्तियाँ तुम टाल सकते हो" परन्तु '**कृतं अनुमतम्**' वाले क्या उत्तर देते ? आज तक कुछ कहा होता तो जिह्वा उखडती न ?"

यह सुनकर दुर्योधन आगबबुला हो उठा। 'यह कृष्ण मेरे राज्य में और मेरी ही राजसभा में मुझे कैद करने की बात करता है, तो मैं ही उसे गिरफ्तार क्यों न कर लूँ ? और वह कृष्ण को पकड़ने के लिए षड्यंत्र रचता है, परन्तु सात्यकि की आँखें दुर्योधन पर ही थीं। उसने इस षड्यंत्र को पकड़ लिया। श्रीकृष्ण ने सभा में अपना विश्वरूप (भयंकर रूप) दिखाया। लोगों को वे क्रोधित नजर आये। कृष्ण ने फिर चेतावनी दी ? "यही है न तुम्हारी राजनीति ? तुम्हारी राजकुल का कोई भी संस्कार तुममें नहीं है। 'राजदूत का बाल भी बाँका नहीं होना चाहिये,' यह बात तो एक ओर रही, अपितु सुलह--मंत्रणा के लिये आये हुये राजदूत को ही गिरफ्तार करने की तैयारी होती है ?" कृतवर्मा ने भी कृष्ण को पकडने का प्रयास करनेवालों को चेतावनी दी।

श्रीकृष्ण जब सभा-स्थान त्यागकर बाहर निकले तब उनको विश्वास हो गया था, कि युद्ध अनिवार्य है। इसलिये कौरवों का मनोबल तोड़ने के लिये एक और दाव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आजमाया। उनको विश्वास था कि मैंने राजसभा में जो कुछ कहा है, उससे भीष्म और द्रोण का मन अवश्य दंशित होगा। उनमें प्रायश्चित की भावना निर्मित हुयी, इसलिये वे मन लगाकर युद्ध नहीं कर सकेंगे। अब रहा शैतान कर्ण, अब उस का मनोबल तोड़ने के लिये कुछ करना चाहिये। श्रीकृष्ण ने उसके लिये उत्तम भेदनीति अपनाई।

कर्ण को समझाने का प्रयत्न

श्रीकृष्ण को विदा देने के लिये बहुत से राजपुरुष आये थे। श्रीकृष्ण ने सब को विदा करने के पश्चात् कर्ण को अपने रथ में बिठा लिया और मार्ग में बात छेड़ी, ' कर्ण ! जरा सोचो तो ! तुम किस के पुत्र हो ? कुन्ती माता के पुत्र होने पर भी सगे भाइयों के विरुद्ध ही लड़ोगे ! भीम, अर्जुन आदि तो तुम्हारे छोटे भाई हैं वे तो तुम्हारे आगे हाथ जोड़ेंगे। अरे ! धर्मराज भी तुम्हारी आज्ञा का पालन करेंगे। तुम्हारे पीछे यादव-सेना के नेता के रूप में मैं भी खड़ा रहूँगा। ऐसा उत्तम सम्मान का प्रसंग छोड़कर अधार्मियों को साथ लेकर पाण्डवों के विरुद्ध ही शस्त्र उठाओगे ? सिंह-शावक हो कर ऐसा हीन काम करोगे ? तुम्हारे जैसा शेर का बच्चा शृगालों के झुण्ड में मिले,यह तो सचमुच सोचनीय कहा जायेगा ! "

कर्ण का पाण्डवों के साथ कोई व्यक्तिगत बैर तो था नहीं। पाण्डवों के कारण कभी-कभी उसे अपमान सहन करने पड़ते थे और द्रौपदी ने भी स्वयंवर के समय उसका अपमान किया था, इसीलिये वह पाण्डवों के प्रति बैरभाव रखता था। जिस समय भरी-सभा में द्रौपदी के वस्त्र खींचे गये, उस समय उसे भी अपार आनंद हुआ था। इस समय भी वही बैर-वृत्ति उसके मन में थी परन्तु इस समय श्रीकृष्ण के ऐसे वचनों को सुनकर उसका मन डसने लगा। आजीवन दुर्योधन की शरण में था इसलिये वह पाण्डवों के पक्ष में जा नहीं सकता था। परन्तु श्रीकृष्ण की भेदनीति के परिणाम स्वरूप उसे लगने लगा कि हमने किसको दुःख दिया ! किसके बाल खींचकर लाये ? अरे! यह तो मेरे छोटे भाई की पत्नी मेरी पुत्रवधूवत् थी। उसका दिल दुखी होने लगा, परन्तु बैर की भावना इतनी प्रबल थी कि पाण्डवों के पक्ष में नहीं जा सका। फिर भी श्रीकृष्ण अपने वचन की प्रतीति कराने के लिये उसे कुन्ती माता के पास ले गये हैं। उसने कुन्ती के समक्ष सौगन्ध ली कि ' अर्जुन के अतिरिक्त दूसरे किसीके विरुद्ध मैं लडूंगा नहीं। '

कई लोग ऐसी दलील करते हैं कि श्रीकृष्ण की यह राजनीति-भेदनीति कर्ण के सम्बन्ध में निष्फल सिद्ध हुयी। कर्ण को वे पाण्डवों के पक्ष में ले न सके। ' परन्तु पाण्डवों का सँहार कर, विजय प्राप्त करने के लिये तड़पते कर्ण ने जब ऐसा कहा, कि अर्जुन के अतिरिक्त अन्य किसी के साथ नहीं लडूंगा। ' यह क्या कम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लाभ है ?' 'मैं प्रायश्चित्तस्वरूप रणक्षेत्र में लड़कर मरूंगा' कर्ण का यह शब्दोच्चार क्या सामान्य बात है? प्रायश्चितरूप लड़ना अर्थात् मरण ही। अन्त में कर्ण को श्रीकृष्ण ने कहा–आज से सातवें दिवस अमावस्या से लड़ाई प्रारम्भ होगी।''

विष्टि की सफलता

वास्तव में श्रीकृष्ण की नीति को पूर्ण सफलता मिली। धर्मराज्य की स्थापना के लिये हथियार त्याग कर रोते बैठे लोगों में नवजीवन भरकर उनको लडने के लिए तैयार किया। मूर्ख और दुष्ट मानवों का संहार कर, पाशवी शक्ति का दमन कर धर्मराज्य की स्थापना की, यह क्या छोटी–मोटी सिद्धि है? महाभारत की सभी घटनाओं में से श्रीकृष्ण को ले लें-कम कर दें बाकी क्या रहे? कुछ भी नहीं।

भीष्म–द्रोण, जयद्रथ, कर्ण इत्यादि महारथियों को स्वर्गधाम पहुँचाने की पाण्डवों की क्या शक्ति थी? श्रीकृष्ण न होते तो पता चलता! इन लोगों ने पाण्डवसेना को धूल चटा दी होती और पाण्डव पक्ष में अर्जुन तथा भीम के आतिरिक्त कौन उत्कृष्ट थे? भीम और अर्जुन भी द्रोण और भीष्म के सामने तो बालक ही थे। श्रीकृष्ण ने तो युद्ध के पूर्व '**मयैवैते निहताः पूर्वमेव**' कहा वह अक्षरशः सत्य कर दिखाया। वे कोई ऐसे वैसे थे, कि परिस्थिति बदल गई कहकर माथा खुजाने लगे? प्रतिपक्षियों की बात जाने दो। पाण्डव भी अन्दर कभी पागलों की सी बात करते थे। रणक्षेत्र में, संग्राम चल रहा था तब एक बार अर्जुन युधिष्ठिर को मारने के लिये तैयार हो गया क्योंकि धर्मराज ने अर्जुन के गांडीव का अपमान किया, उस समय यदि '**कैवर्तक केशवः**' उपस्थित न होते तो क्या होता?

संक्षेप में युद्ध किया पाण्डवों ने परन्तु विजय का श्रेय केशव को ही जाता है। भोगलम्पट राजा का विनाश कर इन्होंने ही धर्मराज्य की स्थापना की। धर्मराज को सिंहासन सौंप कर युगपुरुष ने अपने जीवन का कार्य पूर्ण किया। इनका स्थापित किया हुआ धर्मराज्य सैकडों वर्षों तक कायम रहा। पाण्डवों ने अपने पुरुषार्थ से मात्र छत्तीस वर्षों में देश की सूरत बदल दी। और नये युग का प्रारम्भ हुआ। लोगों का नैतिक जीवन ऊपर उठा नैतिकता को प्राधान्य मिला और भोगलालसा की अर्थी निकली। चारों ओर सुख शान्ति का साम्राज्य स्थापित हुआ। लोग सांस्कृतिक जीवन जीने लगे। उत्तम से उत्तम प्रजा उस काल में थी इसका महाभारत में वर्णन है। परिणाम स्वरूप पृथ्वी भी अधिक रसवंती हो गयी। और–

'**सुजलां सुफलां मलयज शीतलाम्**' बनी।

'इस प्रकार धर्मराज को निमित्त बनाकर धर्मसत्ता की प्रस्थापना की गयी। प्रतिकूल परिस्थिति में भी चित्त को जरा भी अस्वस्थ होने दिये बिना युगपुरुष ने शान्ति से वे कार्य किये। हमारा उनके लिए अनंत प्रणाम।

इस युगपुरुष के विशेष गुणों का परीक्षण हम कल करेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दसवाँ प्रकरण

जगद्गुरु श्रीकृष्ण

आज भगवान श्रीकृष्ण का जन्म-दिवस है; छुट्टी का दिन है, फिर भी हम योगेश्वर की जन्म-जयन्ती मनाने के लिये एकत्रित हुए हैं।

आज हमारे चरित्रनायक का जन्म-दिवस है। श्रीकृष्ण के जन्म की महत्ता तत्कालीन ही नहीं थी, यदि ऐसा होता तों उनका जन्म-दिवस उनके समय में ही मनाया गया होता। उसके पश्चात् जनमत पर उनकी स्मृति धूमिल पड़ गयी होती और हम उसे मनाते न होते। उनके जन्म-दिवस की महत्ता आज भी विद्यमान है। आज पाँच-हजार वर्षों के पश्चात् भी प्रत्येक वैष्णव उसी प्रकार श्रीकृष्ण के तत्त्वज्ञान में रस लेता है तथा प्रत्येक व्यक्ति भक्ति-भाव-पूर्वक उस पूर्ण पुरुषोत्तम की जन्म-जयन्ती मनाता है।

एकश्लोकी "भागवत"

उनके जीवन का तत्त्वज्ञान भी काल-मर्यादा से मर्यादित नहीं है। हम नित्य श्रीकृष्ण का स्मरण कर एक श्लोक को रटते हैं। आज के पवित्र दिन पर इसी श्लोक में रहनेवाली श्रीकृष्ण की महत्ता पर विचार करेंगे—

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम्।
देवकी परमानंदं, कृष्णं वंदे जगद्गुरुम्॥

'**वसुदेव सुत देवं**' ये तीन शब्द हम को यह समझाते हैं कि श्रीकृष्ण वसुदेव जैसे तेजस्वी व्यक्ति के पुत्र थे। '**कंस चाणूर मर्दनम्**' ये तीन शब्द इस बात का बोध कराते हैं कि किस महान् कार्य को करने के लिये श्रीकृष्ण अवतारित हुये थे। बाल्यकाल से ही श्रीकृष्ण ने असुरों और दुष्टों का सँहार कर जगत से अधर्म के विनाश का महान कार्य प्रारम्भ कर दिया था। संक्षेप में यह चरण उनके "**विनाशाय च दुष्कृताम्**"-इस जीवन-कार्य को प्रदर्शित करता है। '**देवकी परमानंदं**'-ये दो शब्द श्रीकृष्ण की मातृभक्ति के सूचक हैं। इतना सम्पूर्ण कार्य करके, सामर्थ्य-संपन्न होने पर भी वे माता को परम आनंद देनेवाले थे। बाहर बड़े बनकर घर में माता को रुलानेवाले वे नहीं थे।

इन तीनों चरणों में श्रीकृष्ण के अलौकिक साँस्कृतिक और कौटुम्बिक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जीवन का आलेखन किया गया है। किन्तु जो सब से अधिक महत्वपूर्ण और अर्थसूचक चरण यदि कोई है तो वह चौथा है अर्थात्–**'कृष्णं वंदे जगद्गुरुम्'** श्रीकृष्ण को सम्पूर्ण विश्व के गुरु के रूप में बताया गया है। इस चरण का वैशिष्ट्य इसीलिये है। श्रीकृष्ण मात्र वैष्णवों, हिंन्दुओं, भारतवासियों अथवा एशिया–वासियों के ही नहीं, अपितु विश्व में बसनेवाले प्रत्येक मानव के गुरु हैं। आगे बढ़कर कहें तो जो विश्व आज अगोचर है और कल ज्ञात होगा, उसके भी वे गुरु हैं। इस चरण पर यदि ध्यानपूर्वक विचार करेंगे तो यह समझ में आ जायेगा कि श्रीकृष्ण का जीवन मात्र तत्कालीन ही नहीं था; उनका जीवन दिशा या काल से मर्यादित न था। आज भी उनका जीवन हमारे जीवन का आनंद बना हुआ है। इस श्लोक के पहले तीन चरणों का महत्व भी इस चौथे चरण का आभारी है।

चिरंतन काल के लिए जगद्गुरु

यों तो संसार में उपदेश देनेवालों की कमी नहीं होती परन्तु श्रीकृष्ण के जीवन की विशिष्टता यह थी कि उनके जीवन में जगद्गुरु–जगत के उपदेशक होने के अतिरिक्त कुछ और भी था, जिसे कि सामान्य मनुष्य अपनी आँखों से भी देख सकें। वह थी उनकी शक्ति, सामर्थ्य और संस्कारिता। उन्होंने संसार के प्रपंच से हारी–थकी, दुःखी मानवजाति को नवजीवन का सन्देश दिया था। प्रशान्त मानवता के वे मार्गदर्शक थे, और हैं। उनके द्वारा गायी गीता पीड़ित मानव को दिव्य सन्देश देती रही है। हमें यदि कोई पूछे कि दुःखी मानव–जाति के दुःख को आत्मिक सन्देश देनेवाला कोई ग्रन्थ है क्या ? तो हम तुरन्त गर्व से कह सकते हैं कि 'हाँ' और वह ग्रन्थ है जगद्गुरु (श्रीकृष्ण) की गायी हुयी "गीता"।

जगत को सदा ही प्रेरणा और मार्गदर्शन देनेवाला कोई ग्रन्थ हो तो वह गीता ही है। और जगत को सदैव प्रफुल्लित करनेवाला किसी का जीवन हो, तो वह श्रीकृष्ण का ही है। अपने को निकृष्ट, दुर्बल और अशक्त माननेवाले मानव को श्रीकृष्ण आत्मविश्वास व आत्मश्रद्धा का दिव्य सन्देश गीता के द्वारा देते हैं। उनके सन्देश से उस मानव को जो स्वयं को दुःखी, हीन भावनावाला या हल्का माननेवाला था, है अथवा होगा, चिरस्थायी आत्मिक सन्देश मिला है, मिलता रहा है और मिलता रहेगा

अवतार प्रयोजन

श्रीकृष्ण के सन्देश का वैशिष्ट्य यह है कि वह धर्म का सन्देश देता है। 'धर्म' शब्द को संकुचित अर्थ में नहीं लेना चाहिये। उसका क्या अर्थ है वह आगे स्पष्ट होगा–

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥'

श्री शंकराचार्यजी ने भी इस श्लोक पर टीका कर 'धर्म' शब्द का स्पष्टीकरण करते हुये लिखा है '**जगतः स्थितिं परिपिपालयिषुः**'– जगत के इस स्थैर्य के लिये और नैतिक जीवन में स्थिरता लाने के लिये प्रभु अवतार लेते हैं, यह कल्पना श्रीमद् आद्य शंकराचार्य को भी मान्य है। उनका धर्म मथुरा या गोपियों के लिये ही नहीं था। हम को भी वही धर्म कार्य-प्रवृत करता है। शास्त्रकार कहते हैं 'धर्म हमको कार्य करने के लिये प्रेरणा देता हैं। आज हम सब जल्दी उठे हैं, नाचे हैं, कूदे हैं तथा श्रीकृष्ण के निमित्त पाँच–दस रुपये के फल–फूल भी लाये हैं। लौकिक दृष्टी से हमने कुछ न कुछ खोया ही है। यह सब करने से लाभ क्या है? फिर भी हम सब यह करते हैं। इसे करने की प्रेरणा कौन देता है? श्रीकृष्ण का जीवन और वर्णन हमारा प्रेरणा-स्रोत है। उससे हमें सदैव प्रेरणा मिलती रहती है।

आज जगत के तत्त्वचिन्तकों को भी भौतिकवाद की भयानकता देखने के पश्चात ऐसा लगने लगा है कि भौतिकवाद से भोगवाद बढ़ता ही रहा है, उसे रोकने के लिये किसी तात्त्विक अधिष्ठानपर आधारित धर्म चाहिए। मनुष्य अपने जीवन में सदैव धर्म से, कर्तव्य की व कर्म की प्रेरणा लेता रहा है। आज यान्त्रिक--शक्ति का युग है, उसका ही साम्राज्य व्यावहारिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में फैला हुआ है, परन्तु क्या यह यंत्रशक्ति हतोत्साह मानव–जाति के लिये प्रेरणा–स्रोत बन सकती है? यांत्रिक युग ने मानव को भी यंत्रवत् बना दिया है 'Mechanihcal Psycholgy' निर्माण की है। मानव भी चाहे जितनी भौतिक प्रवृत्ति साध ले परन्तु जीवन में कर्म प्रवृत्त होने की प्रेरणा कौन देगा? जगत में आज भी दुःख, त्रास और यातनाओं का ताण्डव नृत्य चल रहा है। इस त्रस्त मानव जाति को यातनाओं का सामना करने की प्रेरणा कौन देगा? क्लेश, दुःख और अविश्वास के अनेक बादलों को चीरकर, व्याप्त अज्ञान के अंधकार को दूर कर पवित्र, शान्त और प्रेम का वातावरण निर्माण कैसे करेंगे? कौनसा मार्ग अपनाओगे?

कितने ही बुद्धिवादी कहते हैं कर्म की प्रेरणा शक्ति व्यक्तिगत स्वार्थ (Self interest) है। दूसरे कई बुद्धिवादी उच्च व्यक्तिगत–स्वार्थ (Enlightened Self interest,) की बातें करते हैं। मात्र ऐसा व्यक्तिगत–स्वार्थ जगत को सत्कर्म के लिये प्रेरणादायी बने, यह बात समझ में नहीं आती। उच्च व्यक्तिगत स्वार्थ (Enlightened self interest) भी अंततः तो अपना ही स्वार्थ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देखनेवाला होने से जगत का अत्यन्त कल्याण करने या निरपेक्ष सत्कर्म करने की प्रेरणा नहीं दे सकता। फिर मानव को सत्कर्म के लिये प्रेरणा कौन देगा? आज यंत्र–शक्ति से प्रेरित होकर मानव काम करते हुये दिखायी देते हैं, परन्तु इस स्वार्थमूलक यंत्र शक्ति से मनुष्य ने सत्कर्मों के बजाय मानव की वधशाला ही खोल रखी है।

इस प्रकार यंत्र–शक्ति, शक्ती अवश्य है, परन्तु यह संहारक शक्ति है, ध्वँसात्मक शक्ति है। उसकी वधशाला सतत चलती रहती है। इस के ध्वँसात्मक कार्य में कोई शारीरिक, कोई मानसिक तो कोई आर्थिक रूप से मरता ही रहता है। यह मानव को, चाहे जिस प्रकार निचो देती है। यंत्र अर्थात् अशांति, शांति का जहाँ नाम न हो, जहाँ सतत ध्वँसात्मक कार्य चलता हो वहाँ शांति की आशा ही किस प्रकार की जा सकती है? इस ध्वँसकार्य में मानव–जाति को शांति, संतोष, पवित्रता और आनंद दे, ऐसा कोई आश्वासन है या नहीं? दुःख और यातना भोगते मानव को आश्वासन कहाँ से मिले? यंत्र युग में इस प्रकार पिसते मानव को उबारने के लिये किसी दैवी, आध्यात्मिक शक्ति की आवश्यकता है।

इससे बचने का रास्ता

मानव हमेशा आशा के आश्रय पर जीवित रहा है। वह भूतकाल के विचारों-पर जीवित नहीं रह सकता। भविष्य के सुखद स्वप्नों के विचार से वर्तमान काल की भीषण परिस्थितियों से माथापच्ची करते हुये दिन व्यतीत करता है। यदि आशा जैसी वस्तु न होती तो मानव जाति का क्या हुआ होता, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। अपना पुत्र जब बुरे रास्ते पर चलने लगता है, तब माता–पिता को यही आशा होती है कि किसी दिन तो उसकी अक़्ल ठिकाने आयेगी। यदि इस प्रकार आशा या विश्वास न होता तो मानव की अधोगति कब हो गयी होती। मानवता और सदगुणों के प्रति विश्वास लेकर ही मानव आज भी अस्तित्व धारण किय हुये हैं जो यह विश्वास चला जाय तो मानव के लिये दूसरा आसरा ही न रहे।

सद्गुणों की सफलता और सुफलता के सम्बन्ध में डगमगाती हमारी श्रद्धा सन्तोष शांति व मंगलता द्वारा ही दृढ़ हो सकेगी, यंत्रों के द्वारा कदापि नहीं। यंत्र का सम्बन्ध जड़ मानव के साथ है अर्थात् मानव के शरीर के साथ है। वे मानव की लोलुपता को बढ़ाते हैं, उसे दीन हीन, और कंगाल बना डालते हैं। उसे सुख के, भूत के पीछे दौड़ाते हैं परन्तु सच्चा सुख क्या है; यह वे बता नहीं सकते। यहाँ हम एक देश या व्यक्ति की बात नहीं; समग्र संसार का समग्र–मानव जाति का विचार करते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आज भी हम श्रीकृष्ण जयन्ती (कृष्ण जन्माष्टमी) मानते हैं, उसे अकारण नहीं मनाते। श्रीकृष्ण का जीवन इस यांत्रिक विध्वँसात्मक शक्ति के सामने एक बड़ा आश्वासन है। आज विज्ञान का, दूसेर शब्दों में कहें तो, विध्वँस का इतना प्राबल्य हैं कि हमारी इच्छा न हो तब भी हमें उसके साथ घिसटना ही पड़ता है। आज विज्ञान के कारण जगत बिल्कुल निकट आ गया है। हम जगत से या विज्ञान से अलग या अलिप्त नहीं रह सकते। हमारा जीवन समग्र जगत के साथ जुड़ा है। हम यह न सोचें कि "मैं दुनिया के एक कोने में बैठा हूँ, मेरा जगत से क्या सम्बन्ध है?" विदेश में यदि दो राजनीतिज्ञ ज़रा गर्म चर्चा करें, तो यहाँ के बाज़ारों में भाव चढ़ जाते हैं। आज एक देश की बात दूसेर देश में तुरन्त फैल जाती है। आज कुछ इस तरह का विचार नहीं होता कि व्यक्तिविशेष अमुक गाँव या अमुक देश का है। विज्ञान ने जगत को एक सूत्र में बाँध दिया है। इसलिये आज समग्र विश्व की एक ही राष्ट्रसभा-विश्वसभा (वैश्विकपरिषद) होनी चाहिये, इस बात की महापुरुषों की ओर से हिमायत रही है। इसलिये जगत के सुख-दुःख से हम अलग नहीं रह सकते, उसके साथ हमें समरस होना ही है, उसके सुख-दुःख के साथ हमारा सम्पूर्ण जीवन जुड़ा हुआ है। '**वासुदेवः सर्वमिति**' का पाठ रटे बिना काम चलेगा ही नहीं। समग्र विश्व की एकता सिद्ध किये बिना दूसरा चारा नहीं। इस एकता के लिये धर्म व आध्यात्मिक शक्ति के बिना काम नहीं चलेगा। यंत्रशक्ति पर वह टिक नहीं सकता। यदि विश्व-सभा स्थापित होगी तो वह मात्र बल या शक्ति के आधार पर या उसके विश्वास पर जगत की एकता स्थापित नहीं कर सकेगी। इसके लिये धर्म की आवश्यकता रहेगी, ऐसे विश्व-सभा का मुख्य अंग धर्म ही होगा।

विश्वमान्य धर्म की कल्पना

जगत के महान विचारक व तत्वचिन्तक आज इसी दृष्टि से विचार कर रहे हैं। H. G. wells का नाम तो उनमें विख्यात है। उनकी सनसनीखेज़ व रोमाञ्चक कथाओं, उपन्यासों को बहुतों ने पढ़ा होगा। परन्तु उन्होंने महान प्रश्नों की छानबीन करनेवाली अर्थ गंभीर पुस्तकें लिखी हैं। "Outlines of the History of the world" नामक पुस्तक में उन्हों ने विश्व राजसभा की संभावनापर शोध की है। ऐसी राजसभा शक्ति पर नहीं अपितु भक्ति पर ही आधारित होनी चाहिये। मानव प्रेम, व्यक्ति प्रेम पर यदि वह निर्मित होगी तभी वह टिक सकेगी; ' ऐसा मन्तव्य उन्होंने व्यक्त किया है। अर्थात् धर्म का बन्धन होगा तभी वैश्विक राजसत्ता टिकी रह सकेगी; परन्तु वह धर्म, आज हम जिसकी कल्पना करते हैं वैसा संकुचित नहीं होगा, प्रतिक्रियात्मक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(Reacitonary) थी न होगा बल्कि तात्त्विक पार्श्वभूमी पर ही आधारित होगा। वे लिखते हैं- " It Will be tosed upon a common world Religion very much simplified and universalised and better understood" यह धर्म कैसा होना चाहिये इसकी व्याख्या करते हुये वे लिखते हैं – ' It will not be christianity nor Islam, nor Buddhism, nor any such specialised form of religion, That religion will be based on selfless Human service. " अर्थात् " ऐसी विश्वसभा बहुत ही सरल, सादे तथा सभी सरलता से समझ सकें ऐसे सामान्य विश्वधर्म पर आधारित होगी। ईसाई, इस्लाम, बौद्ध अथवा किसी दूसरे धर्म विशेष पर यह आधारित नहीं होगी। इसकी रचना निःस्वार्थ मानव सेवा के धर्म पर हुयी होगी; अर्थात् निष्काम कर्मयोग पर आधारित होगी।'' इस कथन द्वारा भावि विश्वधर्म के रूप में ईसाई, इस्लाम या बौद्ध-धर्म को नहीं अपनाया जा सकता, यह बात उन्हों ने स्पष्ट कर दी है। उन्होंने इन सभी सम्प्रदायों पर तलवार चलाकर आज के विचारवान मानवों की आवश्यकता (Neccessity) क्या है?! उनका विचार-प्रवाह किस दिशा में दौड़ रहा है, इस का स्पष्ट निर्देशन किया है। वे कहते हैं कि इन संपूर्ण संकुचित विचार एवं साम्प्रदायिकता के विवादों का नामोनिशान भी जहाँ न हो ऐसा मानव सेवा का (Selfless human service) निष्काम कर्मयोग का धर्म ही मान्य होगा।

एकमेव सुलझाव – निष्काम कर्मयोग

हमें शंका होगी कि इस्लाम, बौद्ध, ईसाई धर्म से यदि दिग्दर्शन न मिले तो दूसरा ऐसा कौन सा धर्म हो, जो जगत का सामान्य धर्म बन सके ! उत्तर स्पष्ट है-जो जगत की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेगा, वही जगत का सामान्य धर्म बन कर रहेगा। श्रीकृष्ण यदि जगत की आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकते हों तो वे जगद्गुरु बन सकेंगे। गम्भीरता से विचार करनेवाले किसी भी चिन्तक को स्वीकार करना ही पड़ेगा कि जगत की आवश्यकता को सन्तुष्ट कर सकनेवाला कोई चरित्र है तो श्रीकृष्ण का ही है। भावि विश्व-सभा में निःस्वार्थ मानव-सेवा (selfless human service) की आवश्यकता रहेगी। श्रीकृष्ण का जीवन -निःस्वार्थ मानव-सेवा का मूर्तिमंत प्रतीक है। श्रीकृष्ण किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय के आराध्यदेव नहीं। वे तो जगत के आराध्यदेव हैं, जगद्गुरु हैं।

श्रीकृष्ण ने आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व उद्बोधी गीता में इस निःस्वार्थ मानव-सेवा की हिमायत की गई है। निरहँकारिता की बात भी श्रीकृष्ण ने गीता में समझायी है। गीता की दृष्टि मानव मात्र के ऊपर ही नहीं अपितु जीव मात्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर है। गीता के विचारक आज के विचार कों की अपेक्षा एक कदम आगे गये हैं। वह निःस्वार्थ मानव-सेवा (Selfless human service) की ही नहीं बल्कि '**सर्व भूत हितेरताः**'- समस्त भूतों (जीवों) के हित की बात करती है। सम्पूर्ण मानवता के हितों की अपेक्षा एक कदम आगे आ कर सम्पूर्ण जीवों के हित के लिये गीताकार की आतुरता है। अर्थात-केवल मानव ही नहीं वरन् जीव मात्र की निःस्वार्थ भाव से सेवा करने की बात गीताकार करते हैं सामान्य विश्वधर्म के लिये सम्पूर्ण आवश्यक तत्त्व इसमें समाहित हैं।

गीता का प्रत्येक पृष्ठ निःस्वार्थ सेवा का आदेश देता है। सारे ग्रन्थ में हमें इसके अतिरिक्त और कुछ देखने को ही नहीं मिलता। इसमें किसी प्रकार की दलबंदी की कोई बात ही नहीं मिलता। लोगों को ऐसे ज्ञान की प्यास लगी है जिसे केवल गीता ही बुझा सकती है। भविष्य में कभी ऐसी प्यास लगेगी इस बात का श्रीकृष्ण को पता था और इसीलिये हजारों वर्ष पूर्व दीर्घ दृष्टा श्रीकृष्ण आज के मानव की तृषा शान्त करने का प्रबन्ध कर गये हैं। जगत की तृषा शान्त करने के लिये ही वह बाहर पड़े थे। इसीलिये उन्हें परिपूर्ण कर्ता-जगद्गुरु-कहा गया। मैं निश्चित रूपसे कहता हूँ कि वैश्विक-सभा को निःस्वार्थ मानव-सेवा के आदर्श धर्म के मार्गदर्शन के लिय यही ग्रंथ उपयोगी सिद्ध होगा।

वेल्स और सरेल के अभिप्राय

H. G. Wells की "First And Last Things" नामक पुस्तक में जगत को खूब फटकारा गया है। उनकी कहानियाँ भी क्षणिक आमोद (Recreation) के लिये ली जा सकनेवाली नहीं है। उपर्युक्त पुस्तक धर्म की दो सम्भावनाओं पर प्रकाश डालती हैं।

The co-ordination of the species to a common, general end and the quest for personal salvation are the two aspects, the outer and inner, the Social and the indvidiual aspects of essentially the same desire" इस प्रश्न की छानबीन करते हुये वे कहते हैं कि विश्व शाँति के लिये ऐसे धर्म की आवश्यकता है जो कि व्यक्ति और समाज याने जगत पर तथा आन्तरिक व बाह्य विचारों पर अंकुश रख सके। व्यक्ति और समाज दोनों का जहाँ विचार हुआ हो वही धर्म जीवन के लिये उपयोगी हो सकता है। केवल परलोक का ही विचार करनेवाले कई धर्म होते हैं और केवल इहलोक का विचार करनेवाले भी बहुत से धर्म होते हैं। कुछ धर्म इहलोक और परलोक दोनों का विचार करने वाले होते हैं, परन्तु हमें आज इहलोक तथा परलोक का विचार कर सामाजिक स्थिरता लानेवाला एवं व्यक्ति का वैयक्तिक विकास करनेवाला सर्वांगीण धर्म चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैश्विक राज-सभ के संविधान में भी ऐसे ही धर्म की आवश्यकता है। बर्ट्रान्ड रसल ने "Social Reconstruction" पुस्तक में जगत के सम्पूर्ण धर्मों का विवेचन कर उनका वर्गीकरण किया है। वे लिखते हैं कि- "Religion is partly personl and partly social; to the protestamt it is primarily perssonal, to the catholie it is Primarily social." उन्हें प्रोटेस्टैन्ट धर्म भी perimarily personal लगता है। इस सारी विवेचना के पश्चात वह इस निर्णय पर आते हैं "It is only when the two elements are intimately blended; that neligion becomes a powerfl force in moulding Society अर्थात् यह ऐसा धर्म होना चाहिये जो जगत के उलटे-सीधे प्रवाहों के बीच निश्चल खड़ा रह सके और जगत, व्यक्ति तथा समाज को सच्चा मार्ग बता सके!

संक्षेप में जगत को किसी प्रकार की साम्प्रदायिक संकुचितता के दायरे से मुक्त धर्म की आवश्यकता है। किसी एक वस्तु या व्यक्ति के आग्रह से रहित धर्म ही व्यक्ति और समाज का जीवन उन्नत कर सकता है, इहलोक और परलोक में मानव को सुख, शाँति और समाधान दे सकता है, तथा ऐसा धर्म ही विश्व-धर्म बन सकता है।

धर्म में किसी भी प्रकार का आग्रह नहीं होना चाहिये। उसके सिद्धान्त ऐसे होने चाहिये जो बुद्धि पर घिसने के पश्चात टिक सकें। जिस धर्म में ऐसे सिद्धान्त होते हैं वही धर्म काल की गुहा में नहीं समाता और प्रतिकूल हवा के झोकों से हिल नहीं उठता। ऐसे धर्म का मस्तक हमेशा ऊँचा रहता है, गीता ने श्रीकृष्ण अर्जुन को ही नहीं अपितु समस्त मानव-जाति को कहा है। इसमें लिखी बात को बुद्धि पर घिसकर देखो, सोचो और फिर जैसा तुम्हें ठीक लगे वैसा करो। योग्य लगे तो स्वीकार करो नहीं तो फेंक दो -

'विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु!'

श्रीकृष्ण को पूर्ण विश्वास था कि जो कोई भी इस उद्बोधित धर्म का आमूलतः अथ से इति तक पूर्वाग्रह रहित सागोपांग विचार करेगा, तो वह उसे अपनायेगा ही। जैसे अर्जुन ने कहा वैसे वह भी कहेगा-

"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा......करिष्ये वचनं तव।"

इस्लाम, बुद्ध और ईसाई धर्म के सिद्धान्त उदात्त होने पर भी संकुचितता के दायरे से परे नहीं हैं। उनमें 'मेरा सम्प्रदाय' की एक संकुचितता देखने को मिलती है। और जहाँ सम्प्रदाय आया वहाँ बुराई आ ही जाती है। इसीलिये वे मानव-मात्र के सामान्य धर्म नहीं बन सकते। जिसमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यक्ति और समाज का मुक्त मन से विचार किया गया हो वही धर्म मानव-मात्र का धर्म बन सकता है। तात्त्विक दृष्टि से विचार किया जाय तो समझ में आ जायेगा कि जो मानव जाति का सुख देखे, वही 'अनहंवादी' धर्म गीता ने समझाया है अतः गीता का धर्म ही विश्व धर्म बनने के योग्य है।

"गीता" में सर्वभूत की हितदृष्टि

व्यक्ति के साथ वैश्विक विचार, उसी प्रकार मानव विकास के साथ सर्वभूतहितत्व की बात गीता ही समझा सकती है। अन्य किसी धर्मग्रंथ ने इतनी बड़ी वैचारिक कूद नहीं लगायी। उसी प्रकार श्रीमन्त-दरिद्र, विद्वान-अविद्वान, सद्‌गुणी-दुर्गुणी, सबल-निर्बल सभी को एक बैठक पर बिठाकर '–**परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ**'–एक दूसरे पर प्रेम रखकर अपना श्रेय सिद्ध करो, ऐसा उपदेश गीता ने ही समझाया है। गीता के कहे सिद्धान्तों में न तो संकुचितता दिखती है और न सीमाबन्दी। विश्व की निःस्वार्थ सेवा करना ही इसका मुख्य सूत्र है। आज जगत को जिस धर्म की आवश्यकता है उसे गीता ही पूरा कर सकती है। उसके विचार पूर्णतया अनुकूल हैं। जगत के विचारशील मानवों को ऐसे धर्म की प्यास लगी है। ऐसे समय में 'हमारे पास पानी है'–ऐसी आवाज लगायेंगे तो सम्भवतः वे यहाँ आयेंगे और सभी इकठ्ठे हो जायेंगे, तब कदाचित एक आध पीढ़ी के पश्चात् भी विश्व-संघ की कल्पना सफल हो सकेगी। किन्तु यदि हम जगत को गीता बताते फिरेंगे अथवा बड़ी बड़ी बातें करते रहेंगे तो इतने से ही सभी वैष्णव नहीं बन जायेंगे। यदि हम उनकी पुकारा सुनेंगे तो ही वे हमारी भी पुकार सुनेंगे। जगत से दूर रहने का विचार हमें छोड़ना होगा।

श्रीकृष्ण मात्र भारत की भूमि में ही नहीं अपितु जगत के गोले पर सुदर्शन चक्र धारण किये खड़े हैं, ऐसा चित्र दृष्टि के सामने निर्माण कीजिये। वे द्वारिका, मथुरा या भारतके ही नहीं किन्तु समस्त विश्वके गुरु हैं, इसीलिये गाया गया है–'**कृष्णं वंदे जगद्गुरुम्**'। जगत को जिस वस्तु की आवश्यकता है उसे गीता पूरा कर सकती है, इसलिये गीता-धर्म मानव मात्र का धर्म बन सकता है।

विज्ञानने केवल ध्वंसकार्य ही नहीं किया; अत्यआधिक अनिष्ट करनेवाले ने थोड़ा बहुत इष्ट भी किया है। अच्छाई के लिये या बुराई के लिये पर जगत को विज्ञान ने निःशङ्क एक किया है। प्राचीन काल में केवल पाँच कोस जाने में अठारह घण्टे लगते थे। आज भारत से इंग्लैण्ड अठराह घण्टे में पहुँचा जाता है। विमान, तार, टेलिफोन और टेलिविजन ने, जगत के भिन्न-भिन्न देशों के बीच का अन्तर नगण्य कर दिया है। आज भारत और इंग्लैण्ड के बीच का व्यवहार ध्वनिगति से हो रहा है, सामायिक व्यापार-भाव और राजकीय मंत्रणाएँ बहुत ही कम समय में हो सकती हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जगत पर विज्ञान का यह उपकार है। विज्ञान ने तो अपना कार्य कर लिया है। अब ज्ञान को अपना कार्य करना शेष है। बुद्धि से विज्ञान की शक्ति का सद्व्यय करना है। यदि बुद्धि इसका सदुपयोग नहीं करेगी तो विज्ञान ध्वँस का ही कार्य करेगा, और यदि ऐसा हुआ तो विज्ञान एक दिन सम्पूर्ण मानवजाति को ध्वंस करके ही शाँत होगा।

इस बात को महान विचारक और तत्त्वाचिन्तक अच्छी तरह से समझते हैं। इसीलिये वे जगत को विनाश से उबारने के लिये विश्व राजसभा और विश्व-धर्म की हिमायत कर रहे हैं। वेल्स, रसल आदि विश्वविचारक क्या कहते हैं यह हमने जान लिया है। वेल्स, रसेल आदि तत्त्वचिन्तकों ने विश्वसभा के लिये जिस प्रकार के धर्म का चिन्तन किया है, उस प्रकार का कोई भी धर्म है तो वह एकमात्र गीताधर्म ही है। इस प्रकार अनहँवादित्व, परस्पर-भावना आदि जो बातें उनको चाहिये हैं उन सब बातों पर गीता ने विचार किया है।

गीता ने जो विचार दिये हैं वे जगत को मानने ही होंगे। इसके विचार विश्व के मानवों के लिये हैं, कोई एक आध धर्मसम्प्रदाय के लिये गीता नहीं। अनहंवादित्व, सर्व भूतहित, पारस्परिक-भावना आदि विचार तो गीता का हृदय हैं। इसलिये गीता के धर्म जगत को अपनाना ही पड़ेगा। आगे बढ़कर कहूँ तो गीता के प्रत्येक शब्द का जो वास्तविक भावार्थ है, वही भावार्थ जगत को अपनाना पड़ेगा। हाँ, कदाचित इसे नया वस्त्र (आवरण) पहनाकर संसार के सन्मुख प्रस्तुत किया जाय, यह सम्भव है। परन्तु नये वस्त्र के अन्दर की असली वस्तु "गीता" ही होगी। वस्तुतः गीता के शब्दों को मानने की आवश्यकता है लेकिन ऐसा न हो सके तो उसका भाषान्तर तो है ही और जब ऐसा होगा तब संसार भर के लोग श्रीकृष्ण को पहचान सकेंगे; उनके चरण चूमेंगे और वे भी हमारे साथ कहने लगेंगे-"**कृष्णं वंदे जगद्गुरुम्।**"

विश्व को आज एक वैश्विक धर्म की तृषा है, वह उसे छिपाने के लिये व्यर्थ प्रयत्न कर रहा है। श्रीकृष्ण ने हमें गीतारूपी जल दिया है किन्तु हमने यह जल विश्व के सामने नहीं रखा। हमको याद रखना चाहिये कि इस पर मात्र हमारा ही अधिकार नहीं है, समस्त विश्व का इस पर अधिकार है। इसीलिये हमें इस जल के द्वारा संसार की तृष्णा शांत करनी चाहियें। जगत को कहना चाहिये, यदि तृषित हो तो आओ, जल हमारे पास है, इसे स्वीकार कर अपनी तृष्णा शाँत करो। जल केवल हमारा ही नहीं उस पर तुम्हारा भी अधिकार है।

आज के मानव की समस्याओं का समाधान श्रीकृष्ण ने पहले से ही ढूँढ कर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रखा है। उसकी प्रत्येक कठिनाई और परेशानी का हल गीता से मिल रहा है। केवल आवश्यकता है उसके भावार्थ को समझने की और उसके हृदय को पहचानने की। गीता इतनी पुरानी होने पर भी नित्य नवीन है। आज की समस्त समस्याओं का समाधान गीता से मिलकर ही रहेगा। इस दृष्टि से श्रीकृष्ण की ओर देखेंगे तो गीता के उद्‌गाता श्रीकृष्ण नये लगेंगे। आज के लोगों के मार्गदर्शन के लिये श्रीकृष्ण ने जैसे गीता आज (तीस अगस्त उन्नीससौ तिरपन) के दिन ही न कही हो, ऐसा लगेगा! जगत को यह सच्चा मार्ग दिखाती है। जगत को मार्गदर्शन करनेवाला इसका तत्त्वज्ञान है। ऐसी गीता को 'हमारी है' कह कर बाँधा नहीं जा सकता।

सच्ची कृष्णभक्ति

विज्ञान ने जगत को भौतिक एकता दी है; शरीर से एक किया है। उसे मन से एक करने का कार्य ज्ञान का है। गीता जगत को मन, बुद्धि और आत्मा की एकता देती है। जगत को मन से, बुद्धि से और आत्मा से एक करने का कार्य धर्म का है। और गीता इस धर्म को सिखाती है। यदि इस प्रकार विचार करेंगे तो आज से पाँच हजार वर्ष पहले श्रीकृष्ण का शरीर का लय हो गया है, इस बात को हम मान ही नहीं सकेंगे। हमें श्रीकृष्ण सदैव सजीव और अपने में ही बसे हुये लगेंगे। इसलिये यदि हमारी श्रीकृष्ण-भक्ति सच्ची है तो श्रीकृष्ण के इस प्रेम-रस का जगत को पान करा, उसकी तृषा शाँत करने के लिये सम्पूर्ण प्रयत्न करने चाहिये, उसकी हमे सौगन्ध लेनी है। यदि हम उसके उपासक हैं तो हमें कमर कस कर काम करना चाहिये, यही सच्ची कृष्णभक्ति है।

आप कहेंगे-शास्त्रीजी पुराने जमाने की पुरानी बातें करते हैं। बीसवीं सदी में भी धर्म क्या और बात क्या? लेकिन यदि आँख खोलकर हमारे अमूल्य ग्रन्थों को पढ़ेंगे तो आपका भ्रम नष्ट हो जायेगा। धर्म को डुबाने की बातें करने-वाले जगत के विचारकों के मन्तव्य पढियेगा। धर्म के नाम पर धर्म को सीमीत न बनाअें; धर्म पर पर्दा न डालें; मिथ्या या रूढ़ि (form) का पदा उतार फेंकें; धर्म का सुधार करना पड़े तो भी अवश्य करें। प्राचीन युग में स्त्रियाँ परदा करती थीं परन्तु आज उन्होंने पर्दा निकाल फेंका है न? किन्तु आज धर्म को पर्दा पहनाया जा रहा है। हम खराब बुर्का फेंक दें और जगत-गुरु श्रीकृष्ण का तत्त्वज्ञान जगत को अपनाने दें। जगद्‌गुरु का तत्वज्ञान जगत के लिये है। इसीलिये आज हम पाँच हजार वर्ष पहले के श्रीकृष्ण का नहीं, अपितु आज के श्रीकृष्ण का जन्म दिवस मना रहे हैं।

आज बीसवीं सदी के श्रीकृष्ण की आवश्यकता है। श्रीकृष्ण आ ज उन्नीससौ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तिरपन) के भी हैं। हम श्रीकृष्ण को भूतकाल की शक्ति के रूप में नहीं, बल्कि सदैव जगत को मार्गदर्शन करानेवाली शक्ति के रूप में मानते हैं। आज उनके जन्म-दिवस पर उनके तत्त्वज्ञान को समझने का प्रयत्न करें। अमुक लोग ही जिस में श्रद्धा रखते हों, आज हमें ऐसे श्रीकृष्ण की नहीं, जगद्गुरु श्रीकृष्ण की आवश्यकता है। श्रीकृष्ण के जीवन की समीक्षा करें तो भगवान श्रीकृष्ण के प्रति हमारा आदर बढ़ जाना चाहिये, छाती अभिमान से नहीं, अस्मिता के भाष से फूल जानी चाहिये। 'श्रीकृष्णं वंदे' कहने के बाद हम नतमस्तक बनें, विनम्र बनें।

आज हम श्रीकृष्ण की उपासना किसलिये करते हैं? भूतकाल में उन्हों ने महान कार्य किये थे इसलिये नहीं, वह तो भूतकाल की तरह आज के भी गुरु है; जगत की अटपटी समस्याओं का उन्होंने समाधान दिया है। मात्र अपने देश की ही नहीं, सम्पूर्ण जगत की विकट समस्याओं का यह एकमात्र हल है। इसे ही हम और जगत के विचारक मानव उनकी उपासना करते हैं। आनेवाले समय में मानवमात्र उनकी उपासना करेगा।

आज विज्ञान और धर्म के बीच द्वन्द्व-युद्ध चल रहा है, धर्म के सैनिक बनना है तो तैयार हो जायँ और भविष्य को उज्वला करें। श्रीकृष्ण के बताये हुये मार्ग का प्रचार करें और ज्ञान की सेना में भर्ती हो जायँ।

आज धर्म जाति, सँस्कृति या भाषा का मान भूलकर उन्नत बनी मानव-जाति के प्रतिनिधि के नाते श्रीकृष्ण के चरण-स्पर्श करने हैं। और '**सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः** का उद्गार निकालना है। आज हम उनकी मथुरा या भारत के श्रीकृष्ण के रूप में नहीं अपितु समस्त मानवता के गुरु के रूप में वन्दना करते हैं।

आज के राजनीतिज्ञों को श्रीकृष्ण की आवश्यकता है, वे उनका आश्रय लेते हैं इसलिये श्रीकृष्ण की महत्ता अत्यअधिक बढ़ गयी है।

एक बार जगतगुरु श्रीकृष्ण का वन्दन कर आज का प्रवचन पूरा करूँगा। आज पागल और मूर्ख ही जम्हाई लेते हुये बैठे रहेंगे। तत्त्वज्ञानी तो आनन्दमस्त होकर नाचते होंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग्यारहवाँ प्रकरण

पुरुषोत्तम कृष्ण

भगवान श्रीकृष्ण

भगवान श्रीकृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम थे; उन पुरुषोत्तम का आज गुणानुवाद करना है। आज का दिन भाग्य का दिन समझो, परन्तु कठिण भी कम नहीं, क्योंकि उन पूर्णावतार के गुणों का गान करना सरल नहीं। फिर पुष्पदन्त कवि की कविता मुझे सान्त्वना प्रदान करती है; माँ शारदा भी उनके गुणों का गान करे तो वह भी पूरा नहीं गा सकती, तब मुझ पांडुरंग का क्या सामर्थ्य ?

'असितगिरिसमंस्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवर शाखालेखिनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥'

एक जन्म में जिसने अनंत कार्य किये, उसे क्या (व्यक्ति) मानव कहा जा सकता है ? श्रीकृष्ण एक महान शक्ति थे। उनके अनंत कार्य दो प्रकार के थे; न्याय और दया (Justice and Mercy) का सुमेल वहाँ देखने को मिलेगा।

सज्जनों के लिये कृष्ण युगशक्ति–आद्यशक्ति और दुर्जनों के लिये कालशक्ति थे। श्रीकृष्ण को व्यक्ति के तौर पर न समझकर उनके अद्‌भुत कार्यों के रूप में उनका विचार करें, तो वे व्यक्ति से भगवान बन गये लगते हैं। भगवान के सभी गुण उनमें दिखायी देते हैं। वे जितने महान थे उतने ही सामान्य भी। **'अणोरणीयान् महतो महीयान'**–अणु से भी अणु और हिमालय से भी महान; अभिमान का तो नाम भी नहीं। उनमें सर्वशक्तियों का अविष्कार हुआ था; वे पूर्णावतार थे, फिर भी लघु से भी लघुत्तम थे। भगवान रामचन्द्र की तरह वे राजपुत्र नहीं थे, न राजवंशीय ही थे। इस प्रकार राज्य के साथ उनका जन्मजात सम्बन्ध भी न था। बन्दीगृह में पैदा हुये और ग्वालबालों के साथ नाचते–कूदते बड़े हुये। परन्तु आश्चर्य की बात तो यह कि राजा न होनेपर भी ऐसा कोई तात्कालीन राज्य न था जो कि उनकी कृपा के बिना चल सकता। यदि उनकी दृष्टी तनिक भी वक्र हुयी तो कितना ही शक्तिशाली राज्य क्यों न हो दूसरे ही दिन, तहस–नहस हो जाता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रीकृष्ण ने जगत को अणु की शक्ति का परिचय अपने जीवन के द्वारा कराया है। उन्होंने जगत को बता दिया कि लघु से–लघु मानव भी कितना अद्‌भुत कार्य कर सकता है। राम राजा के रूप में जन्मे थे; युवराज थे, फलतः उनके कार्यों में स्वाभाविक सरलता थी जब कि श्रीकृष्ण छोटे भाई के रूप में जन्मे थे; उनके सामने कठिनाइयाँ थीं परन्तु वे 'बड़े भाई' बन गये।

भावमधुर गोपालकृष्ण

उनका बचपन ऐसा था जिससे किसीको भी ईर्ष्या हो। किन शब्दों में उनके बचपन की महिमा गावें? जगत के दूसरे किसी भी काव्य की अपेक्षा कृष्ण के बचपन की बाल--लीला में जो मधुरिमा है, वह अन्यत्र देखने को नहीं मिलती। उस मधुरिमा का वर्णन हो नहीं सकता। मात्र शुकदेवजी ही वर्णन कर सकते हैं। (श्रीखण्ड की तरह खाने पर ही उसकी मधुरता का पता चलता है।) वे ज्यों हीं बड़े हुये उन्होंने तुरन्त जगत के उत्थान का कार्य–धर्म का कार्य हाथ में ले लिया। ऐसा सुन्दर सुमधुर बचपन और भव्य, उदात्त यौवन अर्थात् श्रीकृष्ण चरित्र। ऐसा सुन्दर समन्वय जगत के दूसरे किसी महामानव के जीवन में देखने को नहीं मिलता। कोई भव्य-उदात्त होगा, कोई सुमधुर होगा, परन्तु दोनों का ऐक्य देखने को नहीं मिलता। इसीलिये तात्कालीन विद्वान, राजपुरुष, गोपियाँ, और स्थितप्रज्ञ, श्रीकृष्ण को देखकर मुग्ध हो गये थे। अरे! उनकी बात तो जाने दो, आज भी पाँच हजार वर्षों के दीर्घ काल पश्चात भी आँग्लविद्या विभूषित स्त्री और पुरुष उतने ही प्रेम से और अपूर्व भक्ति से उनकी लीला, चरित्र का बाँचन, श्रवण, मनन करके अद्‌भुत आनंद प्राप्त करते हैं।

श्रीकृष्ण की लोकप्रियता काल–प्रवाह में क्षीण होने के बजाय बढ़ती ही रही है। काल उसे स्पर्श नहीं कर सका। इतना ही नहीं बल्कि आजकल के समर्थ राजनीतिज्ञ भी अपने कार्यों व विधानों के समर्थन में भगवान श्रीकृष्ण के नाम का उपयोग करते हैं। वे कहते हैं कि श्रीकृष्ण की गीता और महाभारत का समर्थन उन्हें प्राप्त है। बड़े–बड़े राजनीतिज्ञ श्रीकृष्ण के जीवन तथा उनकी गीता से प्रेरणा प्राप्त करते हैं। इस प्रकार आज स्थूल शरीर से श्रीकृष्ण भले ही नहीं हैं, परन्तु उनका व्यापक सूक्ष्म शरीर तो अनुस्यूत रूप में प्रत्यक्ष देखने को मिलता है।

इतनी महान् विभूति होने पर भी यदि हम "महाराजा कृष्ण" कहें तो उनका अपमान किया समझा जायेगा। राजाराम अच्छा लगता है, राजा-कृष्ण नहीं। उन्हें तो गोपालकृष्ण ही कहना उचित है। उनका नाम लेते ही हमारी आँखों सामने कन्धेपर लाठी लेकर गाय चराने वाले श्रीकृष्ण का चित्र खड़ा हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाता है। गायों की जो रक्षा करे वह गोपाल और भगवान सच्चे अर्थ में गोपाल थे !

लोकप्रियता का रहस्य

श्रीकृष्ण दीन-दुखियों के साथी थे। दुर्बल मानवों पर होने वाले अन्याय को वे सह नहीं सकते थे। अन्याय के सामने उनका मस्तिष्क तुरन्त ही उठ जाता था। विपत्ति में दुर्बलों के प्रति होनेवाले अन्ययों के विरुद्ध, उनकी सहायता करना उनका आदर्श था। मानव के बड़प्पन की कसौटी यहीं होती है। सुख में तो मित्र बहुत मिल जाते हैं परन्तु संकट के समय बगल में आकर जा खड़ा रहे, वही सच्चा मित्र। बाकी यदि हमारी तिजोरी में पाँच करोड़ रुपये पड़े हों और संकट में फँसे हुए को उसमें से एक कौड़ी भी न मिलती हो तो ऐसी दौलत से क्या लाभ? "**परदुःखेनापि दुःखिताः विरलाः**" अतुल सम्पत्ति और वैभव किसीके काम में न आवे तो उसका क्या प्रयोजन? छोटे परन्तु दाता मेघ को तो देखिये; वह ऊँचा जाता है, जब कि संग्रह करनेवाला--रत्नाकर-समुद्र नीचे है।

तृषा शांत करने वाली छोटी नदी भी अच्छी है परन्तु महासागर किस काम का? बड़े आदमी हमेशा देखने के ही होते हैं। श्रीकृष्ण का समग्र जीवन, मानव को श्रेष्ठ जीवन जीने के पुरुषार्थ में सहायक रूप बनने वाला है। चाहे कितनी ही आपत्ति हम पर आ पड़े श्रीकृष्ण का जीवन हमें नित्य नवीन प्रेरणा देता रहता है। संकट के समय श्रीकृष्ण का जीवन पढ़ें तो हमें नया उत्साह पा लेंगे। निराशा और हतोत्साह जीवन से चला जायेगा, ऐसा है उनके चरित्र का चमत्कार। अर्जुन की तरह '**नष्टो मोहः**' कहकर खड़े हो जाअेंगे।

श्रीकृष्ण की लोकप्रियता मात्र उनके पराक्रमों की आभारी नहीं है, बल्कि श्रीकृष्ण जैसे महापराक्रमी की विनम्रता ने लोगों का हृदय जीत लिया था। वह दीन दयालु थे। सामान्य से सामान्य और असामान्य से असामान्य भी वे बने थे। बचपन में गायें चरा कर ग्वालबालों के साथ उनमें से ही एक बनकर खेले-कूदे। बड़ी उम्र में जब सारे जगत में उनके नाम का डंका बजाता था, उनका नाम सुनकर राजा और महारथी काँपते थे, उस समय वे अर्जुन के सारथी बने। राजसूय-यज्ञ के समय उन्होंने अपने हिस्से में ब्राह्मणों की जूठी पत्तलें उठाने की ज़िम्मेदारी लिया। सामान्य मानव भी जिस कार्य को करने से हिचकिचाये और जो काम बहुत ही हल्का गिना जाय, वह काम पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ने स्वयं किया। संसार में इस प्रकार दूसरा नेता देखने को नहीं मिलेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अद्‌भुत नेता

जगत में एक भी ऐसा नेता है जिसका जीवन श्रीकृष्ण जैसा निष्पाप, स्वार्थहीन और पवित्र हो ? कृष्ण की शक्ति अपूर्व थी। गोवर्धनपूजा करके उन्होंने इन्द्र क 'अहम्' और अभिमान को नष्ट किया। ब्रह्मा का ज्ञान--मद उतार डाला; सत्ता--सम्पत्ति को ही सर्वस्व माननेवाले, पापाचरण करनेवाले, बड़े बनकर बैठे मानवों और सत्ताधीशों को नग्न कर डाला; उनका दमन किया और उनकी छाया तथा पँजों में फँसे हुये धर्म को मुक्ति की खुली हवा में ला दिया; नारदजी का भी मोह उतार डाला।

इस प्रकार अगणित महान कार्य उन्होंने किये, फिर भी रहे मात्र गोपीजन वल्लभ ही। आज तो जेब में थोडे पैसे हों तो मनुष्य बदल जाता है। मात्र दो काम अच्छे कर दिये तो अपने को दूसरों से भिन्न व बड़ा मानने लगता है। ऐसे लोगों को श्रीकृष्ण के जीवन की ओर देखना चाहिये, क्योंकि श्रीकृष्ण तो असामान्य व अद्‌भुत कार्यों को करने के पश्चात भी गोपीबल्लभ ही रहे। वे कभी भी लोगों से अलग हुये ही नहीं, 'मैं तुम्हारा हूँ और तुम मेरे हो'-यह था उनका जीवन-सूत्र। इस प्रकार विचार करते हुये श्रीकृष्ण के प्रति ईश्वरीय निष्ठा कि 'श्रीकृष्ण भगवान थे,' इस बात को अलग कर दो तब भी हमें महसूस होगा कि श्रीकृष्ण के जैसा पराक्रम कोई मांधाता भी नहीं कर सकता। असामान्य व्यक्ति होने पर भी सामान्य जनों में मिल जाने वाले अद्‌भुत नेता अर्थात् श्रीकृष्ण।

शौर्य की तो वे प्रतिमूर्ति ही थे। उनकी राजनीतिक पटुता, धारणावृत्ति आदि देखकर उनके जीवन का अध्ययन करनेवाले किसी भी समीक्षक को स्वीकार करना ही पड़ेगा कि श्रीकृष्ण जैसा व्यक्ति **'न भूतो न भविष्यति'**- किसी भी काल में न हुआ है और न होगा, वह ऐसा कहकर नतमस्तक होगा।

अलौकिक औदार्य

श्रीकृष्ण महापराक्रमी थे, इसलिये जगत के वे हृदय-सम्राट बन गये, ऐसी बात न थी। शौर्य के अतिरिक्त ऐसे अप्रतिम गुण उनमें थे कि जिन्होंने उन्हें जगत का हृदय-सम्राट बना दिया। निर्लोभता तथा स्वार्थहीनता श्रीकृष्ण-जीवन के सूत्र हैं। अब इनका विचार करेंगे।

श्रीकृष्ण के जीवन को समझने के लिये ये गुण कुञ्जी के समान है। उनके जैसा निर्लोभी दूसरा कोई भाग्य से ही देखने को मिलेगा, परन्तु दुःख की बात यह है कि आज श्रीकृष्ण-भक्त लोभी और स्वार्थी हैं। जो कंजूस है, पैसे के अतिरिक्त जिन्हें अन्य कुछ दिखता ही नहीं, ऐसे मनुष्यों को स्वयं को श्रीकृष्ण-भक्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहलाने का कोई अधिकार नहीं। अपनी सम्पत्ति, विद्या या शक्ति का दूसरों की भलाई के लिये उपयोग करनेवाला ही श्रीकृष्ण-भक्त हो सकता है। श्रीकृष्ण भक्त में सब से प्रथम गुण स्वार्थ--त्याग होना चाहिये।

'कृष्णो भूत्वा कृष्णं यजेत्।'

श्रीकृष्ण के हाथ में तो कई राज्य आ गये थे किन्तु उन सब को उन्होंने छोड़ दिया, किसी देश पर राज नहीं किया। ऐसा अद्‌भुत स्वार्थत्याग मर्यादा पुरुषोत्तम राम व पूर्ण पुरुषोत्तम कृष्ण के जीवन में ही देखने को मिलता है, जिन्होंने हाथ में आये राज्यों को छोड़ दिया; जिनके थे उन्हींको वापस दे दिये। श्रीकृष्ण के जीवन में बचपन के आरंभ से देहत्याग तक कभी कहीं भी लोभ या स्वार्थ देखने को नहीं मिलता।

आज के तथाकथित कृष्ण-भक्त उनकी बाल-लीला का वर्णन करते हुये थकते नहीं परन्तु स्वयं माखन दूसरों को न खिलाकर अकेले ही हड़प कर जाते हैं। ऐसे मानवों को कृष्ण--भक्त कैसे कहा जा सकता है? हम तो श्रीकृष्ण का महत्त्व घटा रहे हैं। वे माखन चुराते थे परन्तु अपने लिये नहीं। नंद राजा के घर दही-माखन की कमी न थी! भगवान माखन चुराते थे गोकुल के अन्य ग्वाल-बालों के लिये। एक के घर में माखन के मटके भरे हों और दूसरों के बच्चों को मक्खन चखने के लिये भी न मिलता हो, तो यह निरा अन्याय ही कहलायेगा। इसलिये श्रीकृष्ण जहाँ भी मक्खन होता, वहाँ से चुराकर दूसरों को देते थे।

श्रीकृष्ण ने शिशुपाल और जरासंध जैसों का विनाश कर उनके राज्यों को हस्तगत किया, किन्तु उनमें से कोई एक भी राज्य अपने लिये न रखकर प्रत्येक बार प्रत्येक के राजपुत्रों को ही वापस दे दिया। उनका उद्देश्य दुष्टों का नाश करना था; उन्हें प्रताड़ित कर आदर्श स्थापित करना था। सत्ता और लालसा से प्रेरित होकर उन्होंने कभी युद्ध नहीं किया। श्रीकृष्ण की चारों ओर सत्ता चलती थी। आदि से अन्त तक कितनी खटपट करने के बाद भी उनके नाम अदालत में एक इंच जमीन का भी रजिस्ट्रेशन (Registration)- पंजीकरण नहीं हुआ। उनके लिये तो सम्पूर्ण विश्व उनका घर था; इस जीवन-तत्त्व के कारण ही वे लोगों के हृदय--सम्राट बन गये थे। भावार्थ कि इतने बड़े--बड़े पराक्रमों को करने के बावजूद उनमें स्वार्थ लेशमात्र भी न था। स्यमंतक मणि की ही बात देखें। मणि हाथ में आने पर भी श्रीकृष्ण ने अपने पास न रखी। नित्य आठ भार सोना देनेवाली मणि को अपने हाथ से जाने देना कोई छोटी मोटी बात नहीं थी।

श्रीकृष्ण के जीवन जैसा अलौकिक, निःस्वार्थ, निर्लोभी जीवन विश्व में देखने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को नहीं मिलता। समाज के कल्याण के लिये उनका आत्यन्तिक प्रेम किस प्रकार का था उसे देखें।

कल्याण राज्य का विचार

स्वयं सत्ता और सम्पत्ति पाने के लिये श्रीकृष्ण ने कभी कुछ नहीं किया। ब्रह्मदेव की सृष्टि को मोहित करनेवाले रत्न हैं-कनक और कान्ता। इनमें से सम्पत्ति का त्याग करनेवाले मिल जायेंगे; कान्ता से भी मोहित न होने वाले विरले कोई मिल जायेंगे, परन्तु कीर्ति का मोह न रखनेवाले भाग्य से ही देखने को मिलेंगे। कनक और कामिनी श्रीकृष्ण को जरा भी विचलित न कर सके।

'वेधा द्वेधा भ्रमञ्चक्रे कान्तासु कनकेषु च।...'

श्रीकृष्ण नर से नारायण बने थे। वस्तुतः कनक और कान्ता का मोह छोड़ना अति कठिन है परन्तु अशक्य नहीं है, लेकिन कीर्ति का मोह छोड़ना लगभग दुष्कर ही है। कनक और कामिनी के मोह से अलिप्त रहनेवाले महापुरुष भी कीर्ति के लिये जो चाहे कुछ कर्म करते देखे जाते हैं। महाकवि मिल्टन (Milton) कहते हैं, 'शुद्ध बुद्धिवाले को भी ललचाने वाली यदि कोई वस्तु है, तो कीर्ति है'। अतः कनक और कान्ता को मानव लात मार सकता है परंतु कीर्ति का मोह उससे छूट नहीं सकता। स्वामी रामदास कहते हैं, **'मरावें परी कीर्तिरूपें उरावें'**।

महाकवि कालिदास भी दिलीप राजा से कहलाते हैं- **'पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु'**। श्रीकृष्ण ने भी अर्जुन को भय दिखाते हुये कहा है-

'अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥'

एडमण्ड बर्क (Admund Berk) ने भी कीर्ति का सुंदर ढंग से विवेचन किया है। 'Reflection on the Revolution in France'- नामक पुस्तक में कीर्ति के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है, 'कीर्ति के लिये मानव अपना प्राण-त्याग करने में भी हिचकता नहीं तो फिर वह इसके लिये यदि दूसरों का भोग दे; समाज का बलिदान कर दे, इसमें नवीनता क्या है?'

राष्ट्र के लिए कीर्ति का होम

जब कि श्रीकृष्ण ने तो समाज के लिये, मानव जाति के लिये, अपनी कीर्ति का बलिदान दे दिया था। समाज का बलिदान रुकता हो तो वे स्वेच्छा से अपकीर्ति को स्वीकार करने के लिये तैयार थे।

जरासंध के विरुद्ध लड़ते लड़ते श्रीकृष्ण रण छोड़कर भाग गये थे। कालयवन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व जरासंध का उभयपक्षीय आक्रमण मथुरा को तहस-नहस कर डालता। मथुरा को विनाश से बचाने के लिये श्रीकृष्ण मथुरा छोड़कर भाग गये। मथुरा के विनाश को रोकने के लिये उन्होंने अपकीर्ति भी मोल ले ली थी। आज भी इतिहास विवेचक जब उनके चरित्र की मीमांसा करते हैं तब शंका प्रकट करते हैं कि क्या श्रीकृष्ण सच्चे क्षत्रिय थे? क्योंकि '**युद्धे चाप्यपलायनम्**', युद्ध में पैर पीछे न फेरना-यह क्षत्रिय गुण उनके जीवन में देखने को नहीं मिलता। पाँच हजार वर्षों तक अपनी अपकीर्ति रहे, इसकी कोई चिन्ता नहीं की। अपनी कीर्ति को सुरक्षित रखने के लिये लोगोंको मौत के मुँह में नहीं धकेला जा सकता। कितना महान स्वार्थ-त्याग! इससे हम देख सकते हैं कि श्रीकृष्ण को कीर्ति का मोह न था, उन्हें मोह था लोगों की सेवा करने और धर्मराज्य स्थापित करने का।

समाज के हित के लिये, कीर्ति की बात तो एक ओर रखें पर अपने मुँह पर कालिख लगवाने के लिये भी वे तैयार थे। ऐसे महापुरुष के सम्बन्ध में 'वह छोटा था या बड़ा' ऐसी चर्चा निरी मूर्खता है। ऐसी चर्चा का कोई अर्थ नहीं। समाज के कल्याण के लिये स्वकीर्ति का बलिदान करने तथा सदा के लिये अपकीर्ति मोल लेने की जिसकी तैयारी हो, वही आदर्श समाजसेवक है। और उसीका समाज पर सच्चा प्रेम है ऐसा कहा जा सकता है। श्रीकृष्ण-जीवन का दर्शन करेंगे तो ज्ञात होगा कि वे ऐसे ही आदर्श समाज-सेवक व समाज-प्रेमी थे।

'श्रीकृष्ण का मथुरा से पलायन' पढ़कर आज के विवेचक, कृष्ण शूर थे या नहीं, इस बात में शंका करते हैं जब कि उनके शौर्य के सम्बन्ध में पाण्डव, भीष्म, द्रोण आदि को अंश मात्र भी शंका न थी। जगत-समर्थ श्रीकृष्ण का चरित्र हम अपने दिव्य-चक्षुओं से देखें; अपने स्थूल नियमों को एक ओर फेंक कर पाण्डव कोई नाम-मात्र के ही क्षत्रिय न थे, वे सच्चे, अति तेजस्वी क्षत्री थे। गीता में क्षत्रिय की व्याख्या इस प्रकार की गयी है— '**शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं...**' वे ऐसे ही थे।

अर्जुन क्षत्रियत्व का मूर्तिमंत अवतार था। 'पराभव' शब्द उसके शब्दकोष में भी न था। उसका एक नाम 'विजय' भी इसीलिये था। भीम के सम्बन्ध में क्या कुछ कहने की आवश्यकता है? इन लोगों में केवल शौर्य ही न था, साथ-साथ तेज भी था। ऐसे पाण्डवों ने ओजस्वी क्षत्रिय होने के बावजूद श्रीकृष्ण का नेतृत्व स्वीकार किया। इसका कारण यह था कि वे श्रीकृष्ण की शक्ति को समझते थे। अर्जुन श्रीकृष्ण के पीछे पागल बन गया था। श्रीकृष्ण के जीवन में शौर्य और तेज के साथ--साथ निर्लोभ और निःस्वार्थ वृत्ति भी थी, जो कि केवल ऋषि--मुनियों को ही सुलभ होती है। उनके जीवन में शौर्य इत्यादि गुण उच्च कोटि के थे। शूरवीर क्षत्रिय का वर्णन किया गया है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्षत्रियः क्षत्रियं जित्वा रणे रणकृतां वरः।
यो मुञ्चति वशे कृत्वा गुरुर्भवति तस्य सः॥

आदर्श क्षत्रिय

पराजित और शरण आये शत्रु को प्रत्यक्ष उपदेश दे कर मुक्त कर देनेवाले की अपेक्षा महान क्षत्रिय और कौन हो सकता है ? जब अग्रपूजा का प्रश्न खड़ा हुआ था, तब भीष्म पितामह ने कहा 'इस सभा में जितने राजा-महाराजा बैठे हैं, उनकी अपेक्षा श्रीकृष्ण महान् हैं। श्रीकृष्ण ने पराजित किसी भी राजा का राज्य हस्तगत नहीं किया और न ही उन राजाओं का मुण्डन ही कराया। और अधिक कहूँ, तो तुममें से कोई भी उनके साथ लड़ सके, ऐसा नहीं। फिर मेढ़क की तरह टर-टर क्यों करते हो ?'

ये उद्गार किसी सामान्य व्यक्ति के मुँह से नहीं निकले! परशुराम जैसे धीर-वीर के साथ युद्ध करनेवाले, भीष्म पितामह जैसे महारथी के मुँह से निकली हुयी यह अञ्जलि है। विदुर जी भी कुछ ऐसे-वैसे व्यक्ति न थे। वे प्रधान अमात्य थे। असामान्य व्यक्तित्ववाले थे। उन्होंने कौरवों को चेतावनी देते हुये कहा था- 'पाण्डवों पर आक्रमण करने से पूर्व अच्छी भांति सोचना। आज वे अकेले, अनाथ या अशक्त नहीं हैं; उनकी ओर श्रीकृष्ण खड़े हैं, और—

'बलवंतश्च दाशार्ह! बहवश्च विशांपते।
यतः कृष्णस्ततः सर्वे यतः कृष्णस्ततो जयः॥'

वे जहाँ खड़े होंगे वहाँ विरोधी सफल हो ही नहीं सकते; उनका व्यक्तित्व ही इतना अद्भूत है कि उनके सामने कोई टिक ही नहीं सकता, और यह भी याद रखो- **'यतः कृष्णस्ततो जयः'**। विरोधी भी उनके पक्ष में जायेंगे, इसलिए पागल मत बनो। सर्वस्व गँवाने की अपेक्षा पाण्डवों से आधा राज्य देकर सुलह कर लो'-ऐसी उनकी सलाह थी। पाण्डवों को आधा राज्य मिला। विदुर जी जितने भक्त थे उतने ही शूर और राजनीतिज्ञ भी थे।

अर्जुन और भीम-अर्थात्-साक्षात शक्ति पुंज। दोनों में शक्ति का बाहुल्य था। ऐसे शक्तिशाली अर्जुन ने भी एक बार कहा था कि तीनों लोकों में ऐसा कोई कार्य नहीं जिसे श्रीकृष्ण न कर सकें—

'त्रिषुलोकेषु तन्नास्ति यन्नकुर्याज्जनार्दनः।' तीनों लोकों में श्रीकृष्ण के लिये कुछ भी दुर्गम नहीं-यह प्रमाण-पत्र अर्जुन का है। अर्जुन ऐसा कहे, यह बात तो समझ में आ सकती है, परन्तु सदा प्रतिपक्ष में रहनेवाले, गर्व के मूर्तिमंत स्वरूप तथा आत्मश्लाघा के स्थायीभाव वाले महारथी कर्ण भी श्रीकृष्ण के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शौर्य के सम्बन्ध में उनका अत्याधिक सन्मान रखते थे—

'असंशयं वृष्णिपतिर्यथोक्तस्तथा न भूयश्च ततो महात्मा।'

"श्रीकृष्ण, जैसा तुम कहते हो उतने ही शूर हैं; इतना ही नहीं, मैं तो मानता हूँ वह इससे भी बहुत अधिक महान हैं," कर्ण ने आगे कहा था –"परन्तु मेरा विरोध तो दूसरे कारण से है। अपना पग-पग पर अपमान मुझसा क्षत्रिय सहन नहीं कर सकता, इसीलिए मैं उनका विरोधी हूँ।' इस प्रकार श्रीकृष्ण के प्रति मित्र-शत्रु सभी का सन्मान था। विरोधी भी उनकी कीर्ति-गाथा गाते थकते नहीं थे।

सर्व विद्या पारंगत

श्रीकृष्ण किसी विद्या में अधूरे थे ही नहीं, जिसमें पड़े उसमें पारंगत ही समझो-उसमें परिपूर्ण ही होते थे! वे धनुर्विद्या में अद्वितीय थे। अर्जुन ने मत्स्य-वेध किया, तब वह मछली को देख सकता था, परन्तु श्रीकृष्ण ने अदृश्य मछली को बींध डाला था। इनके अतिरिक्त किसी दूसरे की यह शक्ति ही न थी। श्रीमद्भागवत में उनके धनुर्वेद की कथा है।

श्रीकृष्ण की अष्टनायिकाओं में लक्ष्मणा नाम की एक पत्नी थी; वह भद्र देश के राजा बृहत्सेन की पुत्री थी। उसके स्वयंबर में द्रौपदी के स्वयंबर की तरह मत्स्य-वेधन रखा गया था। इस प्रसंग का वर्णन, प्रभासतीर्थ में बृहत्सेन की पुत्री, जब द्रौपदी से मिलती है तब उसने किया। ऐसा पराक्रम किसी एक भी योद्धा ने किया हो ऐसा इतिहास को अभी तक पता नहीं। पार्थ भी श्रीकृष्ण के आगे सूर्य के सामने दीपक जैसा था और गदा-युद्ध तथा मल्ल--युद्ध तो उनके मनोनुकूल खेल ही थे। यदि कोई जरा भी मिथ्या अभिमान करे तो वे तमाचा मारने के लिये तैयार रहते।

श्रीकृष्ण ने बता दिया कि दुराचारी सत्ताधीश पर भी आक्रमण हो सकता है। श्रीकृष्ण ने कहा, दुर्वृत्त सत्ता-सम्पत्तिवाले अपने कृत्यों से ही जाते हैं; सामान्य प्रजा -जन भी उनका हाथ खींचकर पदच्युत कर सकते हैं; ऐसा उनका अटल विश्वास था। इसीलिये जब हस्तिनापुर में विदुरजी ने कहा– 'आपने अकेले आकर ठीक नहीं किया,' तो श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया– "तुम तनिक भी चिन्ता न करो। ये सब इकट्ठे होकर मुझपर आक्रमण करे तो भी मेरे सामने टिक नहीं सकते। क्रोधित सिंह के सामने हिरणों का झुण्ड किस प्रकार खड़ा रह सकता है! ये सभी राजा तो मृगों की तरह डरपोक हैं। और श्रीकृष्ण ने पराजय को नहीं जाना!"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रीकृष्ण का यह कथन कदाचित् उनके जीवन के विपरीत लगेगा। उनके जीवन में कई बातें पारस्परिक विरोधी हैं, ऐसा ज्ञात होगा। कोई कहेगा, -जरासंध के आक्रमण के समय मथुरा छोड़कर भाग जानेवाला, राजधानी बदल डालनेवाला श्रीकृष्ण ऐसी बातें करे तो वह एक प्रकार से उसका अहंकार ही गिना जायेगा। परन्तु श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण जीवन ही विरोधाभास से भरा है; इसे समझने के लिये बुद्धि को खूब कसना पड़ेगा। सामुदायिक युद्ध का निर्णय व्यक्ति के पराक्रम पर ही अवलम्बित नहीं होता। वैयक्तिक पराक्रम और शौर्य का निर्णय सामुदायिक युद्ध में हो ही नहीं सकता। इस प्रकार युद्ध की तुलना नहीं की जाती। युद्धशास्त्र की नीति यह नहीं। श्रीकृष्ण ने यहाँ युक्ति का प्रयोग किया था और पराजय से विजय (Victory through defeat) प्राप्त की थी। उस समय श्रीकृष्ण की सेना लड़ती थी, श्रीकृष्ण--व्यक्ति न लड़ते थे। इस प्रकार श्रीकृष्ण के जैसा अलौकिक शौर्य, धनुर्विद्या, मल्लविद्या, गदा--युद्ध आदि महाभारत के अन्य किसी भी महारथी में देखने को नहीं मिलता।

अलौकिक तेजस्विता

श्रीकृष्ण एक तेज-पुंज के समान थे। जनसमूह में बिजली की तरह चमकते और अन्याय से जूझ पड़ना श्रीकृष्ण के आदर्श सूत्र थे। अन्याय के समाप्त करने की अपार शक्ति उनमें थी। वे जहाँ जाते मृतक मानवों में भी नयी चेतना प्रकट हो जाती और जहाँ श्रीकृष्ण खिसके कि फिर गड़बड़! कितने ही अशाँत वातावरण को शांत करने के लिये उनकी उपस्थिति मात्र पर्याप्त होती। उनके जीवन का मुख्य सूत्र भी यही था। छोटे से छोटे व्यक्ति पर भूल से भी अन्याय नहीं करूँगा और चाहे कितना ही बड़ा व्यक्ति क्यों न हो उसका अन्याय सहन नहीं करूँगा। श्रीकृष्ण--भक्त होने का दावा करनेवाला स्वयं कभी किसी के प्रति अन्याय नहीं करता; न दूसरों का अन्याय सहन करता है। धन, संतान या कौटुम्बिक प्रेम के वश होकर भी दूसरे के प्रति अन्याय नहीं करता। पुत्र--प्रेम के कारण पाण्डवों के प्रति धृतराष्ट्र के अन्याय को उन्होंने सहन नहीं किया, तो फिर अपनी बेटी का पक्ष लेकर सास का बहू पर किया अन्याय श्रीकृष्ण सहन करेंगे? और इस प्रकार का अन्याय करनेवाले श्रीकृष्ण के सच्चे भक्त नहीं हैं!

श्रीकृष्ण कहते रहते-"जो नम्र बने उसके साथ नम्रतापूर्ण बर्ताव अवश्य करो", परन्तु यदि कोई मिथ्या बड़प्पन दिखाए तो उससे दबो नहीं। उसे कहो--तू बड़ा है तो मैं तुमसे भी बड़ा हूँ।" उनके जीवन में हमें यह देखने को मिलेगा कि अन्यायियों और अभिमानियों से उन्हें बड़ी चिढ़ थी। "हम कौन? हम ही महान। हमारे सामने सिर उठाने वाला कौन?" ऐसा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बोलनेवाले सभी लोगों का अभिमान श्रीकृष्ण ने उतार दिया। यदि किसीने सत्तासंपन्न अत्याचारियों के जीवन को समाज के सामने नग्न कर उनके प्रति क्रोध-निर्माण किया और सन्तों को भी उनके प्रति उदासीन न रह कर कार्य-प्रवृत्त किया तो सर्वप्रथम श्रीकृष्ण ने ही। श्रीकृष्ण के पूर्व ये असुर अपने को ईश्वर समझते थे और कोई भी उनके मसखरों के सामने माथा ऊँचा नहीं कर सकता था; कोई उनके कृत्यों के लिये फटकार नहीं दे सकता था। श्रीकृष्ण ने ही इन सभी लोगों को यथोचित सबक पढ़ाया है।

द्यूत क्रीड़ा कर कौरवों ने पाण्डवों का राज्य हड़प लिया था। कौरवों के इस कृत्य को श्रीकृष्ण ने दिन--दहाड़े लूट की तरह देखा। उन्होंने कौरवों से कहलवाया कि "चार दिन की चाँदनी है, चैन से मौज उड़ा लो। फिर तो कृष्ण के साथ ही पाला पड़ा है।" इस प्रकार श्रीकृष्ण को अपने या दूसरों के प्रति अन्याय अनुभव होता तो वे क्रोधित हो जाते; यह तेज का प्रथम लक्षण है। इसलिये श्रीकृष्ण को अलौकिक, तेजस्वी व्यक्ति कहा जा सकता है।

अद्वितीय धैर्य और संशयरहितता

श्रीकृष्ण जैसा धैर्य भी कहीं देखने को नहीं मिलता। वे अलौकिक धैर्य के प्रतीक हैं। कभी भी वे अस्वस्थ नहीं हुये, चाहे कितना ही कठिण समय हो, वे धैर्य नहीं खोते। इतना ही नहीं पूर्णतः स्वस्थचित्त भी रहते। मथुरा पर सत्रह बार आक्रमण हुआ, परन्तु यह लोकनेता कभी घबराया नहीं, व्याकुल नहीं हुआ और कभी डिगा भी नहीं। भय क्या चीज है यह श्रीकृष्ण ने जाना नहीं था। उस समय कृष्ण की आयु भी अधिक न थी, पूरे युवान भी नहीं थे, फिर भी सदा निर्भय।

धैर्य और निर्भयता-यह प्रेम और संस्कार के ही परिणाम है। कालयवन को देखकर वे नगर छोड़कर जब बाहर निकले उस समय इन रणछोड़राय के मुँह पर भय का अंश भी देखने को नहीं मिलता था; अपनी शक्ति पर आत्मविश्वास ही प्रतीत होता था। उनके सम्पूर्ण जीवन पर दृष्टि डालें तो कहीं भय जैसी कोई भी वस्तु देखने को नहीं मिलती। हाँ, देखने को मिलता है उनका बचपन का भय! वह कृत्रिम भय था। माता यशोदा से डरते हुये बाल कृष्ण की लीला अलौकिक है। यह भय प्रेम का था, नाटकीय भय था। बाकी पाशवी-सत्ता या पशु-शक्ति के सामने वे कभी न तो कम्पित हुये, न भयभीत, और नहीं झुके। बल्कि उनको ही कँपाया है। श्रीकृष्ण का नाम सुनते ही मारे भय के उनके शरीर शिथिल हो जाते।

श्रीकृष्ण के धैर्य की परीक्षा सदैव होती थी, परन्तु वे कभी असफल नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हुये। अपने सारे जीवन में बहुत से राज्यों की उथल-पुथल करते समय, तथा सैकड़ों असुरों को मारते समय भी श्रीकृष्ण के ऊपर अनन्त संकट आये होंगे। परन्तु किसी भी अवसर में धैर्य छोड़कर निराश बने हुये श्रीकृष्ण देखने को नहीं मिलते। इसीको कहते हैं अलौकिक धैर्य।

उदासीनता या ऊब का तो उनके जीवन में नाम भी न था। आजीवन युद्ध के होने पर भी श्रीकृष्ण कभी उदास हो गये हों, ऊब गये हों, या अँगड़ाई लेते हुये सिर पर हाथ रखे बैठे हों, ऐसा कभी नहीं हुआ। उनके जीवन में आलस्य या उदासी को स्थान ही न था। उनका जीवन ताज़गी और स्फूर्ति से भरा था; सदा शाँत, ओजस्वी और तेजस्वी जीवन था। किसी भी कार्य में उन्हें किंकर्तव्यविमूढ़ता लगती ही न थी। अपना मार्ग उन्हें सदैव स्पष्ट प्रकाशित, और सरल प्रतीत होता था। फलतः उनका प्रत्येक कार्य पूर्ण विश्वास से ही होता था। मन में संशय रखकर कभी कुछ न करते। द्रोणाचार्य को मारने के लिये जाल रचा और धर्मराज से **'नरो वा कुञ्जरो वा'** कहलवाकर द्रोण को मरवाया। ऐसा करते समय धर्मराज की वृत्ति संशयशील थी, इसलिये वे अस्वस्थ बन गये थे, परन्तु श्रीकृष्ण ने तो यह कार्य पूर्ण शाँति व स्वस्थ चित्तसे तनिक भी संदेह किये बिना किया। उनकी चित्त--शक्ति शाँत और स्थिर थी।

युद्ध पूर्ण होने के पश्चात गाँधारी ने श्रीकृष्ण के प्रति अत्यन्त क्रोधित होकर कहा, 'मेरे कुटुम्ब का सत्यानाश करनेवाले तुम ही हो, परन्तु कृष्ण, याद रखो, तुम्हारे कुल का भी इसी प्रकार नाश होगा। '- श्रीकृष्ण ने तनिक भी हिचके बिना निश्चल वृत्ति से उत्तर दिया, 'तुम्हारे पुत्रों के दुष्कर्मों ने ही तुम्हारे कुल का सत्यानाश किया, अतः यह परिणाम बिल्कुल स्वाभाविक ही है। मेरे कुल के सम्बन्ध में जो निश्चित है उसका तुम मात्र समर्थन ही करती हो।' इस प्रकार किसी भी प्रसंग में उनके चेहरे के भाव बदले नहीं। मानव थोड़े समय के पश्चात हमेशा समझदार होता जाता है। परन्तु क्षण भर धक्का लगे बिना तो नहीं ही रहता। अपने कुल के सत्यानाश की इतनी बात सुनकर भी श्रीकृष्ण तो सदैव प्रसन्न वदन, शांत और स्वस्थचित्त ही रहे।

ज्वलंत जागृति

श्रीकृष्ण के जितनी सजगता और सतर्कता भी अन्य किसीमें देखने को नहीं मिलती। यों तो श्रीकृष्ण रण-क्षेत्र में अर्जुन के सारथी बने लेकिन युद्ध स्थल में प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान रखते थे। उनकी दृष्टि चारों ओर घूमती रहती थी। किसे प्रोत्साहन की आवश्यकता है; कौन थक गया है; किसे आराम की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आवश्यकता है; इन सभी बातों का वे पूरा ध्यान रखते थे। सात्यकि आदि महारथियों की समय आने पर सहायता करने के लिये वे दौड़े हैं। न्यायपरायण और धर्म-प्रेमियों की सहायता के लिये श्रीकृष्ण न दौड़ें तो दूसरा कौन दौड़ेगा? सब को जो बातें ज्ञात न हों वे बातें भी उनको ज्ञात थीं। वास्तव में अर्जुन की विजय का कारण श्रीकृष्ण की सजगता और सावधानी ही थी। श्रीकृष्ण थे, इसीलिये लड़ाई ज ती गयी।

जयद्रथ-वध के लिये अर्जुन ने एक दिन की प्रतिज्ञा की है। श्रीकृष्ण ने कहा, "जीवन क्या इतना सस्ता है? इस अविवेक पूर्ण कदम से ही उसे समाप्त करना है?" आज परीक्षा में अनुत्तीर्ण होनेवाले और प्रेम-भंग अनुभव करने वाले ऐसे अविचार से ही आत्महत्या करते हैं। जीवन में कोई उच्च ध्येय हो तो भव्य विचार होंगे न? वास्तव में कहाँ श्रीकृष्ण का प्रबल आत्मविश्वास और कहाँ आज के हमारे कृष्ण-भक्त युवा.ों की दुर्बलता! आज तो परीक्षा में अनुत्तीर्ण हुये कि आत्मघात। प्रेम में असफलता मिलीं, धोखा खाया कि आत्महत्या। मृदु जीवन तो हर कोई जी सकता है, कठोर जीवन का सामना करते हुये जो जियें वे ही मर्द।

आत्मघात करना कायरता है। अपने जीवन का अन्त करने का हमारा अधिकार नहीं। मानव को मारने का एक मात्र अधिकार भगवान का है। किसी के अधिकार में दखल देना अनुचित समझा जाता है। हम कुदरत के अधिकार में हाथ डालेंगे तो जल जायेंगे।

ध्येय के ऊपर ध्यान रखनेवाले; ध्येय-सिद्धि ही जिनकी सच्ची प्रतिज्ञा है, वे भावना या विकारों के वशीभूत होकर मन के द्वारा निर्मित संकट अपने ऊपर खींच लें यह उचित नहीं-यह था कृष्ण का मत। प्रतिज्ञा न करते हुये भी अर्जुन जयद्रथ-वध कर सकता था, परन्तु पौरुष के अभिमान में और पुत्र-शोक में फँसे अर्जुन के पास इतना विवेक भी नहीं रह गया था, तभी तो उसे शोक के कारण असली संकट की कल्पना ही न आई। वह तो रात को निश्चिंत होकर सो गया, परन्तु श्रीकृष्ण दूसरे दिन की योजना निश्चित करते सारी रात बैठे रहे। और दारुक को बुलाकर सारी योजना समझा दी।

महाभारत के युद्ध में श्रीकृष्ण की सावधानी पग-पग पर दिखायी देती है। उनमें यह सतर्कता बचपन से ही थी। गायें चराने जाते तो सभी ग्वालों पर उनकी दृष्टि रहती। किसी दिन कोई बालक गाय चराने न आता तो श्रीकृष्ण उसकी खबर लेने दूसरे ही दिन उसके घर पहुँच जाते। बचपन में श्रीकृष्ण को एक भी असुर धोखा नहीं दे सका। भिन्न भिन्न स्वरूपों में आनेवाले असुरों को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रीकृष्ण तुरन्त पहचान लेते और उन्हें 'स्वधाम' पहुँचा देते। असुर कहाँ--किस कोने में हैं यह जानने के लिये श्रीकृष्ण सतर्क रहते। वह मामा, फूफी या मौसी हो जो भी उसे दुष्ट को मारने के लिये तत्पर रहते। मौसी पूतना से भी श्रीकृष्ण ने उसका मुँह देखते ही पहचान लिया और यम–सदन पहुँचाया।

आज हम भी श्रीकृष्ण की अपेक्षा कम दक्ष नहीं। परपत्नी और परद्रव्य--हरण में सभी दक्ष हैं। **'परदार वित्तहरणे सर्वोऽपि दक्षो जनः'**--परस्त्री और पर--द्रव्य के हरण में हम कम सावधान हैं? श्रीकृष्ण अपने जीवन में तो दक्ष थे ही परन्तु दूसरों का जीवन भी वैसा ही हो, यह भी देखते।

मन के भावों के जानकार

श्रीकृष्ण मानस–शास्त्र के प्रणेता थे। उनके जैसा मानस-शास्त्र का गहन अध्ययन किसीका देखने को नहीं मिलता। मुख-मण्डल के भाव देखकर मन की बात वह जान लेते। 'श्रीकृष्ण तो भगवान थे इसलिये सब कुछ समझे', यह कहकर उनकी क़ीमत कम न करें। ऐसा समझने से उनका क़ामत घटती तो नहीं परन्तु हमारा जीवन उदासीन और निस्तेज अवश्य बन जायेगा। लोग मुँह पर चाहे कितने ही कृत्रिम भाव लेकर उनके पास जावें, वे ऊपर का भाव–वस्त्र हरण करने में समर्थ थे। यह थी श्रीकृष्ण की वस्त्र-हरण लीला, न कि स्थूल रूप में वस्त्र–हरण। पाप चाहे कितने ही सुंदर शृंगार कर के आवें, आडम्बर कर के आवें, तो भी उन्हें नग्न करने में वे जरा भी हिचकिचाये नहीं। पूतना मौसी बनकर आयी, भाँजे पर प्रेम--प्रवाह प्रदर्शित किया परन्तु श्रीकृष्ण उसे पहचान ही गये।

धृतराष्ट्र का पाखण्ड कोई नहीं जान सकता था। रो–रोकर व्याकुल होकर उसे एकाएक भीम पर ऐसा प्रेम उमड़ आया कि उसे सीनेसे लगाने की; इच्छा हो गयी। उसने कहा, 'भीम को आलिंगन करने की उसकी इच्छा हो गयी। उसने कहा, 'भीम को मेरे पास लाओ, मुझे उसका अलिंगन करना है।' हर किसी को भी ऐसा ही लगेगा कि अपने पुत्रों के मरने पर वृद्ध का हृदय परिवर्तित हो गया है और अब पुत्रों का प्रेम भतीजों पर उमड आया है। परन्तु श्रीकृष्ण उसका दुष्ट आशय तुरन्त समझ गये और भीम के बदले उसकी लौह प्रतिमा को उसके सामने बढ़ा दिया। आस–पास में बैठे लोगों को लगा कि श्रीकृष्ण को मज़ाक कब और किसके साथ करना इसका कुछ पता नहीं। किसीके भावों का विचार ही नहीं करते; हर एक को एक ही लाठी से हाँकते हैं और अपनी ही हठ रखते हैं। लोग ऐसा सोच ही रहे थे कि धृतराष्ट्र ने उस प्रतिमा को भीम समझ कर इतने प्रेम से आलिंगन किया कि उस लोह–प्रतिमा का चूरा हो गया। तभी लोग श्रीकृष्ण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की बुद्धि की क़ीमत आँकने लगे। लोहे की भीम की प्रतिमा का यह हाल हुआ, तो बेचारे भीम की क्या दशा होती, इसका किसको पता ?

श्रीकृष्ण लोगों के मन की बात जान गये थें, वे कहने लगे, "देखा न प्रेम !" हमें बहुत लोग कहते हैं, "आपका हमारा बहुत प्रेम है", परंतु वह कैसा है इसकी पारख होनी चाहिये। तभी वह कृष्ण भक्त ! जो हरदम बुद्दू बन जाये वह 'भगत' है, भक्त नहीं।

मर्मज्ञ

श्रीकृष्ण ऐसे दक्ष थे कि शत्रुओं और शैतानों का मर्मस्थान जान लेते और वहीं चोट करते। कंस, हंस, डिंभक, कालयवन, जरासंध और दूसरे राक्षसों को उन्होंने इसी रीति से नष्ट किया। द्रोण की दुर्बलता भी उन्होंने जान ली थी। द्रोण पुत्रप्रेम के कारण ही कौरवों के नौकर बने। द्रोण का सर्वस्व-उसका पुत्र अश्वत्थामा है, यह कृष्ण को पता था, इसलिये द्रोण को परास्त करना है तो उसके मर्मस्थान पुत्र--प्रेम पर चोट मारनी चाहिये, इसलिये वास्तव में नहीं तो बनावटी रूप में उसके पुत्र को मार डाला और द्रोण का मनोबल तोड़ दिया। द्रोण ने पुत्र--प्रेम के कारण ही शस्त्र–धारण किया था। 'अश्वत्थामा मर गया' जान कर द्रोण ने अपने शस्त्र त्याग दिये।

कृष्ण सदा सावधान रहते थे। समुदाय से उनका पलायन व्यक्तिगत पलायन नहीं, बल्कि स्थानान्तर था। तभी--स्थलान्तर कर के ही श्रीकृष्ण ने कालयवन को जीता। वे अपने घर में छिपे नहीं। कुटुम्ब में, समाज में, राजकार्य में, किसी भी ठिकाने, कोने कोने घूमनेवाली उनकी दृष्टि देखकर हम चकित हो जाते हैं। ऐसी सावधानी प्रत्येक व्यक्ति के पास होनी चाहिये; श्रीकृष्ण का चरित्र यही समझाता है। श्रीकृष्ण अर्थात् चतुर, सावधान और दक्ष व्यक्ति।

हृदय की असीम उदारता

तदुपरांत श्रीकृष्ण अलौकिक दानवीर भी थे। ब्राह्मणों को सवा रुपये का दान करने जैसा उनका दान न था। उन्होंने तो दान में सारे के सारे राज्य दे दिये थे। चक्रवर्ती राजा भी श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त करने के लिये हाथ पसार कर बैठे थे। इनसे बड़ा दानवीर दूसरा कौन हो सकता है ? उनके जैसा महान दान जगत में किसीने दिया हो, यह ज्ञात नहीं, और वह दान भी कैसा ? किसी भी स्वार्थ के बिना विशुद्ध हेतु से किया गया दान था। यह दान उनके विशुद्ध जीवन का परिणाम था। परोपकार या दूसरे से काम निकालने के लिये यह दान न था। उस समय उनके राज्य का विस्तार अनंत था। जल थल पर श्रीकृष्ण का अधिकार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

था और इस पर भी उनको किसीका मोह न था। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन ही दान में दे दिया था।

भारत ही एक ऐसा विलक्षण देश है कि जहाँ ऐसी विलक्षण घटनायें घटती रहती हैं। कोई विदेशी शासक स्वेच्छा से देश का शासन–सूत्र देशवासियों को सौंप जायँ, ऐसा कहीं नहीं हुआ। उन्नीस सौ सैंतालीस के अगस्त में भारत में ही ऐसा हुआ। दो सौ वर्षों से राज करते हुये ब्रिटिश शासक पन्द्रहवीं अगस्त के दिन स्वेच्छा से सत्तासूत्र भारतवासियों के हाथ में सौंप कर चले गये। इतिहास में सत्ता के स्वेच्छा से हस्तांतरण (**Transfar of power**) की यह पहली ही घटना है। इतिहास में ऐसी कोई दूसरी घटना देखने को नहीं मिलती। भारत का वैशिष्ट्य विद्यमान है। भारत भारत ही है। उस दिन देव, गन्धर्व, दानव, किन्नर, सभी भारत को देखने के लिये दौड़ते आये होंगे।

जगत का इतिहास देखेंगे तो ज्ञात होगा, राज्य अर्थात रक्तपात। राजा को मारना, उसे बंदी (**Capture**) करना, बंधित करना, कैद कर के उसकी सम्पत्ति लूट लेना, वगैरह रोंगटे खड़े कर देनेवाले वर्णन पढ़ने को मिलते हैं। भारत में तो तीन-तीन महीने पहले से निश्चित हो गया था कि, हम सिंहासन से नीचे उतरेंगे और भारत की बागडोर भारतीयों के हाथ में रहेगी।

उस समय राष्ट्र मर्यादा बहुत बड़ी थी। इतिहास विवेचक कहते हैं कि पहले तो यह मर्यादा बहुत कम थी; भारत में जंगल थे आदि। परन्तु हम उनकी तरह गढ़े मुर्दे नहीं उखाड़ते। हमें तो इतना ही ज्ञात है कि प्राचीन काल में '**समुद्रपर्यन्तायाः पृथिव्या एकराड्**'–नक्शा निकालें और उसमें जो प्रदेश समुद्र पर्यन्त आते हैं वे सभी कृष्ण ने दे दिये थे। श्रीकृष्ण के कृपा-प्रसाद से ही वे टिके हुये थे।

श्रीकृष्ण का जीवन अलौकिक है; उनकी जीवन के प्रत्येक प्रसंग में कुछ न कुछ विशिष्टता देखने को मिलेगी। उनका ईश्वर भाव सदैव ही जाग्रत था। 'मैं कुछ विशेष हूँ' यह भावना हमेशा विद्यमान थी। चाहे जो कृति हो उसमें उनका प्रतिबिंब पडे बिना न रहता। बाह्यदृष्टि से देखने पर उनका जीवन और स्वभाव अप्राप्य मालूम पड़ेगा, परन्तु उनके अन्तर में झाँक कर देखेंगे तो वहाँ आश्चर्यजनक विनम्रता दृष्टिगोचर होगी। भगवान श्रीराम के जीवन में नम्रता स्पष्टरूप से देखी जाती है, भगवान श्रीकृष्ण के जीवन में अव्यक्त रूप से रही है। श्रीकृष्ण अर्थात्–बल और विश्वास के प्रतीक, इसलिये उनके उपासक कायर, दुर्बल, नहीं हो सकते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रीकृष्ण की दूसरी विशिष्टता थी–आपत्तिकाल में सज्जन की सहायता के लिये दौड़ना। अच्छे समय में तो सभी अगल--बगल में आकर खड़े रहते हैं परन्तु संकट के समय साथ देनेवाला कोई विरला ही होता है। संकट के समय सब से आगे आवे परन्तु सत्कार या सम्मान की बात आने,पर नववधू की तरह लज्जा से पीछे जावे, वही सच्चा सहायक, जब कि आज श्रीकृष्णभक्त तो "खाने को हम और लड़ने को हमारा भाई– " ऐसी भाषा प्रयोग करते हैं।

सामान्य तौर पर ऐसा होता है कि जब लड़ाई होती है तब ऐसे व्यक्ति लड़ते हैं, जो नहीं जानते कि यह लड़ाई किसलिये है, और वे अपने जीवन की बलि दे देते हैं। जीवन का यश कोई व्यक्तिविशेष ले जाता है; जब कि श्रीकृष्ण स्वयं काम करते और यश लोगों को दे देते; युद्धकर विजय प्राप्त करने पर भी वह हमेशा दूसरों के नाम चढ़ा देते। संग्राम में आगे रहते और सम्मान के समय न जाने कहाँ छिप जाते।

पूर्णावतार के गुणो को कितना गा सकेंगे? जितना गायेंगे उतना कम ही पड़ेगा। समाप्त ही नहीं होगा! प्रारम्भ में ही देखा– **'असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं . . .'** उनके गुणों से मेरी वाणी पवित्र होगी और तुम्हारे कान पवित्र होंगे। अलौकिक और चोटी की बातें उन पुरुषोत्तम में थीं।

श्रीराम के जीवन में जितने दोष नहीं दिखायी दिये, उनसे दस गुना अधिक श्रीकृष्ण के जीवन में देखने में आते हैं। प्रकटरूप में नहीं तो मन में होंगे। प्रकट करने के लिये भी हिम्मत तो चाहिये न! अब हम कई स्वयं को बुद्धिमान बतानेवाले, महानुभावों के द्वारा श्रीकृष्ण पर किये गये दोषारोपणों पर विचार करेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बारहवाँ प्रकरण

श्रीकृष्ण-गुण मीमांसा (१)

यदि जीवन भर श्रीकृष्ण का गुणगान करते रहें, तो भी तृप्ती नहीं होगी। कोई भी व्यक्ति-अति समर्थ व्यक्ति भी एक ही जन्म में इतने गुण प्राप्त नहीं कर सकता। श्रीकृष्ण ने एक जन्म में इतने गुण प्राप्त किये, इसीसे वे युग-पुरुष कहलाये। उनके अनंत व अलौकिक गुणों का वर्णन सुनने पर मस्तक स्वयं ही आदर-भाव से झुक जाता है।

लोकहृदय के सम्राट

श्रीकृष्ण का अलौकिक गुण तो उनका अलौकिक नेतृत्व था। वे असामान्य नेता थे। नेता वह जिसका कि लोग कहना मानें, लोग जिसके अनुयायी हों। हमारे अनुयायी, अनुचर, हमारे प्रति आदर रखें यह स्वाभाविक है, परन्तु श्रीकृष्ण के प्रति तो प्रत्येक का विश्वास था, आदर था, प्रेम था। कोई नेता इतने विशाल जनसमूह का ऐसा प्रेम-सम्पादन न कर सका होगा, तथा लोगों को दे भी न सका होगा। श्रीकृष्ण जैसा नेता हुआ ही नहीं और होगा या नहीं इसमें भी शंका ही है। एक व्यक्ति हमारी सेवा करता हो तो सब कोई उस पर प्रेम रखते हैं, परन्तु श्रीकृष्ण के प्रेम की ऐसी कोई मर्यादा नहीं थी। श्रीकृष्ण का छोटे-से-छोटे मित्र और विद्वान या अधिकारी के प्रति समान प्रेम-भाव था। उनका भी कृष्ण के प्रति वैसा ही प्रेम-भाव था। श्रीकृष्ण प्रत्येक के आत्मीय थे। उनके अप्रतिम नेतृत्व का मूल उनका अपूर्व स्वार्थ-त्याग था। इसीसे लोगों का उनके प्रति अटूट विश्वास था। उनके बहुत से मित्र और स्नेही वय की दृष्टी से उनसे बहुत बड़े थे, फिर भी वे श्रीकृष्ण का आदर करते थे। श्रीकृष्ण के प्रति आबाल-वृद्ध सब का सच्चे अंतःकरण का स्नेह था।

रैवतक पर्वत पर से अर्जुन ने जब सुभद्रा का अपहरण किया, इस समय यादवों में हा-हाकार मच गया। सभी अर्जुन को मारने के लिये तैयार हो गये। कोई गदा ढूँढने लगा, तो कोई धनुष खोजने लगा। बलराम के क्रोध की भी सीमा न रही। ऐसा उत्तेजनापूर्ण वातावरण भी श्राकृष्ण को अस्थिर न कर सका। वे सदैव की भाँति स्वस्थचित्त थे। उनके भाव तनिक भी बदले नहीं।

उत्तेजित यादवों की सभा के मध्य श्रीकृष्ण खड़े हुये कि तुरन्त ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(Pin-drop-silence) पूर्ण शांति हो गयी। सभी की उत्तेजना शांत हो गयी और सभी शांत चित्त से कृष्ण को सुनने के लिये तैयार हो गये। आप कहेंगे इसमें नवीनता क्या है? कोई भी लोकप्रिय व्यक्ति बोलने खड़ा होता है तो उसे शांति से सुनते ही हैं। परन्तु यहाँ विशिष्टता यह थी कि श्रीकृष्ण की सभी यादवों की मान्यता के विरुद्ध बातें करने पर भी कोई उत्तेजित नहीं हुआ, वरन् उनकी बात यादवों के गले उतर गयी। शांति से किसीको सुनना यह एक बात है और उतनी ही शाँति से उसकी बात स्वीकार कर लेना और बात है। श्रीकृष्ण की अद्भुत प्रतिभा का यह प्रमाण है और समाज के मन पर उनके अधिकार का यह उदाहरण है।

श्रीकृष्ण की सलाह के बिना कोई भी चले कैसे? पाण्डवों ने राजसूय-यज्ञ करने का विचार किया। धर्मराज कहते हैं- बुलाओ श्रीकृष्ण को, उनकी सलाह-सम्मति के बिना कुछ भी नहीं हो सकता।

युधिष्ठिर के जैसा सत्यनिष्ठ राजा दूसरा मिलना कठिन है। उनकी सत्यप्रियता असीम थी, युद्ध हारा जाता हो, तो भी कोई चिन्ता नहीं! राज्य जाता हो तो भले ही जाय; संकट का पहाड़ टूट पड़ता हो तो भले ही टूट पड़े, परन्तु धर्मराज कभी भी असत्य बोल नहीं सकते। ऐसे व्रतनिष्ठ, तत्त्वनिष्ठ, सत्यनिष्ठ धर्मराज ने भी श्रीकृष्ण का कहना मान कर एक बार 'नरो वा कुञ्जरो वा' तो कहा ही। और किसीकी शक्ति न थी कि धर्मराज को ऐसा वाक्य बोलने के लिये समझा सके! श्रीकृष्ण के साथ युधिष्ठिर ने कितना तर्क किया, फिर भी अन्त में श्रीकृष्ण ने बात गले में उतार ही दी। ऐसे तत्त्वनिष्ठ व्यक्ति से 'नरो वा कुञ्जरो वा' कहलवाना कठिन है यह नित्य सुबह से शाम तक **'सत्यानृतम्'**- सच-झूठ करनेवाला समझ नहीं सकता।

बाल्यकाल से ही श्रीकृष्ण ऐसे प्रतिभाशाली थे। एक छोकरे के कहने से गोकुलवासियों, गोकुल के विद्वानों व बुद्धिमानों ने वंशपरम्परा गत रूढ़ि का त्याग कर दिया- इन्द्र की पूजा छोड़कर गोवर्धन की पूजा आरंभ कर दी। एक-दो व्यक्ति कदाचित् प्रभावित हो जायँ, परन्तु यहाँ तो समस्त धर्मनिष्ठ-प्रजा ने रूढ़ि छोड़ दी; यही वैशिष्ठ्यपूर्ण घटना है। लोगों के मन के वे बाल-सम्राट थे। उनका नेतृत्व अलौकिक, शौर्य अलौकिक, बुद्धिमता अलौकिक, प्रतिमा अलौकिक थी इतने सभी गुणों का एक व्यक्ति में सुन्दर सुमेल हुआ हो ऐसा दृष्टान्त दूसरा कहीं देखने को नहीं मिलता।

श्रीकृष्ण के जीवन की अनेक बातें महान हैं, परन्तु उनमें से ये दो बातें- एक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तो रुढ़ि त्याग और दूसरी-एक महान व्यक्ति से असत्य कहलाना, उनके प्रभाव को स्थापित करने के लिये पर्याप्त हैं।

गीता – वैश्विक तत्त्वज्ञान का निचोड़

'गीता' तो उनकी अपूर्व कीर्ति के ऊपर का कलश है। गीता अर्थात् जगत के सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान का निचोड़। इसीलिये श्रीकृष्ण की उद्‌बोधी गीता को जगत का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ माना जाता है। उस समय से कई बुद्धिमानों ने बुद्धि लड़ाई परन्तु अभी एक शतांश भी रहस्य मिला या नहीं यह एक प्रश्न ही है। गीता नित्य नवीन है; उसका तत्त्वज्ञान जीवंत है, अमर है।

श्रीकृष्ण के प्रखर तत्त्वज्ञानी होने के बावजूद उनमें व्यावहारिक दक्षता का अभाव नहीं था। तत्त्वज्ञान और व्यावहारिक दक्षता का इससे उत्कृष्ट सुमेल किसी में देखने को नहीं मिलता। इस नियम के अपवाद–याने श्रीकृष्ण।

न्यूटन का नाम जगत् प्रसिद्ध है। वह प्रखर वैज्ञानिक था। विज्ञान के क्षेत्र में उसके तलस्पर्शी प्रवेश ने उसे तत्त्वज्ञानी भी बनाया। उसने एक बिल्ली पाली थी, उसका बच्चा होने वाला था। न्यूटन की बिल्ली रात–बेरात भीतर बाहर आवन–जावन कर सके इसके लिये दीवार में एक छेद करवाया था। जब न्यूटन को ज्ञात हुआ कि बिल्ली शीघ्र माता बननेवाली है तो वह चिन्तित हो गया। बिल्ली के लिये तो आने जाने का मार्ग है, पर उस के बच्चे का क्या होगा? वह बेचारा कैसे बहार आया–जाया करेगा? न्यूटन ने बिल्ली के बच्चे के लिये भी दीवार में एक छोटासा छेद बना दिया। जब उसने बिल्ली के बच्चे को भी बिल्ली के लिय बनाये गये छेद से निकलते देखा तो उसको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। जिस छेद से बिल्ली जा सकती है उससे ही बच्चा नहीं जा सकता क्या? बच्चे के लिये दूसरे छेद की क्या आवश्यकता थी? उसकी प्रखर बुद्धि में इतनी सामान्य बात का भी विचार नहीं आया।

तत्त्ववेत्ताओं को सब्जी बेचनेवाली स्त्रियाँ भी बना लेती हैं, क्योंकि शाक–भाजी लेते समय भी उनकी बुद्धि में दूसरी ही बातों का स्मरण चलता रहता है। मेरा तो यह अनुभव है। परन्तु व्यवहार में जो पक्के हैं वे उल्टे सब्जी-वाली को ही बनाने का आनंद लेते हैं। लेकिन ऐसे लोग तत्त्वज्ञान में प्रवेश भी नहीं कर सकते। इसलिय जो तत्त्वज्ञान में पारंगत है वह व्यवहार में कच्चा और जो व्यवहार में कुशल है, वह तत्त्वज्ञान में कच्चा--इस प्रकार सृष्टि में दिखायी देता है। परन्तु श्रीकृष्ण व्यवहार और तत्त्वज्ञान दोनों मे समर्थ थे। श्रीकृष्ण की जैसी सर्वतोमुखी बुद्धि अभी तक किसी की भी देखने को नहीं मिलती।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रीकृष्ण की आध्यात्मिक, पारमार्थिक और तात्विक बुद्धि से तो जगत को गीता जैसा सुन्दर ग्रन्थ मिला है। उनके व्यावहारिक जीवन के विषय में विचार करें तो लगता है कि संशय की एक भी गाँठ ऐसी बाकी नहीं जो श्रीकृष्ण ने खोली न हो। उनके लिये कोई भी प्रश्न उलझा हुआ (Gordian Knot) नहीं था। उनके जीवन के दोनों पक्ष देखने हों तो उनके बचपन से प्रारंभ करो। उनकी बुद्धि में दोनों के अंकुर थे। परस्पर विरोधी गुण जो एक व्यक्ति में दिखायी नहीं देते वे श्रीकृष्ण में थे। उनका सम्पूर्ण जीवन शौर्य और प्रेम से भरा हुआ था।

व्यवहार दक्षता और उत्कृष्ट बुद्धिमत्ता

श्रीकृष्ण की कुशल व्यावहारिक बुद्धिमत्ता का एक दृष्टांत लेते हैं। श्रीकृष्ण के काल में ऐसा था कि युद्ध में सहायता के लिये जिस पक्ष की ओरसे पहले निमंत्रण आये, उसे स्वीकार कर लेना चाहिये, अर्थात् जो राजा पहले सहायता माँगने आये उसके पक्ष में जाना। यह प्रचलन-प्रथा (Etiquette –Fashion of the days) थी। आज भी राष्ट्रों में इसी प्रकार की रूढ़ियाँ होती हैं। इस रूढ़ सँकेत (प्रथा) का उल्लेख हमको अभिमन्यु के विवाह के अवसर पर देखने को मिलता है। उस समय संजय-सन्धि की बातें हो रहीं थीं। परिणाम राजा द्रुपद जानते थे, वे दुर्योधन के कुटिल स्वभाव से पूर्ण परिचित थे। उन्हें उसकी राजनीतिक निपुणता के सम्बन्ध में शंका न थी। उन्हें विश्वास था कि पाण्डवों को अंधेरे में रखकर, सन्धि की मिथ्या बातें सुनाकर दुर्योधन अन्य राजाओं के पास पहुँच जायगा और अपने पक्ष को प्रबल करेगा। इस लिये उसने पाण्डवों को, अन्य राजाओं को अपने पक्ष में आने का निमंत्रण देने की सम्मति दी है। युद्ध की इन रूढियों के कारण ही मद्र देश का राजा शल्य जो वस्तुतः कौरवों के प्रति तिरस्कार का भाव रखता था, पाण्डवों के पक्ष में जाने के बजाय कौरवों के पक्ष में गया था। वह नकुल-सहदेव का मामा था। लेकिन दुर्योधन वहाँ पहले पहुँच गया था। अर्थात् उस समय ऐसी प्रथा थी कि यदि किन्हीं दो राजाओं के बीच युद्ध हो तो जो राजा पहले सहायता की याचना करने आये उसके पक्ष में जाना।

जब पाण्डव और कौरवों के बीच संग्राम अनिवार्य हो गया तो प्रथा के अनुसार अर्जुन और दुर्योधन, दोनों श्रीकृष्ण की सहायता प्राप्त करने गये। दुर्योधन अर्जुन से पहले वहाँ पहुँच गया था। श्रीकृष्ण उस समय सोये हुये थे। दुर्योधन शयनकक्ष में जाकर उनके सिर के पास बैठ गया। अर्जुन तनिक देर से आया था। वह आकर श्रीकृष्ण के पैरों के पास बैठ गया। श्रीकृष्ण की आँख खुलते ही उनकी पहली दृष्टि अर्जुनपर पड़ी। उन्होंने अर्जुन से आने का कारण पूछा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्जुन कुछ उत्तर दे कि उससे पूर्व ही दुर्योधन ने उतावली से कहा, " महाराज ! अर्जुन से पहले मैं हूँ; युद्ध में आप की सहायता लेने आया हूँ। आप तो सज्जन हैं, बुद्धिमान हैं, प्रथा को जानते हैं। मैं पहले आया हूँ इसलिये आपकी सहायता मुझे ही पहले मिलनी चाहिये। आपके लिये तो कौरव पाण्डव दोनों समान हैं इसलिये मुझपर कृपाकर आपको अपनी सेना सहित मेरे ही पक्ष में आना चाहिये। '

श्रीकृष्ण ने शांतचित्त से उत्तर दिया – "तुम्हारी बात बिलकुल सत्य है, तुम पहले आये, इसलिये पहला अधिकार तुम्हारा है, परन्तु मेरी दृष्टि तो पहले अर्जुन पर पड़ी है। तुम झूट कहते हो ऐसा मैं नहीं कहता, परन्तु अर्जुन को मैंने पहले देखा है, इसलिये धर्म संकट खड़ा हो गया है। तुम ही मुझे रास्ता बताओ।" श्रीकृष्ण दुर्योधन जैसे शैतान से ही न्याय करवाना चाहते थे, शैतान के मुँह से नीतिकी बात कहलाना चाहते थे।

दुर्योधन ने कहा, " आपकी बात है तो बिलकुल सत्य, आपकी कठिनाई को मैं समझता हूँ। अतः आप ऐसा करें, दोनों की समान सहायता करें।" श्रीकृष्ण ने कहा, " दुर्योधन ! तुम्हारी बात तो न्याय की है, परन्तु ऐसा कैसे हो सकता है ? सेना के दो भाग करना किसी प्रकार उचित नहीं, व्यावहारिक भी नहीं है। यादवों के विरुद्ध यादव कैसे लड़ेंगे ? इसकी अपेक्षा तो ऐसा करो कि तुम दो में से, एक मुझे चुन ले और दूसरा यादव सेना को छाँट ले, और यह बात भी साथ साथ स्पष्ट कर दूँ कि मैं लड़ूँगा नहीं, बचपन से ही लड़ता आ रहा हूँ, अब आराम करने का विचार है, बहुत थक गया हूँ। अतः अब जिसको जो चाहिये माँग लो।"

श्रीकृष्ण को विश्वास था कि अर्जुन मुझे माँगेगा और दुर्योधन यादव-सेना को, परन्तु ईश्वर न करे दुर्योधन की बुद्धि फिर जाय और वह मुझे माँग ले तो ! महान मुश्किल हो जायेगी। ऐसा सोच कर श्रीकृष्ण ने बुद्धिमत्तापूर्वक युक्ति लड़ाकर पानी से पहले बाँध बाँधकर कहा, " दुर्योधन ! मेरे लिये तो तुम दोनों समान हो, परन्तु तुम बड़े भाई हो और अर्जुन छोटा। सज्जनों की रीति तो यह कहती है कि छोटे भाई को पहले अवसर देना चाहिये, उसकी इच्छा पहले पूर्ण करनी चाहिये और बड़े की बाद में। इसलिये अर्जुन को ही पहले माँग करनी चाहिये, ऐसी मेरी मान्यता है।" ऐसा कहकर अर्जुन से ही पहले कहलवा है। अर्जुन ने क्या माँगा उसका हमें पता है परन्तु हम इतना हमेशा ध्यान में रखेंगे कि श्रीकृष्ण दुश्मन की चोटी सदैव पकडे रखते थे, परन्तु अपनी शिखा दुश्मन के हाथ में न चली जाय, इसके लिये सदैव सावधान रहते थे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संजय-विष्टि के कुटिल हेतु की परख

धृतराष्ट्र महापाखण्डी था। कुरुक्षेत्र के युद्ध के प्रारम्भ होने से पूर्व उसने एक अचूक दाव फेंका; संजय को समझौते के लिये युधिष्ठिर के पास भेजा। संजय के पास धृतराष्ट्र ने ऐसा सन्देश भेजा है, जिससे सज्जन और सीधा व्यक्ति तुरन्त जाल में फँस जाय। इस संदेश में उसने कहलाया–'धर्म का अनुसरण करनेवाले युधिष्ठिर! मेरे पुत्र तो हरामखोर हैं, उनमें से दुर्योधन तो महादुष्ट है, परन्तु तुम तो सज्जन हो, न्यायनीति से चलनेवाले हो, चारित्र्यसम्पन्न हो। तुम्हें सज्जनता नहीं छोड़नी चाहिये। तुम्हारे जैसा धर्मनिष्ठ, क्षत्रिय कुल का नाश करे यह इष्ट नहीं है। इस प्रकार कुल का नाश करने की अपेक्षा जीवन-निर्वाह के लिए भीख माँगना भी बेहेतर हैं।' बाहर से भला दिखायी देनेवाला धृतराष्ट्र कितना पाखण्डी था उसका यह नमूना है। जैसे व्यापारी ग्राहक को पटाने के लिये नौकर को एक-दो गालियाँ दे देता है, उसी प्रकार धृतराष्ट्र ने भी युधिष्ठिर को पटाने के लिये अपने लड़कों को दो चार गालियाँ दे डालीं। एक दो गालियाँ खाने के पश्चात भी यदि राज्य मिलता तो कौन नहीं लेगा? युधिष्ठिर तो संदेश मिलते ही पिघल गये, सभी पाण्डव निर्बल पड़ गये।

धृतराष्ट्र की कुटिल नीति को तो श्रीकृष्ण ही समझते थे। धृतराष्ट्र को उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कह लाया – "तुम जैसा समझते हो, उतने मूर्ख और कच्चे हम नहीं हैं। धर्म और अधर्म क्या है, यह हमें ज्ञात है। उसे हमें सिखाने की तुम्हें आवश्यकता नहीं। न्याय और नीति के लिए क्षत्रिय सगे भाई के साथ लड़ने में भी नहीं हिचकता, उसके लिये क्षत्रिय कभी पीठ नहीं दिखाता। यह तो वेश्या का पतिव्रता को उपदेश देने जैसी बात है। धर्म का उपदेश देनेवाले तुम कौन हो? धृतराष्ट्र को जाकर कहना कि धर्मराज धार्मिक है, इसीलिये धार्मिक कर्म से पीछे कदम नहीं करेगा। पाण्डव नीतिवान, शक्तिशाली और समर्थ हैं। अधर्मियों के विनाश की उनकी भुजाओं में पूर्ण शक्ति है; अतः वे कदापि अन्याय सहन नहीं करेंगे, युद्ध करेंगे ही।

महाभारत के प्रत्येक पृष्ठ में श्रीकृष्ण की बुद्धिमत्ता के दर्शन होते हैं। प्रत्येक समय पांण्डवों को उनकी कठिनाइयों से कृष्ण ने ही मार्ग ढूँढकर दिया है। उन्हों ने सदा आपत्ति के समय पाण्डवों को सहायता की है और ये सारे कार्य, हाथ में शस्त्र धारण किये बिना, मात्र बुद्धि से ही किये हैं। पाण्डव बुद्धिमान, नीतिवान और सामर्थ्यवान थे। परन्तु, श्रीकृष्ण के बिना उनकी दुर्दशा हो गयी होती यह निश्चित बात है। महाभारत के ऐसे कई प्रसंग हैं, जिनमें मात्र श्रीकृष्ण के कारण ही पाण्डवों का अनर्थ होते रुका है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कार्याकार्य का त्वरित निर्णय लेने की अपूर्व शक्ति

'कर्णपर्व' में यह बात आती है। कुरुक्षेत्र का घोर संग्राम चल रहा था, तब एक बार कर्ण ने युधिष्ठिर को लड़ते लड़ते थका डाला। युधिष्ठिर कहीं देखने को नहीं मिलते, क्योंकि वह थके हारे शिबिर में चले गये थे। इतने में अर्जुन और श्रीकृष्ण उन्हें ढूँढ़ते-ढूँढ़ते शिबिर में आ पहुँचे। उनको देखते ही युधिष्ठिर ने आनंदित होकर पूछा, "कर्ण को मारकर आया न?" अर्जुन ने इनकार किया। धर्मराज क्रोधित हो गये और अर्जुन के गाण्डीव की निन्दा करने लगे। 'अपने गाण्डीव को जला दे या डुबो दे; मैं कर्ण के बाणों की वेदना से व्यथित हो रहा हूँ, तुझे इतना भी ज्ञान नहीं'।

अर्जुन की यह प्रतिज्ञा थी कि 'मेरे गाण्डीव की यदि कोई निन्दा करे तो उसकी हत्या करूंगा'। अतः अर्जुन खड्ग लेकर धर्मराज की हत्या करने के लिये तैयार हो गया। श्रीकृष्ण तुरन्त ही बीच में पडे। उस समय यदि कृष्ण न होते तो क्या परिणाम आता? क्योंकि सभी प्रतिज्ञावाले (Extremist) कोई झुकने को तैयार नहीं। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाते हुये कहा – 'तुझे अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना ही चाहिये, परन्तु उसके लिये धर्मराज के वध की कोई आवश्यकता नहीं। जिस धर्मराज के कारण तूने बारह-२, तेरह-२ वर्ष का वनवास भोगा, उनकी तू हत्या करेगा? धर्मराज सत्ता स्थापित करनेवाले हैं। भले मानस, प्रतिज्ञा करने से पहले जरा सोचना तो चाहिये ना! खैर, जो हुआ सो, परन्तु सुन-मृत्यु दो प्रकार की होती है। सज्जन का अपमान उसकी मृत्यु के बराबर है-"**संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते**"- इसलिये तू जी भरकर धर्मराज की निन्दा कर ले, उनकी भर्त्सना करले; ऐसा करने से तेरी प्रतिज्ञा की रक्षा हो जायेगी।'

अर्जुन के गले यह बात ठीक-२ उतर गयी। उससे धर्मराज को खूब कटु वचन कहकर उनका अपमान किया। परन्तु यहाँ तो अब दूसरी समस्या खड़ी हो गयी! बड़े भाई को खूब गाली देने के पश्चात् अर्जुन को पश्चाताप होने लगा और बड़े भाई के अपमान के प्रायश्चित स्वरूप खड्ग लेकर अपने को समाप्त करने के लिये तैयार हो गया। श्रीकृष्ण फिर बीच में पड़े और उन्होंने कहा, 'मूर्ख, इसमें तेरे मरने की क्या आवश्यकता है? सज्जन पुरुष यदि आत्मश्लाघा करे तो वह उसकी मृत्यु के बराबर ही है; तू अपने मुँह से अपनी प्रशंसा कर। इससे बिना मरे ही प्रायश्चित हो जायेगा।'

उस दिन यदि भगवान उपस्थित न होते तो युधिष्ठिर और अर्जुन दोनों समाप्त हो जाते और 'महाभारत' न होता। श्रेष्ठ व्यावहारिक बुद्धि के दृष्टान्त देने बैठे तो सारी रात बीत जाये, पर वे भी समाप्त न हों। हमारे लिए एक ही दृष्टान्त पर्याप्त है। उत्कृष्ट तत्त्वान्वेषी बुद्धि और कार्याकार्य के निर्णय करने की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्वरित शक्ति के साथ--२ उनमें इन्द्रिय-निग्रह भी उत्कृष्ट था। उसमें श्रीकृष्ण की तुलना से दूसरा कोई नहीं आता।

इन्द्रिय निग्रह और स्थितप्रज्ञता

राजा का राज्य, सत्ता और राज्य-बल का मूल इन्द्रिय-निग्रह है। **"धर्मस्य मूलमर्थः अर्थस्य मूलं राज्यम्, राज्यस्य मूलमिन्द्रियनिग्रहः"**-कौटिल्य वे कहते हैं। जिस देश का राजा इन्द्रियों को वश में नहीं रख सकता और जिस देश की प्रजा विलासी हो जाती है उसका विनाश अनिवार्य हो जाता है। दूसरे विश्व युद्ध में हम को इस बात का प्रमाण मिल चुका है। फ्राँस के विनाश और पेरिस की बर्बादी का कारण फ्राँसवासियों का विलासीपन ही था। अर्थात् भोग-लम्पट लड़ाई में टिक नहीं सकते। फ्रान्स का दूसरे नम्बर का साम्राज्य इसी कारण से मात्र आठ दिन में समाप्त हो गया। आश्चर्य करने की बिलकुल आवश्यकता नहीं, क्योंकि विश्व के विविध देशों के लोग वहाँ मौज-शौक-विलासिता के लिये ही जाते हैं।

इस प्रकार इन्द्रिय-निग्रह की आवश्यकता केवल अध्यात्ममार्गी को ही हैं, ऐसा नहीं मानना चाहिये। उत्कृष्ट शासन संस्था चलानी हो और टिकाये रखनी हो तो उसमें भी प्रत्येक अधिकारी, सत्ताधारी, मंत्री और सामान्य नागरिकों सहित सभी में इन्द्रिय-निग्रह होना चाहिये। अर्थनीति चारित्र्य पर टिकती है। श्रीकृष्ण का सब इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार था। वे विकार के अधीन कभी नहीं होते थे, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर विकार का निर्माण कर भी सकते थे।

कई लोगों को बिलकुल क्रोध नहीं होता, तो कइयों से क्रोध सहन ही नहीं हो सकता। कृष्ण दोनों अन्तिम अवस्थाओंपर (Extremes) थे। जिस प्रकार तलवार म्यानसे बाहर निकाली जाती है उसी प्रकार वे मन में विकार सरलता से निर्माण कर सकते थे। इसी तरह, जितनी सरलता से तलवार फिर म्यान में डाली जा सकती है, वैसे ही वे तनिक भी क्षुब्ध हुये बिना, विकारों को समेट सकते थे। श्रीकृष्ण गीतावर्णित स्थितप्रज्ञ के लक्षणोंवाले थे—

'यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥'

जैसे कछुआ आवश्यकता पड़ने पर ही मुँह (अंग) बाहर निकलता है और आवश्यकता पड़ने पर अन्दर खींच लेता है उसी तरह श्रीकृष्ण का भी इन्द्रियों पर सहज नियंत्रण था। जब क्रोधित होना हो तभी होते, अन्यथा नहीं।

शिशुपाल, आवेश में आकर श्रीकृष्ण को गाली दे रहा था और श्रीकृष्ण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शांतिपूर्वक शीतल हृदय से सुनते रहते हैं। परन्तु शिशुपाल जब मर्यादा का उल्लंघन कर गया, तब श्रीकृष्ण क्रोध से भर गये और उन्होंने उसका वध कर डाला। उस समय श्रीकृष्ण का दृश्य काल के मुँह के समान भयानक था; सम्पूर्ण सभा प्रकम्पित हो गयी थी! श्रीकृष्ण के विरोधी तो '**न भूतो न भविष्यति**' ऐसा कुछ होगा मानकर भयभीत होने लगे। महाअनर्थ की आशङ्का करने लगे।

कृष्ण का व्यक्तित्व हिमालय जैसा प्रखर और ज्वालामुखी जैसा भयानक था। क्रोध भी श्रीकृष्ण का एक शस्त्र था, जिसे वे आवश्यकता पड़नेपर चाहे तो बाहर निकालते अन्यथा अन्दर कर देते। काम-क्रोध का स्पर्श श्रीकृष्ण को न था, परन्तु जब उन्हें, निमित्त बनाकर कार्य-सिद्ध करना होता तब वैसा करने में समर्थ थे।

श्रीकृष्ण का अद्भुत स्वार्थ--त्याग तो देखिये! युवावस्था में साम्राज्य का त्याग कर दिया। किसीको भी पूछने की बाट नहीं देखी। पिता को भी पूछे बिना उग्रसेन को राज्य वापस दे दिया, कितना आत्मविश्वास! कितना भव्य स्वार्थत्याग! मन में किसी भी प्रकार की इच्छा रखे बिना श्रीकृष्ण ने यह कार्य किया था, तभी तो उनके लिये यह शक्य हुआ। किसी बात का लोभ था ही नहीं कि जिस से लाभ की इच्छा हो।

अद्‌भुत विनम्रता

राजसूय--यज्ञ के समय पाण्डव श्रीकृष्ण के हाथ से ही सब कुछ करवाना चाहते थे। वे समझते थे कि "समग्र साम्राज्य के सच्चे स्वामी श्रीकृष्ण ही हैं। हमें तो जो मिला वह उनकी कृपासे--शक्ति से मिला।" इसलिये सम्पूर्ण राज्य उनके चरणों में रख कर धर्मराज ने कहा, 'राजसूय यज्ञ आप ही करें, मैं नहीं करूँगा।' पाण्डवों में सद्‌गुणों का पागलपन था! श्रीकृष्ण ने पाण्डवों का भाव जान लिया और धर्मराज को लक्ष्य कर कहा, 'अच्छा; यह राज्य मेरा है इस बात को मैं स्वीकार करता हूँ, परन्तु मैं उसे तुम्हें वापस सौंपता हूँ, तुम उसको स्वीकार करो और यथोचित कार्य करो।' इस प्रकार यज्ञ में श्रीकृष्ण मुख्य यजमान तो नहीं बने, किन्तु उन्होंने क्या काम लिया था मालूम है? ब्राह्मणों के चरण धोना और जब वे भोजन कर लें, तब उनकी जूठी पत्तलें उठाना! कितनी अद्‌भुत विनम्रता! निर्लोभी जीवन के साथ ही लौकिक मानापमान के विचारों से अतीत, स्थितप्रज्ञ के अतिरिक्त दूसरा कौन हो सकता है? इसलिये श्रीकृष्ण स्थितप्रज्ञ थे, इसमें शंका के लिए स्थान ही नहीं।

मानवतावादी दृष्टि

वस्तुतः श्रीकृष्ण अलौकिक मानवतावादी भी थे। उनके जीवन की समीक्षा करते करते जीवन बीत जाय तो भी वह पूर्ण न हो। जगत में मानवता के गीत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गानेवालों और व्यर्थ बकवास करनेवालों की कमी नहीं है। बोलने में तो श्रीकृष्ण को भी पछाड़दें–ऐसे बोलनेवाले मिल जायेंगे, परन्तु उनके जैसा उदात्त, तेजस्वी और विशुद्ध जीवन–जीनेवाला कहीं भी नहीं मिलेगा। मानवता के लिये उन्होंने अपनी चमड़ी घिस डाली। जितने भी युद्ध किये उनमें से अपने लिये कुछ नहीं रखा। श्रीकृष्ण तो निष्काम--कर्मयोग को माननेवाले थे; कर्म किये, किन्तु अपने लिये नहीं। अपने को तो कुछ भी नहीं चाहिये।

उनकी विशाल, मानवतावादी दृष्टि का उदाहरण देखे--श्रीकृष्ण की अनेक पत्नियाँ थीं, इस बात को सामने रखकर कई तथाकथित बुद्धिवादी श्रीकृष्ण पर ऐसा आक्षेप करने की धृष्टता करते हैं कि वे विलासी थे। ऐसे लोग मूर्ख हैं; उन्होंने महाभारत पढ़ा ही नहीं, ऐसा कहा जा सकता है।

अपहृत स्त्रियों के प्रश्न का हल

प्राग्ज्योतिष देश का राजा नरकासुर अत्यन्त अधर्मी, शैतान और अतिशय विलासी था। वह नारी--पावित्र्य के लिये महान विपत्ति रूप था। अनेक राजाओं की सुन्दर कन्याओं को वह उठा ले जाकर उन्हें उसने अपने बन्दीगृह में बन्दी बनाकर रखा था। इस प्रकार हजारों सुन्दर युवतियाँ इस दुष्ट के पंजे में फँसी हुयी थीं। कहा जाता है—

'चतुर्दश सहस्राणि एकविंशच्छतानि च।
एकवेणीधराः सर्वाः सतीमार्गमनुव्रताः॥'

वह रावण की परिपाटी, परम्परा चलाता था। श्रीकृष्ण यह अधर्म सहन नही कर सके। मानवता का मर्मभेदी कठोर आक्रन्दन सुनकर ही कृष्ण कूदे। उन्होंने नरकासुर पर आक्रमण किया और उसका संहार कर उसके साथियों को कंठस्नान कराया तथा हजारों निर्दोष कुमारियों को उसके नरकागार से छुड़ाकर मुक्ति दिलायी। आज, अब भी श्रीकृष्ण की इस कृतिकार्य की स्मृतिस्वरूप नरक चतुर्दशी मनायी जाती है। कडुवा (करंट) फल बाजार से लाते हैं और प्रातःकाल उसे स्नानगृह में रख उस पर हम लात मारते हैं। किसको लात मारी, इसके रहस्य की हमें कुछ खबर है? नरकासुर मानवता का शत्रु था क्योंकि वह स्त्री जाति का महान दुश्मन था। नरकासुर उनपर बलात्कार करना चाहता था। इसलिये सभी बन्दी युवतियाँ निरुपाय होकर विचार करती थीं कि कौन उन्हें बन्दीगृह से छुड़ायेगा? क्योंकि उनके ससुर, बाप, भाईओं के बस की यह बात न थी। एक दिन जब नरकासुर और उसके साथियों के वध का समाचार मिले, उस समय का उनका आनंद कल्पनातीत होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रीकृष्ण का कार्य नरकासुर का वध करके ही पूर्ण नहीं हो गया था उनकी मानवता की कठोर परीक्षा अब होनी थी। जो राजा अपनी पुत्रियों के वियोग में विलाप करते थे, अब उनकी पुत्रियाँ जब वापस लौटीं, तो वे उन्हें स्वीकार करने के लिये तैयार न थे। परपुरुष के घर में रहीं पुत्रियों को ससम्मान अपनाने को तैयार न थे। बल्कि यह कहने लगे कि काला मुँह लेकर वापस आने की अपेक्षा, गले में पत्थर बाँधकर डूब क्यों न मरीं ? इन सैकड़ों निर्दोष कुमारियों की स्थिति खाईसे निकलकर कुये में पड़ने जैसी हो गयी। माँ–बाप घर में रखने के लिए तैयार न थे, कोई पाणिग्रहण करने को उद्यत न था, समाज अपनाने के लिये तैयार न था, तो वे निर्दोष युवतियाँ कहाँ जाँय ? श्रीकृष्ण उन्हें उबारने के लिये दौड़, उनका पाणिग्रहण किया और उन्हें अपना कर उन तिरस्कृत बालाओं को समाज में सम्मानित स्थान दिलाया। श्रीकृष्ण की पत्नी होते ही उनके लिये समाज में सन्मान का स्थान निर्माण हुआ।

लोग इस घटना का कितना विकृत स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। नरकासुर के महल में अनेक रूपवान सुन्दरियाँ थीं, इसलिये उनको प्राप्त करने के लिये लालच से ही श्रीकृष्ण ने उसपर आक्रमण किया और वध किया–ऐसा इन महानुभावों का मानना है। इनकी बुद्धि पर तो हँसी ही आती है। नरकासुर तो नराधम था। निर्दोष बालाओं पर बलात्कार करता था, अत्याचार करता था। वह मानव जाति के लिये कलंक स्वरूप था। महान सामाजिक संकट था। इस महान सामाजिक संकट को दूर कर अनाथ युवतियों को अपनाकर श्रीकृष्ण ने समाज और विशेषतः नारी--जाति पर बहुत बड़ा उपकार किया था। क्योंकि नराधमों के कालमुखी पंजे से लड़कियों को छुड़ाने के पश्चात उनका क्या करना है, यह बीसवीं सदी का भी प्रश्न है। उनके माँ–बाप या सास–ससुर उनको कलंक रूप समझकर अपनाने को तैयार नहीं होते।

नरकासुर के नरक से मुक्त उन कन्याओं को यदि श्रीकृष्ण ने न अपनाया होता तो उनकी क्या दशा होती? उस अवस्था में उनके लिए दो ही मार्ग खुले रहते–एक आत्महत्या और दूसरा वेश्यावृत्ति। प्रायः बड़ी संख्या में कन्यायें आत्महत्या का साहस नहीं कर सकतीं। परिणामस्वरूप उन्हें सम्पूर्ण जीवन वेश्यावृत्ति अपनाकर बिताना पड़ता। यदि ऐसा होता तो इस से बढ़कर भयंकर सामाजिक संकट दूसरा क्या होता ?

वस्तुतः श्रीकृष्ण को विलासी कहनेवाले पशु ही हैं। उन्होंने समाजशास्त्र का अध्ययन किया ही नहीं, श्रीकृष्ण के जीवन के सम्बन्ध में वे कुछ जानते या समझते ही नहीं। प्रत्येक काल में जब कभी कन्याओं का अपहरण होता है तब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपहरण से मुक्त बालाओं की ऐसी ही विषम परिस्थिति होती है। श्रीकृष्ण के लिये भी यही प्रश्न था। उनको बन्धनमुक्त तो किया परन्तु उनका समाज में क्या स्थान है? कई वर्षों तक पराये घर में रहनेवाली पुत्री को पिता छाती पर पत्थर रखकर डुबो देने में हिचकेगा नहीं, उसे घर में स्थान नहीं देगा। श्रीकृष्ण ने यह देखा और उन्होंने मानवोचित उद्‌गार प्रकट किये–'यदि उनके साथ कोई शादी नहीं करता, तो मैं शादी करूँगा।' और उन्होंने वैसा ही किया। तभी तो उस काल में उन्हें इतनी महत्ता मिली।

यह श्रीकृष्ण का महान, सामाजिक दिव्य--कृत्य था, न कि विलासी कृत्य। श्रीकृष्ण की पत्नी बनने के पश्चात् किसीकी शक्ति न थी कि उन स्त्रियों की ओर उंगली उठा सके। याने समाज में उनको असामान्य स्थान मिल गया था। यह कृष्ण की तपश्चर्या का परिणाम था। उनके इस कार्य को विलास कहनेवाले के सम्बन्ध में विशेष न कहकर भर्तृहरि के ही शब्दों में कहें तो-- **'ते के न जानीमहे।'** सामान्य व्यवहार -बुद्धि से देखेंगे तो भी विलास दिखायी नहीं देगा। स्पष्ट लगेगा कि महान संकट से श्रीकृष्ण ने मार्ग निकाला है।

श्रीकृष्ण का गुणानुगान नहीं किया जा सकता। जैसा आरम्भ में कहा वैसा ही कहना पड़ेगा -'**असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं...**' परन्तु लोगों का स्वभाव ही ऐसा होता है कि अपूर्व गुणसम्पन्न मानव पर भी कीचड़ उछाले बिना रह नहीं सकते। जिसकी चाहें निन्दा करना इस प्रकार के लोग अपना अधिकार समझते हैं। वे इतना नहीं समझ सकते कि हिमालय के शिखर पर पहुँचना सरल है, परन्तु सद्‌गुणों के शिखर पर पहुँचना अति कठिन। सद्‌गुणों के शिखर पर पहुँचे हुये श्रीकृष्ण पर कीचड़ उछालनेवाले यह बात नहीं समझते, वे उन्हें धूर्त, कपटी और विलासी कहने में हिचकते नहीं। जब कि उनके दूसरे भक्त **'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं'** कहते हैं और अध्यस्त या अनध्यस्त की चर्चा में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री मानकर उनके गुणों को जीवन में उतारने की या उनमें से कुछ प्रेरणा पाकर सही मानने में जीवन में आगे बढ़ने की बात भूल गये हैं। की दृष्टि श्रीकृष्ण में ये दोनों अपनी जगह मूर्ख ही हैं।

होपकिन्स द्वारा दोषपूर्ण जीवन समीक्षा

E. W. Hopkins नामक एक गृहस्थ ने श्रीकृष्ण के जीवन की समीक्षा करने की धृष्टता की है। 'Great Epic of India' नाम की पुस्तक में वह श्रीकृष्ण–जीवन–समीक्षा करते हुये लिखता है कि "श्रीकृष्ण की नीति जैसे को तैसा की (Tit for tat) थी। कूट आचरण कर शत्रु के साथ लड़नेवाला यह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यक्ति था।" इस प्रकार महाभारत के चरित्र नायक का उसने मज़ाक उड़ाया है तथा श्रीकृष्ण चरित्र का ऐसे निकृष्ट रूप से निरूपण किया है। आगे बढ़कर ऐसी आशंका व्यक्त की है, जिसमें चरित्र नायक को इस प्रकार हीन बताया गया है, वह 'महाभारत' जनता को संस्कृति के संरक्षण के लिये कितना बल प्रदान करेगा? जनता का मार्गदर्शन हो सकेगा क्या?

हमारे कई तथाकथित बुद्धिमान, विदेशी समीक्षकों के चक्कर में आ जाते हैं। अपने यहाँ से जिसका निर्यात हुआ, उसे ही हम आयात करते हैं। उस समय इतना भी नहीं देखते कि माल सड़ा हुआ है या ठीक है। अब तो '**यद् साहबोक्तं तद् प्रमाणम्**' मानते हैं। इसी प्रकार 'Religions of India' नामक दूसरी पुस्तक में भी श्रीकृष्ण को भ्रष्ट--व्रती, धूर्त और कपटी आचरण करनेवाले दुष्ट व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है।

इन पुस्तकों को लिखनेवाले कौन हैं इस सन्बम्ध में कुछ विचार न कर हमारे कितने ही तथाकथित तर्कशास्त्री इनमें लिखी हुयी बातों को ब्रह्मवाक्य मान लेते हैं, और फिर ऐसा तर्क प्रस्तुत करते हैं कि "कदाचित उस समय के लोगों को श्रीकृष्ण की नीति रुचिकर लगी होगी तभी उसे समाज में आदर दिया होगा--लोकोत्तर भी माना होगा, परन्तु श्रीकृष्ण में दिव्यता (Divinity) के कोई भी गुण नहीं थे, क्योंकि दिव्य गुणों में ये बातें सम्भव नहीं। इसके अतिरिक्त वे ऐसी बातें भी कहते हैं कि उनकी नीति और उनके जीवन के बीच बहुत बड़ा अन्तर था। उनका जीवन महान विभूति ईसा मसीह के जीवन-सीढ़ी के प्रथम पायदान (stepping stone) के समान था। उनकी '**शठं प्रति शाठ्यम्**' की नीति अनुचित थी।" इस प्रकार कह कर वे '**शठं प्रति सत्यम्**' की बातें करने लगते हैं।

"जरासंध, भीष्म, द्रोण आदि के वध के लिये कपटी नीति--आचरण का आक्षेप भी वे श्रीकृष्ण पर करते हैं। '**शठं प्रति शाठ्यम्**' की अपेक्षा और कोई नीति श्रीकृष्ण के पास थी ही नहीं। हमें शत्रु को प्रेम से जीतना आता है, '**शठं प्रति सत्यम्**' की हमें जानकारी है। गोपियों के साथ अश्लाध्य बर्ताव करनेवाला दैवी गुणों में (Divinity) आ नहीं सकता। भीष्म, द्रोण को मारते समय जिसने सामान्य मानव की तरह भी सत्यासत्य का, नीति-अनीति का विचार नहीं किया था, इतना निकृष्ट कृष्ण था ऐसे मिथ्या दोषारोपण करनेवालों को क्या कहना! वस्तुतः वे बुद्धि का नीलाम किये हैं ऐसा लगता है।

श्रीकृष्ण के विरुद्ध वैसे तो बहुत से आक्षेप होते हैं परन्तु उनमें से दो मुख्य हैं। एक है-व्रज की गोपस्त्रियों के साथ अश्लध्य व्यवहार और दूसरा युद्ध के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समय फूट डालने का। श्रीकृष्ण के तत्त्वज्ञान के साथ जिसे लड़ना हो वह लड़ें। वह जब लड़ेगा तब पता चलेगा कि वे कौन थे? परन्तु ऐसा कौन करता है? परन्तु उनके विरुद्ध किये गये आक्षेपों का विचार हम को करना पड़ेगा। यह आरोप हमारे प्रभु पर हैं। सड़े हुअे विषय पर बोलना है, परन्तु वास्तव में सड़ा हुआ न होने पर भी, सड़ा हुआ बताया जाता है। इसलिये धूल दूर कर के परिस्थिति को साफ करनी है और बताना है कि ये आक्षेप बिलकुल आधारहीन तथा नितान्त असत्य हैं इसलिये इन आक्षेपों के सम्बन्ध में आगे विचार करेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तेरहवाँ प्रकरण

श्रीकृष्ण गुण मीमांसा (२)

श्रीकृष्ण के ऊपर के कतिपय आक्षेप

श्रीकृष्ण को जन्म से ही 'भगवान' की पदवी मिल गयी थी, जो उन्हें बचपन से ही अद्‌भूत और अलौकिक सामर्थ्य दिखाने पर मिली। इसी प्रकार उनके जीवन में कर्तृत्व और सामर्थ्य का अवलोकन करने से **'कृष्णस्तु भगवान् स्वयंम्'** की उपाधि प्रदान की गयी थी इसे भी स्वीकार करना ही पड़ेगा। बुद्धिशाली लोग (!) कृष्ण के विरुद्ध काम--लम्पट, चोर, स्त्रैण और चारित्र्यहीन होने के निरर्थक आक्षेप भी करते हैं। जो व्यक्ति पुष्प--माला के योग्य है उसे लोग जूतों का हार पहनाने की घृष्टता करते हैं। उस काल में भी ऐसा हुआ था। ये लोग ऐसा भी कहते हैं- 'कृष्ण ने अवश्य बड़े–बड़े कार्य किये हैं किन्तु व्रज की गोपियों कें साथ उनका अश्लाध्य वर्तन और रास--लीला, उनके जीवन को कलंकमय बनानेवाले हैं।' ऐसे घृणित आक्षेप करनेवाले महानुभाव एक बिल्कुल सादी और सरल बात भूल जाते हैं कि भारत में यदि किसी चीज़ की सब से अधिक कीमत है, तो वह शील की--चारित्र्य की। चाहे कितना ही महान कार्यकरनेवाला हो वह यदि चारित्र्यहीन होगा तो भारत की जनता उसके नाम पर थूकेगी, वह कभी उसको सम्माननीय स्थान नहीं देगी। हमें इस बात का पता है, इसलिये हमें तो शंका है ही नहीं, होनी ही नहीं चाहिये।

भारत के अतिरिक्त अन्य देशों की परिस्थिति भिन्न है। वहाँ चरित्र को इतना महत्त्व दिया नहीं जाता। विदेशों के बहुत से महान राजनीतिज्ञों, तत्त्वचिन्तकों और विचारकों का चरित्र अक्सर निष्कलंक नहीं होता। फिर भी उनके मत को शास्त्र में प्रमाणभूत माना जाता है। इतना ही नहीं उन्हें अद्‌भुत सामाजिक सम्मान भी मिलता है। इन देशों के लोग चरित्र की ओर इतना ध्यान नहीं देते। इसीलिये वहाँ 'Philosophers above neck' गले के ऊपर से तत्त्वज्ञान की बातें करनेवाले मिलते हैं। गणितशास्त्री, गणितशास्त्री के रूप में पूजे जाते हैं, भले ही उनमें चारित्र्य न हो। लेकिन हमारे देश की परिस्थिति ऐसी नहीं, यहाँ तो पहले चारित्र्य का ही आग्रह रहता है।

चारित्र्य अर्थात् स्त्री–पुरुष का विशुद्ध सम्बन्ध। यदि श्रीकृष्ण लम्पट और विलासी होते; उनका चरित्र शुद्ध न होता तो आज पाँच हजार वर्षों से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वे भारत के लोक-हृदय पर जो अविचल स्थान भुगत रहे हैं, उसे कदापि न भोग सकते।

श्रीकृष्ण के जीवन का विवेचन करनेवाले कितने ही भ्रमित बुद्धि के विवेचकों को श्रीकृष्ण का जीवन पढ़ने योग्य ही नहीं लगता! इन लोगों को लगता है कि इसमें स्त्री पुरुष के बीच के सम्बन्ध का अश्लील रीति से वर्णन किया गया है। अच्छे और शिस्ट साहित्य की व्याख्या यह है–'जिस कृति को हम अपनी माँ, बहिन, पत्नी और पुत्रों के साथ बैठ कर पढ़ संक लोग भागवत को हज़ारों वर्षों से पढ़ते हैं– घर में माँ, बहिन, पत्नी के साथ बैठकर पढ़ते हैं। अरे, हज़ारों स्त्री–पुरुषों के समुदाय के आगे उसका पाठ होता है, फिर भी, इसे पढ़–सुनकर किसीमें भी स्त्री–पुरुष सम्बन्ध के विषय में दुष्ट विचार पैदा होने की या किसीकी काम-वासना उत्तेजित होने की बात कभी सुनी नहीं।

भागवत जैसा सात्विक और उत्तम ग्रन्थ दुनिया के साहित्य में बहुत कम देखने को मिलता है; फिर भी हमारे देश के कई विद्वान, विदेशी विद्वानों का अनुकरण कर, उनके विचार आयात करते हुये कहते हैं: 'श्रीकृष्ण भगवान तो हैं ही नहीं; अरे! उनका चरित्र भी पढ़ने योग्य नहीं।'

काम वासना एक स्वाभाविक वृत्ति है। स्त्रीका पुरुष के और पुरुष का स्त्री के प्रति आर्कषण स्वाभाविक है। जगत में स्त्री–पुरुष प्रकृति और पुरुष हैं। काम--सत्ता प्रभुनिर्मित है; मानव अपनी काम-मर्यादा का उल्लंघन न करे, इसके लिये समाज में नियम निर्माण किये गये हैं। वे सम्बन्ध यदि अव्यवस्थित रहे तो जीवन में सुख, शांति आदि का अभाव रहेगा। गृहस्थाश्रम–धर्म मानव को मर्यादा उल्लंघन करने से रोकता है। पतिव्रता-धर्म स्त्री को उसके धर्म और मर्यादा का मान कराता है। एक पत्नीव्रत--धर्म पुरुष को स्त्री जाति के प्रति निष्ठा का बोध करता है। इसी कारण हिन्दू–धर्म में पतिव्रत, पत्नीव्रत, गृहस्थाश्रम आदि की चर्चा की गई है। स्त्री–पुरुष को मर्यादा में रखने के लिये नियम बनाये गये हैं और इन नियमों के कारण ही समाज की स्थिरता स्थापित है, जीवित है। यह विचार इसलिये व्यवहार में लाये जाते हैं कि हमें इस लोक में आनंद मिले और संसार सुख और सन्तोष से जी सकें। इसके पीछे पाप--पुण्य के विचारों का कोई महत्व नहीं। पुण्य अर्थात् जिसमें मन को संयम में रखना पड़े और परिणाम सुखकारक हो। पाप अर्थात वह, कि जिसमें मनुष्य स्वेच्छाचारी बने और परिणाम स्वरूप सर्वनाश का आवाहन करे।

पाप–पुण्य की समीक्षा

किसी भी समाज में जहाँ स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध विशुद्ध नहीं होता, वहाँ उस घर में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आनंद देखने को नहीं मिलता। सुख सत्य से मिलता है। सत्य धर्माचरण में हैं, संक्षेप में, समाज में स्त्री--पुरुष तो फिरेंगे ही, नित्य नये--२ देखने को भी मिलेंगे, उन पर बन्धन नहीं लगाया जा सकता। फलस्वरूप, कामवृत्ति बेकाबू न बन जाय, इस हेतु से पाप–पुण्य के धार्मिक पर्दे के नीचे स्त्री पुरुष के संबंध की सामाजिक--व्यवस्था रखी गयी है। इसलिये उसमें पर स्त्री पुरुष का सम्बन्ध निंद्य गिना गया है। उस व्यक्ति को पापी कहते हैं, उसके बहिष्कार तक का आदेश किया गया है।

श्रीकृष्ण ने मनुष्य अवतार धारण किया, इसलिये उन्हें भी इन सभी नियमों का पालन करना चाहिये–ऐसा बहुत से लोग कहते हैं। बात तो सत्य है। उन्हें ये नियम तो मानना चाहिये, परन्तु वे माने तब न ? हम तो चाहते हैं कि जगत में दुःख जैसी किसी चीज का अस्तित्व ही नहीं होना चाहिए। परन्तु श्रीकृष्ण हमारी बात मानते हैं ? सामाजिक व्यवस्था का बन्धन स्वीकारते हैं ? हम तो ऐसे अनेक आदेश निकालते हैं। निकाले भी होंगे, परन्तु उनपर कुछ अमल हुआ ? और फिर उनपर कोई फौजदारी कानून लागू नहीं होता और हम फौजदारी कानून (Penal code) लागू करें भी, पर वे हमारी नज़र में पड़े तब न ? उन्हें थोड़ा ही बाँध सकते हैं। इसलिये जब हम श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में बातें करें तब हमारी दृष्टि किसी एक देश में, किसी एक क़मरे में रहनेवाले एक व्यक्ति पर नहीं होनी चाहिये। श्रीकृष्ण का जीवन चरित्र समझने के लिये विशाल दृष्टि और स्थिर मन चाहिये।

श्रीकृष्ण चरित्र का अवलोकन १०×१० फुट के कमरे में बैठकर नहीं किया जा सकता। इसके लिये तो विश्व–गोले की दृष्टि से ही विचार करना चाहिये।

नीति, यह एक भिन्न बात है। नीति याने स्त्री–पुरुष का सम्बन्ध, इसपर मतैक्य नहीं है। भिन्न–भिन्न देशों में नीति के बारे में भिन्न–भिन्न बातें कही जाती हैं। अर्थात, स्त्री -पुरुष के सम्बन्व में अलग–अलग देशों और शास्त्रों की मान्यता एक नहीं है। इसके लिये 'Spencer की Method of Ethics' नाम की पुस्तक पढ़ने योग्य है। देश–देशान्तर की नीति के उदाहरण उसमें दिये गये हैं। कई प्रथाओं को पढ़कर तो हमारे रोंगटे खड़े हो जायेंगे। उदाहरणार्थ कुछ तो अतिथि का स्वागत करने, उसे प्रसन्न रखने तथा उसके सन्तोषार्थ घर की युवा–स्त्री का भी काम चलाऊ दान किया जाता है। घर की युवा–बहू को रात्रि में अतिथि की सेवा शुश्रूषा करने के लिये भेजा जाता है। सभ्य राष्ट्रों की प्रेम से वश में करने की पद्धति स्पृहणीय नहीं लगती ? अब यदि प्रत्येक देश के लोग ऐसा चाहें कि श्रीकृष्ण हमारी पद्धतियों के अनुसार बर्तन करें, तो कैसे सम्भव हो ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रीकृष्ण किसकी बात मानें ? क्योंकि प्रत्येक नीतिमत्ता पकड़नेवाला कहेगा कि श्रीकृष्ण उसकी नीति के अनुसार चलें !

किसके कथनानुसार श्रीकृष्ण चलें ? भावुक भक्तों के धर्म के भय से चलनेवाले भोले मानवों के ? या तथाकथित् समाज सुधारकों के ? अपने को सुशिक्षित मानने वाले लोगों के अथवा रुसियों के ? कोई कहेगा इसमें सोचना क्या ? सज्जनों की बात मानें। पर, किन सज्जनों की माने ? एकत्रित होकर Ball Dance करनेवालों की या स्त्री सार्वजनिक सम्पत्ति है, ऐसा कहनेवाले रूसी सज्जनों की ?

मनुष्य अपनी वृत्तियों को नियंत्रण में नहीं रख सकता। अतः संस्कार का व्यवहार योग्य रीति से चलता रहे, इसके लिये कुछ नियम निर्माण किये गये हैं। मनुष्य को नियंत्रण में रखने के लिये ये नियम आवश्यक हैं। परन्तु ये नियम तो मानव के लिये हैं। महामानव–सम्पूर्ण जगत को अपना माननेवाले वैश्विक व्यक्ति–पर ये नियम किस प्रकार लागू हों ?

श्रीकृष्ण हमारे ताल पर नाचने के लिये नहीं जन्मे। वे हमारे ताल पर नाचने लगे तो फिर पूछना ही क्या ? संसार–व्यवस्था उलट-पुलट हो जाय। हम तो दोष ढूँढ़ने में ही शूर हैं। फिर भी इन नियमों के सम्बन्ध में देखें तो ज्ञात होगा कि इतने बड़े विश्व में मानव-जाति के सीमित प्रमाण में होने पर भी प्रत्येक देश में अपनी सुविधा के लिये कई बातें बुरी और कई बातें भली मानी जाती हैं। जो एक स्थान पर अच्छी होती हैं वे दूसरे स्थान पर बुरी मानी जाती हैं इसलिये ऐसी सीमित बातें वैश्विक व्यक्तित्व के सम्बन्ध में कहनीं दुस्साहस ही है

यदि श्रीकृष्ण हमारे ताल पर नाचें तो हम ऐसे अनुचित आदेश निकालने लगेंगे ? जिसके फलस्वरूप जगत में अंधेर का ही साम्राज्य व्याप्त हो जायेगा। हम तो कहेंगे, "हमें किसी प्रकार का दुःख नहीं चाहिये, मृत्यु दूर होनी चाहिये; शारीरिक दुःख दूर होने चाहिये; अपमृत्यु (Accidents) नहीं होनी चाहिये, अंधेरा होना ही नहीं चाहिये।" बस, न जाने ऐसी दूसरी कितनी माँगे करेंगे कि जिनके गुण–दोषों का हमने तटस्थ मन से पूरा विचार भी नहीं किया यदि श्रीकृष्ण हमारी इन बातों को मान लें तो बड़ा भारी झमेला खड़ा हो जायेगा।

परमेश्वर की कृति में हम दोष देखते हैं ! हमारी इच्छानुसार, उन दोषों को दूर कर, वे सृष्टि–निर्माण करें– ऐसा यदि कोई कहेगा तो जगत में अजीब गड़बड़ हो जायेगी। हम सब से पहले संसार भर का दुःख समाप्त करेंगे परन्तु फिर प्रश्न आयेगा कि सुख ही कहाँ रहा ? दुःख न रहेगा तो सुख की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कीमत ही नहीं लगेगी। मृत्यु को बंद करने जायेंगे को कुछ ही दिनों में पृथ्वी पर रहने को स्थान भी नहीं मिलेगा। भूमि को स्वर्ण की बनायेंगे तो फसल नहीं होगी। उष्णता बन्द कर देंगे तो जीवों का पोषण बन्द हो जायेगा। सृष्टि से हिंसक पशुओं को समाप्त करेंगे तो जीवों की सँख्या इतनी अधिक बढ़ जायेगी कि सांस लेने के लिये भी स्थान नहीं रहेगा। अंधकार दूर करेंगे तो केवल प्रकाश से अनर्थ ही होगा। तात्पर्य यह है कि प्रभु ने सृष्टि जैसी बनायी है वही ही ठीक है।

हमारी बुद्धि सीमित है, दृष्टी मर्यादित है, इसलिये प्रभु भी हमारी कल्पना के अनुसार ही लघु नहीं होने चाहिये। अर्थात् हमारे रीति–रिवाज़, नियम हम जैसे त्रिगुणात्मक और विकारी लोगों के लिये हैं। गुणातीत स्थितप्रज्ञ परमेश्वर के लिये नहीं हैं।

श्रीकृष्ण हमारी ताल पर नहीं नाचते, यह अच्छा है और इसीलिये मानव श्रीकृष्ण की सत्ता को स्वीकारता है। श्रीकृष्ण का वर्चस्व जाज्वल्यमान रहता है।

महामानव और क़ायदे-क़ानून

ये सब नियम, कायदे–कानून किसके लिये होते हैं ? दुर्बल मानवों के लिये ही ये सब आवश्यक हैं। हमारे नीति–नियमों के पीछे हमारा दौर्बल्य छिपा है। मानव को नीति के वस्त्र पहनाने पड़ते हैं, क्योंकि वह दुर्बल है। उसका मन उसके हाथ में नहीं है, वृत्तियों पर उसका नियंत्रण नहीं है। परन्तु जो निर्भय है, जिसका मनोबल अविचल है, उसे वस्त्र की भी (आवरण) क्या आवश्यकता है ? वृत्ति और वासना जिसके दास हो, उसपर क्या नियम लागू करना ? हम निर्बल हैं, पापी हैं तभी इतने नियम पालते हैं। हम असमर्थ हैं इसलिये हमें भारतीय दण्ड–संहिता (Indian Penal Code) की आवश्यकता है। अतः दूसरा ही वैसा ही करे ऐसा हमारा आग्रह होता है। परन्तु सामर्थ्यवान के लिये नियम क्या ? जो सर्वोपरि है उसके लिये नीति की बात कैसी ?

हम संसारी हैं, अपने सुख–दुःख में रत रहते हैं। हमरा ध्येय होता है बच्चे सुखी रहें, उनका कल्याण हो, उनके लिये धन इकठा करना और आभूषण तैयार कराना हमारी सारी प्रवृत्तियाँ आत्म–सुख के लिये और वह भी भौतिक सुख के लिये ही होती हैं। जब कि दूसरे कई ऐसे भी हैं जिनकी समस्त प्रवृत्तियाँ जग के कल्याण के लिये ही होती हैं। जो लौकिक विचारों से अतीत होते हैं। उदाहरणार्थ रान्तिदेव या तुकाराम ने अपने बेटे या पत्नी के लिये कुछ नहीं किया, बल्कि वे तो दुखी ही रहे। हमारी दृष्टिसे भले ही वे अव्यावहारिक हों परन्तु वे प्रभु के अपराधी नहीं हैं। अमरिका के जौर्ज वाशिंग्टन के साथ भी-- ऐसा ही हुआ। उन्होंने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्टैम्प का नियम--भंग करने के लिये हज़ारों रुपयों के अपने प्रतिज्ञा -पत्र (Promissory note) को डुबा दिया; कितनों का देना भी डुबो दिया।

ये सभी महामानव थे। इनके लिये अपना या अपने बेटे -बहुओं का सुख तो गौण बात थी। इनको तो सारी मानव--जाति का हित सम्पादन करना था। ऐसे महामानवों पर हमारे जैसे सामान्य व्यक्तियों के लिये बने नियम लागू नहीं हो सकते। उनको हमारे द्वारा इच्छित वर्ताव का आदेश देना अथवा अपेक्षा रखना अर्थहीन है। हमारा और तुकाराम आदि का व्यवहार--शास्त्र भिन्न है। हम तो कहते हैं--चाहे कुछ करो पर पैसा इकठ्ठा करो और पात्रों को खिलाओ। हमारे आदेश तो थाना मेन्टल हास्पिटल के पागल रोगियों के जैसे हैं।

प्रखर सूर्य की गर्मी से लू लगने के कारण (Sun stroke) कई लोगों की मृत्यु हो जाती है फिर भी कोई सूर्य को इसका ज़िम्मेदार नहीं मानता। अग्नि से करोड़ों रुपये की हानि होती है पर अग्नि को कोई दोष नहीं देता। पानी में डूबकर लोग मरते हैं किन्तु पानी को कोई भी 'कालापानी' की सज़ा नहीं देता। हवा का झोंका राज--रानी के सुकोमल अंगों का स्पर्श करता है, पर उसके लिये उसे सजा नहीं मिलती। सिद्धों की और परमेश्वर की कृतियाँ ऐसी ही होती हैं। जिनके मन के भेद भावों का पूर्णतया लोप हो गया है, उनकी कोई भी क्रिया निरपेक्ष और निष्काम स्वरूप की होती है-- यह बात मन्द बुद्धि के कुंठित मस्तिष्क में किस प्रकार उतर सकती है?

गोपियों का विलोभनीय प्रेम

भगवान श्रीकृष्ण का जीवन अलौकिक है। वे सिद्ध पुरुष थे, जिनको उनके जीवन में अश्लाघ्य और असामान्य व्यवहार दिखायी देता है; और उनमें कमी लगती है-- उनको श्रीकृष्ण के जीवन को समझने के लिये बारह--बारह वर्ष तपस्या करनी पड़ेगी। बुद्धि के निर्मल हुये बिना उनका जीवन समझा नहीं जा सकता। प्रथम बारह वर्षों में भी न समझा जा सके, तो दूसरे बारह वर्ष के अनेक प्रयासों के पश्चात निर्मल बुद्धि में उनके जीवन का प्रकाश पड़ेगा। इस प्रकार बुद्धि निर्मल होगी, तो तब गोकुल वृन्दावन में मात्र सात्विक--प्रेम ही दृष्टिगोचर होगा। चिन्मयता और प्रेममयता देखने को मिलेंगे। गोपियाँ प्रेम की साक्षात देवियाँ लगेंगी। फिर वासनापूर्ण विचार नहीं आयेंगे, श्रीकृष्ण लम्पट नहीं लगेंगे।

श्रीकृष्ण तो प्रेम के, मातृ प्रेम, भ्रातृ प्रेम, वत्स प्रेम आदि के वे अधिष्ठाता हैं। श्रीकृष्ण के अस्तित्व से ही वृक्ष, नदी, झरने आदि प्रेम से झरते थे, मस्ती से बहते थे। इनके प्रेम को वासना की रूप में देखने के समान बड़ा पाप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दूसरा हो ही नहीं सकता। श्रीकृष्ण विश्व-प्रेम के आधार हैं। ऐसे श्रीकृष्ण को देखकर गोपियाँ तन-मन का भान भूल जायँ, तो इसमें नवीनता क्या है? यदि गोपियों का वस्त्र-हरण हो गया तो बुरा क्या है? यह तो उनकी महत्ता है।

रास-लीला का प्रकरण

एक पादरी (ईसाई धर्म प्रचारक) ने एक बार प्रश्न किया- "किस कृष्ण को सच्चा समझा जाय? रासलीला करनेवाले श्रीकृष्ण को या गीता गानेवाले को?" उत्तर में कई पण्डितों ने कहा- "श्रीकृष्ण ने रास-लीला की ही नहीं थी। ये सभी बातें कपोलकल्पित हैं। श्रीकृष्ण चरित्र में वे प्रक्षिप्त हैं।" परन्तु मैं कहता हूँ कि वास्तविकता ऐसी नहीं है। श्रीकृष्ण ने रासलीला की थी; गोपियाँ उनके पीछे पागल बनीं--इसमें अनुचित क्या है? यह सत्य है, इसे अस्वीकार करने की आवश्यकता नहीं।

इन बातों को जाने दें। व्यवहार की सामान्य भाषा में देखें। प्रश्न उठता है, 'गोपियों ने पातिव्रत-धर्म टिकाया या नहीं? पर यह प्रश्न अनुचित है क्योंकि पावित्र्य जिसके लिये है, वह मिल जाय तो उसे टिकाये रखने की क्या जरूरत? कोई कहेगा-" श्रीकृष्ण ने किसलिये गोपियों के साथ अयोग्य व्यवहार किया? गोपियाँ कदाचित कामान्ध बनीं हो और विवेकशून्य हो गयी हों, लेकिन कृष्ण तो ज्ञानी थे। परन्तु श्रीकृष्ण का इसमें क्या दोष?-- **'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'**- शत्रु को शत्रु, मित्र को मित्र, माता-पिता को पुत्र रूप में दृष्टिगोचर होनेवाले कृष्ण का क्या दोष? हमारी जैसी मनोवृत्ति होगी उसी रूप में श्रीकृष्ण हमें दिखायी पड़ेंगे। सच्चा श्रीकृष्ण कैसा है, यह तो अपने मन के विकारों को दूरकर देखेंगे, तभी पता चलेगा।

आज बीसवीं सदी में भी स्त्रियाँ सुन्दर बालक को देखकर भान भूल जाती हैं। पड़ोस में सुन्दर बालक हो तो आस--पास की सम्पूर्ण स्त्रियाँ उसे प्यार करती हैं और खिलाती हैं। पतिदेव घर आ गये हों और उनके लिये चाय बनानी हो, तो बालक को खेल खिलाने में वे यह भी भूल जाती हैं! जनसामान्य बालक के प्रति स्त्रियों की इतनी ममता होती है तो श्रीकृष्ण जैसे अदभुत और अलौकिक बालक के पीछे गोपियाँ पागल बन जायँ, इसमें आश्चर्य ही क्या है?

और फिर बालक को स्त्री-पुरुष का भेद ज्ञात नहीं होता। वह अपने को खिलानेवाले पुरुष की मूछ खींचता है। अपने को खिलानेवाली स्त्री के स्तनपर भी कभी हाथ रखता है। फिर उसका कोई भी स्त्री प्रतिकार नहीं करती। श्रीकृष्ण पर आक्षेप करनेवाले भूल जाते हैं, कि श्रीकृष्ण ने जिस समय रास--लीला की थी,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उस समय उनकी उम्र मात्र सात वर्ष की थी। भला आज बीसवीं सदी के घोर कलियुग में भी कोई सात वर्ष का बालक लम्पट हो, कभी ऐसा सुना? आर सात वर्ष का बालक हजारों स्त्रियों की काम-वासना को किस प्रकार तृप्त कर सकता है? वास्तव में श्रीकृष्ण को विलासी कहनेवालों की बुद्धिपर हँसी आती है।

यदि श्रीकृष्ण की गरदन को हज़ारों स्त्रियों के करपाश लपेटते थे, तो उनकी गरदन के चारों ओर सदैव यम पाश भी लिपटा रहता था, यह बात नहीं भूलनी चाहिये। जिस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण की रासलीला का वर्णन है, उसी ग्रन्थ में श्रीकृष्ण के अप्रतिम पराक्रमों का वर्णन भी किया गया है। उसको पढ़ने के पश्चात अवश्य लगेगा कि श्रीकृष्ण भगवान ही थे, अन्यथा मानव के लिये यह शक्य न था।

ग्रन्थ की यदि नहीं माननी तो एक भी बात न मानें और माननी हैं तो सारी बातें मानें। केवल जो हमें अनुकूल लगे, उतना अच्छा और शेष सब खराब, यह कहाँ का न्याय है? पुस्तक स्थिर और गम्भीर दृष्टि से पढ़नी चाहिये, वरना पुस्तक पढने का अर्थ ही नहीं। पढ़ते समय उसके लेखक का क्या कहना है, उसे समझने के लिये निर्मल बुद्धि से प्रयास करना चाहिये। कोई गुड़--खोपरा --नारियल लेकर हमें बरबश पढ़ाने नहीं आया कि 'लो पढ़ो ही।' पढ़ना हो तो प्रथम उपक्रम और उपसंहार का विचार कर अपनी राय देनी चाहिये।

भगवान श्रीकृष्ण तो दिव्य व्यक्ति हैं। उनपर (Penal Code) दण्ड --विधान या दूसरे कायदे--कानून लागू नहीं होते। हमें उनको सजा करनी हो तो कर सकते हैं, परन्तु जब वे हमारी पकड़ में आयें तब न! इसलिये उनके दोषों के सम्बन्ध में विचार करनें की आवश्यकता नहीं। श्रीकृष्ण को बाँधने के लिये तो यशोदा बनना होगा। यशोदा माता ने ही उन्हें बाँधा था, माता के प्रेमबंधन से वे बँधे थे। परन्तु दूसरे में उनको बाँधने की शक्ति है क्या? और इस शक्ति के मिलने के पश्चात कोई बाँध ही नहीं पायेगा, बाँधने की इच्छा ही नहीं करेगा।

आक्षेप करनेवालों की पामरता

श्रीकृष्ण पर आक्षेप करने से पूर्व तनिक नीचे उतर कर, व्यावहारिक बनकर विचार करें। एक पतिव्रतकी चाहे जैसी और जितनी बात करते होंगे, परन्तु यह याद रखना चाहिये कि काम--रस का जिसने आस्वादन किया है, ऐसे दस हज़ार में से बिरला ही ऐसा कोई नर-वीर मिलेगा जो स्त्रियोंके प्रेम कटाक्ष से चलायमान न होता हो। श्रीकृष्ण पर आक्षेप करनेवाले स्वयं ही मानसिक व्यभिचारी होते हैं। युवा स्त्री के साथ निर्विकार भाव से (अन्तःकरण से) ही बात होगी-ऐसा छाती ठोंककर निर्भीकता से कौन कह सकता है? अरे भाई,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कनक का मोह छूट सकता है, उससे यत्नपूर्वक बचा जा सकता है, परन्तु स्त्री के कटाक्ष से उनके भी घायल होने के प्रमाण हैं। स्त्री विद्युत के समान है। उसकी चमक बड़े-बड़ों को चकित कर देनेवाली होती है। किसी ने सच ही कहा है– रमणी महान माया है।

हम, इस युग के मानव, स्त्री के प्रति आदर की बातें तो बहुत करते हैं, **Ladies should be respected first**–इत्यादि सूत्रों का भी उच्चार करते हैं, परन्तु एकान्त में प्रत्येक अपने मन से पूछे कि यह सूत्र किस स्त्री के लिये मैंने उच्चारा है? सामान्यतः आजकाल प्रत्येक स्त्री–पुरुष, कुछ अपवादों को छोड़, एक दूसरे की ओर कामदृष्टि से ही देखते हैं।

काम–विकार के स्वरूप में शास्त्रविदों की सम्मति देखें, Heveloc Ellis भी यही कहता है। **Heveloc Ellis** की बात जाने दीजिये, हमारे देश में कालिदास ने कहा है–**श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत्।**' दुष्यन्त ने शकुन्तला को देखा और उसके मन में काम भाव पैदा हुआ, यह स्वाभाविक है। परन्तु यहाँ तो शकुन्तला में भी दुष्यन्त को देखकर ऐसी अभिलाषा प्रकट हुयी। उस समय कालिदास ने दुष्यन्त से उपर्युक्त वाक्य कहलवाया है।" क्योंकि त्रिलोक में देव, ऋषि या मानव कोई है, जो सुन्दर स्त्री के लिय अशक्य हो? पाराशर और व्यास जैसे–मनीषि भी जब कामिनी के मोह में फँस गये तो फिर दूसरे सामान्य मानवों की तो बात ही क्या है? बड़े–बड़े ऋषि–मुनियों की हजारों वर्षों की तपश्चर्या कामिनी के एक नयन कटाक्ष से धूल में मिल गयी तो फिर अमथालाल, फोगटलाल की क्या बिसात? हाँ, सभ्यता के निमित्त, शर्म के मारे या अपमानित होने के भय से कुछ अनुचित शरारत करने से भले ही हिचक जायें। परन्तु मन तो मलिन होगा ही। मन में विकार निर्माण नहीं होगा ऐसा कैसे कहा जा सकता है? ऐसे पामर मानवों को पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के विरुद्ध लंपटता और विलासिता के आक्षेप करने का क्या अधिकार है?

साथ साथ एक ध्यान में रखने योग्य बात यह भी है कि श्रीकृष्ण का गोपियों के साथ का सम्बन्ध बाल्यकाल का ही था। युवा होने के पश्चात श्रीकृष्ण कभी गोपियों के पास नहीं गये। अब यदि श्रीकृष्ण लम्पट होते, गोपियों के साथ उसका सम्बन्ध वासना का होता, तो उन्हें मथुरा से गोकुल जाने में कितना समय लगता? श्रीकृष्ण रथ में बैठकर नित्य गोकुल जा सकते थे। अर्थात् यदि श्रीकृष्ण ने कामोपभोग किया होता तो युवावस्था में प्रवेश करने के पश्चात वे कभी गोकुल जाते ही। वे काम–लम्पट होते तो क्या उन्हें फिर नहीं जाना चाहिये था?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐतिहासिक अनुसंधान अथवा विज्ञान की दृष्टि से देखों या शरीर-विज्ञान का विचार करें तो भी निश्चित रूप से हम किसी भी प्रकार से श्रीकृष्ण को लंपट नहीं सिद्ध कर सकते। उन्होंने गोपियों के साथ कामोपभोग किया ही नहीं। गोकुल में आनंद लेकर मथुरावासी, सर्वजनप्रिय श्रीकृष्ण कभी सैर-सपाटे के बहाने भी माखन खाने के लिये गोपियों के यहाँ गये हैं ? कोई प्रेमी ऐसा धैर्य रख सकता है ? अतः क्या श्रीकृष्ण की रासलीला उनकी काम-विह्वलता या कामुकता बताती है ? आपके सामने बहुत सी बातें स्पष्ट रूप से रखी हैं। कुछ भी कहने से पूर्व विचार कर देख लो। कोई कुछ भी कहे, तब 'हाँ' में 'हाँ' मिलाने से पूर्व बुद्धि और हृदय दोनों से पूछकर लें।

वेद-पुराणों की लक्षणाप्रधान शैली

पुराण कोई सामान्य कोटि के ग्रन्थ नहीं हैं। इनको समझने के लिये निर्मल बुद्धि चाहिये। पुराणों में सम्पूर्ण वर्णन लक्षणा से किया गया है, और जो लक्षणा को समझ ही नहीं सकता वह पुराण की कथा सही रीति से कभी समझ नहीं सकेगा। पुराण ही नहीं अपितु समस्त वैदिक वाङ्मय लक्षणा से भरपूर है, क्योंकि **'परोक्षप्रिया इवहि देवाः।'** देवताओं की समस्त बातें स्थूल दृष्टि की नहीं होती। उनकी बातों का सूक्ष्म हेतु समझना चाहिये। इसको समझने के लिये बुद्धि चलानी पड़ती है, बुद्धि कसनी पड़ती है। वैदिक वाङ्मय में--ऋग्वेद में एक स्थलपर ऐसा भी लिखा है कि 'सूर्य नें उषा के साथ जारकर्म किया।' वास्तव में यह एक रूपक है। रात्रि को आराम करनेवाला वह सूर्य उदय होते ही उषा को प्रकट करता है। लेखक इसप्रकार रात्रि, उषा और सूर्य के बीच का सम्बन्ध रूपक द्वारा व्यक्त करते है। इसी प्रकार दक्ष की चन्द्रमा को सत्ताईस कन्यायें देने की बात आती है। ये सत्ताइस कन्यायें सत्ताइस नक्षत्र हैं। हम स्थूल दृष्टि से देखते हैं अतः हमें ईर्ष्या होती है।

स्कन्द पुराण में वर्णन है कि शंकर-पार्वती का सैकड़ों वर्षों तक रति प्रसंग चलता है। वस्तुतः पुरुष (शंकर) और प्रकृति (पार्वती) का रति प्रसंग सतत चलता ही है, इसीसे जीवों की उत्पत्ति होती है। इसलिये ईश्वर (Spirit) और पार्वती (Matter) का रति-प्रसंग अनादि है।

वेद में वर्णित है कि कन्या के वयस्क हो जाने पर उसका आस्वादन पहले चन्द्रमा, फिर गन्धर्व और तब अग्नि करता है। इसके पश्चात् ही वह पुरुष के उपयोग करने योग्य बनती है।

एक प्राध्यापक महोदय ने एकबार मुझसे कहा--वैदिक वाङ्मय में कुछ भी तथ्य नहीं हैं। उसमें ऐसी वैसी बातें लिखी हैं परन्तु आजकल ऐसा क्या होता है ? क्या यह शक्य है ? मैंने इस भले मानस को कहा--वैदिक वाङ्मय पढ़ते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समय आँख, हृदय व मन खुली रखनी पड़ती हैं, और बुद्धि को कसना पड़ता है। यदि गहराई में उतरकर देखोगे तो वह मूक लक्षणा तुरन्त समझ में आ जायेगी। उसमें जो विधान कहे गये हैं वे सर्वथा यथार्थ ही हैं।

कन्या वयस्क होती है तो उसके मन में काम-वासना जाग्रत होती है। मन यानी चन्द्रमा। विराट पुरुष का मन चन्द्रमा है -- '**चन्द्रमा मनसो जातः**' इसलिये कन्या के वयस्क होते ही सर्व प्रथम उसका उपभोग चन्द्रमा करता है अर्थात् भोग-वासना पहले मन में निर्माण होती है। उसके पश्चात युवान कन्या को पुरुष की बातें रुचिकर लगती हैं। गन्धर्व स्वर या मधुर वाणी का वाचक है। स्वर का देवता याने गन्धर्व। चन्द्रमा के बाद गन्धर्व उसका उपभोग करता है अर्थात् पुरुषों का भाषण कामोद्दीपन करता है। पुरुष बोलता हो तो सुनने की इच्छा होती है। ऐसा होनेपर कन्या में प्रचण्ड कामाग्नि प्रदीप्त होती है, याने गन्धर्व के बाद उसका उपभोग अग्नि के द्वारा होता है। उद्दीपित कामाग्नि पुरुष के भोग्य बनती है-कामासक्त बनी कन्या का उपभोग पुरुष करता है।

इस प्रकार सम्पूर्ण वस्तु लक्षणात्मक है। यदि इसे न समझे तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है। मस्तिष्क चक्कर खा जाय-ऐसा यह आलेखन है। इसीलिये कहा गया है कि वैदिक वाङ्मय को सभी न पढे। जिनमें लक्षणा को समझने की शक्ति है उनको ही पढ़ना चाहिये। जिन्होंने वाङ्मय के लिये जीवन दिया हो वे ही पढ़ने के अधिकारी कहे गये हैं। सम्पूर्ण ऋग्वेद लक्षणा से भरा है इसलिये दिनभर मात्र रुपया पैसा गिननेवाले इसको कैसे समझ सकते हैं? वे वेद को पढ़ने बैठेंगे तो वेद उनके लिये नींद लाने की दवा (Bromide) सिद्ध होंगे। वेदों की लक्षणा अतिगूढ़ है।

गोपीवस्त्रहरण-एक रूपक

उसीप्रकार गोपी और गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण भी यहाँ लक्षणा हो सकते हैं। यहाँ लक्षणा नहीं है यह मानने का कोई कारण नहीं। गोपी शब्द में 'गो' अर्थात् इन्द्रियाँ। हरी घास देखी कि गायें दौड पड़ती हैं। इन्द्रियों का भी ऐसा ही है। मन की वृत्तियाँ ही गोपियाँ हैं। ये वृत्ति रूपी गोपियाँ अपने होश भूलकर जहाँ चाहे वहाँ दौड़ जाती हैं। मार्ग में खड्डों का भी विचार नहीं करती। गोपियों को ऐसे खड्ढा में गिरने से बचानेवाले श्रीकृष्ण हैं। गोपति- (गो का पति) याने इन्द्रियों का पति अर्थात् इन्द्रियों का देवता-आत्मा। इसलिये आत्मा के साथ सम्बन्ध हो तो, इंद्रियाँ अधःपतन से बचें।

अब वृत्तियाँ भी कई अच्छी होती हैं और कई बुरीं। बुरी वृत्तियों को सुधारने-उनपर नियंत्रण रखने का काम गोपीवल्लभ का है। इसलिये श्रीकृष्ण को कुछ गोपियों का वस्त्र-हरण करना पड़ा। बुरी मनःप्रवृत्ति का आत्मा को वस्त्रहरण करना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पड़ता है, जिसका उद्देश्य गोपियों को सन्मार्ग पर लाना ही होता है। इसलिये श्रीकृष्ण ने मन की प्रवृत्तीरूपी गोपियों के वस्त्रों का हरण किया अर्थात् तत्कालीन 'महामानवों' का वस्त्र हरण किया–उन्हें नग्न कर डाला। पूतनामौसी बनकर आयी थी, परन्तु यह कौन है श्रीकृष्ण जानते थे।

पाप की ओर मानव सहज ही आकर्षित हो जाता है। महान जर्मन लेखक गेटं ने 'फोस्ट' नामक अपने काव्य में लिखा है– 'पाप अति रमणीय है। कितने सुन्दर वस्त्र पहनकर आता है! लेकिन यह पाप है ऐसा जानते समझते हुये भी हमसे वह हो जाता है।'

स्वाध्यायके समय सिनेमा देखने के लिये मुफ्त का पास मिलते ही मन चंचल हो जाता है। और स्वाध्याय छोड़कर सिनेमा देखने के लिये जाने का मन होता है। इस समय ध्येयरूपी श्रीकृष्ण मन का निग्रह करता है। वह हमको स्वाध्याय छोड़कर सिनेमा जाने से रोकता है। '**कर्षणात् कृष्णः**' याने हमको जो अपनी ओर खींचे रहता है वह कृष्ण। इन्द्रियों की प्रवृत्ति को कौन खींचता है? ध्येय। इसलिये जीवन में ध्येय होना चाहिए।

श्रीकृष्ण मन की प्रवृत्तियों को खींचनेवाले थे। ध्येय मुरली बजावे तो मनःप्रवृत्ति उपस्थित हो जाती है। जिनका जीवन ध्येयहीन हो, निष्प्राण हो; चेतनाशून्य हो, उच्च और उदात्त विचारहीन हो उनकी मनःप्रवृत्ति भव्यता की ओर खींच ही नहीं सकती–आकर्षित ही नहीं हो सकती। पुरुषार्थ (मनुष्ययत्न) और ईश्वरकृपा साथ साथ बदलते हैं। इसलिये श्रीकृष्ण–गोपी—यह भी एक प्रकार की उच्चकोटि की लक्षणा क्यों नहीं हो सकती? – गोपियाँ क्रीड़ा करती थीं, जब ऐसा सुनते हैं तब श्रृंगार लगता है। हमारे मन में श्रृंगार के अतिरिक्त अन्य विचार होता ही नहीं। सावन के अन्धे को हरा–ही–हरा दीखता है न!

गोपीजनप्रिय–अबलाओं के तारक

श्रीकृष्ण ने भोग में जीवन व्यतीत किया–ऐसा कहनेवाले साक्षात पशु ही हैं, मूर्ख हैं, थाना के मानस चिकित्सालय के योग्य हैं। वे श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में देखते ही नहीं कि—

'क्व सप्तहायनो बालः क्व महाद्रिविधारणम्।
ततो न ज्ञायते शंका व्रजनाथ! तवात्मजे॥' सात वर्ष का बालक क्या हज़ारों स्त्रियों की कामवासना तृप्त कर सकता है? उन्हें काम शांति प्रदान कर सकता है? जो इस बात को स्वीकार करते हैं, उनका श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में कुछ न बोलना ही ठीक है, क्योंकि वह मानव–शक्ति के बाहर की बात है। और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदि श्रीकृष्ण के लिये यह शक्य था तो श्रीकृष्ण मानव नहीं थे, यह स्वीकारना पड़ेगा, और वह यदि मानव न थे-पुरुषोत्तम थे, तो हमें उनके सम्बन्ध में बोलने का अधिकार नहीं। उनके सम्बन्ध में कुछ भी करने का अधिकार उनके समान होने पर ही हमें मिल सकता है।

शृँगार कोमल वस्तु है। शृंगार की उत्कृटता याने भक्ति और भक्ति की उत्कृटता अर्थात् शृंगार। भागवत एक शृंगारिक ग्रन्थ है, इसमें शृंगार को ऐसा तात्त्विक वस्त्र पहनाया गया है कि उसमें असत्य, अश्लील इत्यादि कुछ भी नहीं रहा। सम्पूर्ण भागवत पढ़ने पर भी मन में एक भी विकार नहीं आता, यह उसका प्रमाण है।

साहित्यिकों की एक सभा आयोजित की गयी थी। यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि अश्लील वाङ्मय की व्याख्या क्या है? एकाएक किसीमें कुछ भी कह सकने का साहस न हुआ, फिर कुछ एक व्यक्ति ने कहा, "सास-ससुर, बेटा-बहू, माँ-बाप, भाई-बहिन एक साथ बैठकर पढ़ सकें, सुन सकें-वह श्लील, बाकी सब अश्लील! और भागवत इस दृष्टि से बाँचने पर श्लील-सभ्य वाङ्मय है। उसको पढ़ते हुये जिनमें काम-भाव पैदा हो, उन्हें नादान ही समझना चाहिये।

गोपियों का प्रेम तो दिव्य और विशुद्ध था। श्रीकृष्ण के प्रति उनके प्रेम में वासना का अंश मात्र भी न था। स्त्रियाँ बालक के प्रति नैसर्गिक रूप से आकर्षित होती हैं। उसपर भी यदि बालक लोकोत्तर और अप्रतिम सुन्दर हो तो फिर पूछना ही क्या? जब आज की सामान्य स्त्रियों के सम्बन्ध में ऐसा है तो फिर जिस काल में **'नृत्यति वेदांतसिद्धान्तः'** था उस समय गोप--स्त्रियाँ पागल बनकर पतिका कार्य छोड़कर उसके साथ खेल करें तो इसमें ताज्जुब क्या है? सुन्दर और रमणीय बालक प्रत्येक का ध्यान आकर्षित करे, यह स्वाभाविक है।

कौरव-दरबार में द्रौपदी की लाज लुट रही थी, उस समय द्रौपदी ने श्रीकृष्ण की सहायता माँगी। द्रौपदी ने श्रीकृष्ण से, दौड़कर सहायता करने की प्रार्थना की और उस समय **'गोपीजनप्रियः'** कहा। चाहे कितने ही संकट में फँसी हो, कोई पतिव्रता स्त्री सहायता के लिये किसी भी भोगलम्पट, कामी या व्याभिचारी पुरुष को पुकारेगी क्या? द्रौपदी उस समय पतिव्रता धर्म के भंग के संकट में थी, तो क्या किसी गुण्डे को पुकारती? यह बात स्पष्ट करती है कि श्रीकृष्ण अबलाओं के रक्षक थे। विपत्ति में भी, लम्पट व्यक्ति की सहायता लेना तो एक ओर रहा, उसका नाम लेने पर भी लज्जा आती है। बुरे व्यक्ति को प्रत्यक्ष में कौन हिम्मत पूर्वक कहेगा कि यह मेरा भाई है। और भोगलम्पट व्यक्ति किसी अबला की शील- रक्षा के लिये मैदान में कूदेगा क्या? इस दृष्टान्त से सिद्ध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता है कि श्रीकृष्ण लम्पट नहीं वरन् अबलाओं के उद्धारक थे। वे पातिव्रत्य के भक्षक नहीं बल्कि रक्षक थे; इसीलिये द्रौपदी ने उन्हें बुलाया यह नहीं भूलना चाहिये। अब यदि हमको ऐसे समय अन्य कुछ लगता हो तो हमारे मस्तिष्क में असभ्यता ही है ऐसा निश्चित रूप से समझना चाहिये।

'महाभारत' में बाल-लीला का वर्णन होने से ऐसा नहीं समझना चाहिये कि वह थी ही नहीं। महाभारत मूलतः राजनीतिक ग्रन्थ है, इसीलिये महाभारत में '**गोपीजनप्रिय**' शब्द एक ही बार आया है। स्पष्ट है कि बाल-लीला को उसमें प्राधान्य न दिया गया हो। महाभारत में भी यह शब्द किस प्रसंग में प्रयुक्त हुआ है यह जानने योग्य है। खूब सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने योग्य प्रश्न है।

द्रौपदी का दृष्टान्त एक ओर रखें, दूसरा दृष्टान्त देखें—

शिशुपाल द्वारा किये गये आक्षेपों की समीक्षा

शिशुपाल तो कृष्ण का कड़ा शत्रु था। उसने श्रीकृष्ण को गाली देने में कोई कमी नहीं रखी। ऐसे शिशुपाल ने भी कभी श्रीकृष्ण के विरुद्ध विलासी, व्यभिचारी, भोगलम्पट होने का आक्षेप नहीं किया। श्रीकृष्ण ने जाहिर राजसभा में शिशुपाल के लिये कहा 'तू नराधम है, अपनी वासना को सन्तुष्ट करने के लिये ब्राह्मण कन्याओं के अपहरण में भी तू झिझकता नहीं।' श्रीकृष्ण ने उसपर व्यभिचारीपन का गम्भीर आक्षेप किया और शिशुपाल ने इसे चुपचाप सुन लिया। यदि श्रीकृष्ण भोगलम्पट होते तो शिशुपाल उनका आक्षेप निर्वांक होकर सुन लेता क्या? वह श्रीकृष्ण से अवश्य कहता "-मेरी बात कहते हो, परन्तु अपने चरित्र की ओर तो दृष्टि डालो, तुम स्वयं हजारों स्त्रियों के साथ रमण करते हैं और मुझे व्यभिचारी कहके गाली देते हो? परन्तु शिशुपाल ने ऐसा कुछ नहीं कहा, शिशुपाल कृष्ण का कोई भी दोष न निकाल सका, क्योंकि उनका जीवन गंगा जैसा निर्मल और पवित्र था।

शिशुपाल जैसे समकालीन और दिन-रात के, पल-पल के इस शत्रु को जब श्रीकृष्ण की लम्पटता के सम्बन्ध में कुछ पता नहीं, तो आज के (१९५३) नाथाभाई, पोथाभाई इस बात का ज्ञान होने का दावा कर श्रीकृष्ण के विरुद्ध लम्पट होने का आरोप कैसे लगाते हैं? इन लोगों की तार्किक बुद्धि पर हँसी आती है।

वास्तव में हम तो जीवन पर्यन्त रति और रमण की बातों में ही मग्न रहते हैं। इसलिये इसके अतिरिक्त बुद्धिपूर्वक विचार करते ही नहीं और श्रीकृष्ण-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुण–मीमांसा करने के बजाय उनकी निन्दा ही करते बैठे हैं। परंतु श्रीकृष्ण किसी भी दृष्टि से व्याभिचारी हो ही नहीं सकते।

भक्ति–शृंगार और शृंगारिक–भक्ति में अन्तर होता है। सूक्ष्म दृष्टिवाला ही इसे समझ सकता है। स्थूल दृष्टिवालोंको सब शृंगार ही लगता है। भागवत में तो केवल प्रेममय वातावरण का ही वर्णन किया है।

श्रीकृष्ण निर्गुण, निराकार परब्रह्म ही है। उन्हें हम अपने मापदण्ड से नहीं माप सकते। अरे, इतना तो हम सोचे कि जो व्यक्ति बचपन से ही दुराचारी हो, व्यभिचारी या काम भोग में ही रत रहता हो, वह बचपन में ही मल्ल-‐युद्ध कर सकता है क्या? मान्धाताओं के सामने युद्ध क्षेत्र में खड़ा रह सकता है? श्रीकृष्ण को चरित्रहीन कहना-‐बुद्धि का दिवाला निकालने जैसा है। सूर्य पर थूकोगे तो तुम्हारे ही मुँह पर पड़ने वाला है। सूर्य को उससे कोई हानि नहीं होनेवाली।

यह तो स्वतंत्रता का (!) –वाणिस्वातंत्र्य का युग है। इसलिये वाणी को जैसा रुचे उसी प्रकार प्रयुक्त कर सकते हैं। भगवान कृष्ण के विरुद्ध जैसा चाहें वैसा बोल सकते हैं। उनके ऊपर जैसे चाहें वैसे गन्दे आक्षेप कर सकते हैं। परन्तु याद रहे कि पुनः यह स्वरूप मिलने वाला नहीं। बाकी बुद्धिमान व्यक्तियों को तो श्रीकृष्ण के जीवन की चर्चा ऐसी मलिन दृष्टिस नहीं करनी चाहिये। श्रीकृष्ण के जीवन प्रसंग लक्षणा में लिखे गये हैं। इसलिये चर्चा न करना ही उत्तम है। चर्चा करनी हो तो उसे सच्चे अर्थ में समझने का प्रयास करना चाहिये। लक्षणा का गूढ़ अर्थ ढूँढ़ने का प्रयास करना चाहिये। सात वर्ष का श्रीकृष्ण, द्रौपदी की पुकार, शिशुपाल द्वारा दोषारोपण न किया जाना, और मल्लयुद्ध- कुशलता इत्यादि सिद्ध करते हैं कि श्रीकृष्ण कामी न थे। गोकुल में उनका पुनः न आना भी क्या बताता है? परन्तु हम तो रति सुनकर अर्थ का अनर्थ करते हैं।

निष्पाप जीवन

भगवान की बाल–लीला को अनुचित रीति से प्रस्तुत कर गन्दा आक्षेप करनेवाले यह नहीं समझते कि आज भी स्त्री के स्तनपर हाथ रखनेवाले सप्तवर्षीय बालक को कोई कानून सज़ा नहीं, कर सकता। फौजदारी की कोई भी धारा इसे लागू नहीं होती। आर्थात यदि उसे बालक मानें तो उसे सज़ा नहीं, क्योंकि वह इस लोक में ही नहीं परलोक में भी निर्दोष है। जब कि पच्चीस वर्ष का युवक ऐसा काम करे तो? भगवान का जीवन निष्पाप था। श्रीकृष्ण निर्गुण–निराकार हों तो दोष आता ही नहीं। सात वर्ष की तो अति शैशवावस्था है। अतः उनके जीवन को निष्पाप समझने का प्रयास करना चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रीकृष्ण का जीवन परम पावन था अतः परब्रह्म की दृष्टि से तो दोष है ही नहीं और लौकिक दृष्टि से भी नहीं हैं। कौरवों के हाथ से किया गया द्रौपदी का अपमान उनको सदैव, रात-दिन खटकता था-चुभता था। सभ्य और पवित्र स्त्री का अपमान उनको सहन नहीं होता था। संस्कृति-सम्पन्न, शास्त्र-सम्पन्न के लिये यह अपमान सहना शक्य भी नहीं! श्रीकृष्ण यदि लम्पट होते तो उन्हें इसके लिये दुःख प्रकट करने की क्या आवश्यकता थी? श्रीकृष्ण-सन्धि के समय के उनके उद्गार याद कीजिये। जिस बात का संकेतमात्र भी शिशुपाले ने नहीं किया, षडयंत्रकारियों को भी जिस बात का पता नहीं लगा, उसका पता (अर्थात् उनकी लम्पटता का पता) आज के-शिशुपाल के वंशजों को लगा-यह आश्चर्य की बात है।

श्रीकृष्ण चारित्र्यवान थे। संस्कृति के पुनरुद्धार के लिये उन्होंने जन्म लिया था। उनके व्यवहार में कहीं भी असभ्यता देखने को भी नहीं मिलती। तेजस्वी तार्किक-बुद्धि का प्रयोग करेंगे तो हमें श्रीकृष्ण के सच्चे स्वरूप का पता लग जायेगा और आज शिशुपाल के वंशज जो बीभत्स आक्षेप करते हैं, वे किस तरह निराधार हैं, यह समझ में आयेगा। यह है उन के आचरणका एक भाग।

श्रीकृष्ण पर दूसरा भी एक आक्षेप है। वह उनकी (Philosophy) तत्त्वज्ञान के विरुद्ध है। बहुतसे तथाकथित सुशिक्षित और आवश्यकता से अधिक बुद्धिमान कहते हैं कि तत्त्वज्ञानकी दृष्टि से श्रीकृष्ण का तत्त्वज्ञान-निम्न श्रेणी का है। कुटिल प्रपंच रचनेवाले कृष्ण के लिए तत्त्वज्ञान देना शक्य न था। इस प्रकार लोग हमारे मन में मिथ्या भ्रम पैदा करते हैं, वह भ्रम दूर होना चाहिये।

दूसरे दोषारोपण का विवेचन अब बाद में करेंगे। प्रथम दोषारोपण तो मुख्य है। उसे पढ़कर सज्जन भी कदाचित भ्रम में पड़ जायँ। उनका भी विश्वास श्रीकृष्ण पर से कम हो जाय। कर्तृत्ववानों और बुद्धिमानों को नीचे गिराने का यह सरल मार्ग है। निकृष्ट लोग इस मार्ग को अपनाते हैं और एक दूसरे को, दूसरा तीसरे को, असद् वृत्ति के लोग ऐसे विचारों का धक्का, गाडी की तरह मारते ही रहते हैं! उनका समाज में यही महत् कार्य (!) होता है। श्रीकृष्ण का जीवन एक ऐसा उत्कृष्ट, आकर्षक गुलाब का फूल है जिसे चींटी भी स्पर्श नहीं कर सकती।

क्या श्रीकृष्ण पारमार्थिक दृष्टि से निकृष्ट थे? श्रीकृष्ण के विरुद्ध किये जाने वाले दूसरे आक्षेपों का आगे विचार करेंगे और अपने मन में यदि कहीं भ्रम रहा हुआ होगा, तो उसे दूर करेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चौदहवाँ प्रकरण

श्रीकृष्ण गुण मीमांसा (३)

श्रीकृष्ण पर धूल उड़ानेवाले भले उड़ाया करें वह श्रीकृष्ण पर लगने वाली नहीं, बल्कि उड़ानेवाले की आँख में ही आकर पड़ेगी। श्रीकृष्ण जैसा निष्कलंक–चरित्रवान और प्रतिभाशाली व्यक्ति जगत के इतिहास में दूसरा कोई भी देखने को नहीं मिलता। उत्कृष्ट चरित्र का गर्व कर सकें ऐसे व्यक्ति वे थे। नासमझ और निर्बुद्ध लोग श्रीकृष्ण के जीवन को समझे बिना मनचाहे आक्षेप करते रहते हैं। इन आक्षेपों को करने से पूर्व श्रीकृष्ण के जीवन को समझने का प्रयास भी उन्होंने नहीं किया। जगत जिसकी वन्दना करता है ऐसे महान व्यक्तियों को अपनी इच्छानुसार गिराने का प्रयास करनेवालों की मनोवृत्ति हीन होती है। उनके विचार उनकी हीन मनोवृत्ति का ही प्रदर्शन करते हैं।

युद्ध में कपटनीति

श्रीकृष्ण पर दूसरा आरोप है--'कपट--नीति--आचरण का।' धर्म की पुनर्स्थापना के लिये अवतरित इस युग- पुरुष के विरुद्ध इसप्रकार के आक्षेप करनेवालों की ज्ञान-शक्ति और बुद्धिमत्ता पर दया आती है। श्रीकृष्ण पर ऐसा दोषारोपण करने वाले कहते हैं कि यदि श्रीकृष्ण धर्म की ही स्थापना करना चाहते थे तो उन्होंने अधर्माचरण क्यों किया? सात्त्विक लोगों के आधार, संरक्षक तथा लोकरक्षक श्रीकृष्ण ने भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य जैसे सद्गुण–सम्पन्न और सद्प्रवृत्त मानवों का संहार किसलिये कराया? उन्होंने तो '**परित्राणाय साधूनाम्**' अवतार लिया था तो फिर ऐसे साधु पुरुषों का संहार कपटनीति का आचारण कर क्यों कराया? क्या वे सचमुच सात्त्विकों के रक्षणार्थ पैदा हुये थे? भीष्म पितामह अर्थात् भगवद्भक्ति की पराकाष्ठा। जगत के महान भक्तों और सत्पुरुषों की पंक्ति में उनका नाम आता है—

'प्रल्हादनारदपराशरपुंडरीक
व्यासाम्बरीषशुकशौनक भीष्मदाल्भ्यान्।
रुक्मांगदाङ्गदाऽर्जुनवशिष्ठबिभीषणादिन्
पुण्यानिमान् परमभागवतान् स्मरामि॥'

धर्मसंकट के दो उदाहरण

ऐसे व्यक्तियों का वध करना महान भूल गिनी जायगी। लोगों के मुँहपर ताला नहीं लगाया जा सकता। प्रत्येक युग में बहुत से महापुरुषों के जीवन में ऐसी घटनायें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

घटी होती हैं जिनके सम्बन्ध में अच्छी और बुरी--दोनों प्रकार की टीकायें हो सकती हैं। इन महापुरुषों के सामने ऐसे प्रसंग उपस्थित हुये होते हैं कि वे दो में से जिस एक मार्ग को ग्रहण करें, उसकी भी लोग टीका ही करेंगे। परन्तु ये महामानव लोकापवाद का विचार न करके समाज का, मानवजाति का, जिस कदम के उठाने से कल्याण हो वही उठाते हैं। ऐसा करने पर अपकीर्ति भी हो तो उसकी भी वे परवाह नहीं करते। ऐसे लोगों की स्थिति 'एक ओर कुँआ, दूसरी ओर खाई' जैसी होती है।

अँग्रेजी में 'Play making' कर के लिखा है, उसमें Blind and Hill न्याय है। उदाहरणार्थ-बिच्छू को मारना है, क्यों कि वह काटे तो पीडा होगी। परन्तु वही बिच्छु यदि शिवलिंग पर जा बैठा हो तो क्या करेंगे ? इसी प्रकार का यह प्रश्न है। अब चाहे जैसा भी आचरण करें, तो भी लोग दोष ही देंगे।

दुर्योधन, दुःशासन जैसे खल पुरुषों का श्रीकृष्ण को संहार करना था। श्रीकृष्ण इन दुष्ट पुरुषों का संहार करें, तो यह बात समझ में आने योग्य है, परन्तु उनके साथ भीष्म-द्रोण जैसे सत्पुरुषों का संहार क्यों किया ? श्रीकृष्ण के इस कृत्य को अनीतिमय होने का आक्षेप बहुत से लोग करते हैं। इंग्लैण्ड में ऐसी दो ऐतिहासिक घटनायें घटीं। एक के सम्बन्ध में टेनीसन ने सुन्दर काव्य लिखा है। इस कथा के अनुसार एक नगर का शासन-भार एक महिला के ऊपर था। नगर के रक्षण की जिम्मेदारी भी उसीके ऊपर थी। नगर की सुरक्षा खतरे में थी। विजयी नाटक द्वारा काव्य की नायिका को-उस महिला को सन्देश भेजा गया 'यदि नगर को विनाश से बचाना हो तो रात्रि को मेरे घर पर आजाओ।' उस महिला के लिये धर्म-संकट उपस्थित हो गया। यदि उसके घर जाय तो नगर, विनाश से बच जाय, परन्तु लोग चरित्र के सम्बन्ध में अनेक बातें तो करेंगे ही।

लोग उसे कहते-'नगर का रक्षण प्रभु करते, तुम्हारे चरित्रभ्रष्ट होने का क्या कारण ?' और यदि उसके घर न जाय तो लोग कहते-कितनी स्वार्थी है ! अपने सम्मान की रक्षा के लिये एक व्यक्ति की हठ के लिये सम्पूर्ण नगर को आग में होम दिया है Greatest good of the greatest number-ऐसी परिस्थिति थी। यह घटना इग्लैण्ड में हजार वर्ष पूर्व घटी। टेनीसन ने उसे Lady-godible (लेडी-गोडिब्रल) में काव्य रूप में प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार राजा अर्ललिओड्रीक की पत्नी के जीवन में एक ऐसी ही समस्या आ पडी। राजा निष्ठुर और क्रूर था; प्रजा उससे अत्यन्त पीड़ित थी। उसके अत्याचार से जनता त्राहि-त्राहि करती थी। राजा की पत्नी सहृदय, धर्मनिष्ठ और दयालु थी। वह पति को परमेश्वर मानती थी परन्तु लोगों का दुःख उससे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देखा नहीं जाता था। जब उसने राजा से जनता को पीड़ित न करने की प्रार्थना की, तो उस नराधम राजा ने उसको कहा-यदि लोगों पर अधिक दया आती है तो नगर में नग्न होकर घूमकर आ। मेरी इस बात को तू यदि स्वीकार करेगी तो मैं लोगो पर अत्याचार नहीं करूँगा।

कैसा धर्म संकट! एक ओर पति-भक्ति, दूसरी ओर दया। एक ओर चरित्र और दूसरी ओर हजारों मानवों की यातना। अब यदि वह नग्न होकर घूमती तो लोग कहते-'नगर का चाहे कुछ भी होता परन्तु उसे अपने चरित्र की रक्षा तो करनी चाहिए थी।' और यदि शहर में नहीं घूमती, तो लोग कहते कि अपने मान-सम्मान के लिये जनता को नष्ट होने दिया! इस प्रकार उसके लिये 'कुआ और खाई' जैसी स्थिति थी; इस ओर भी गिरना और उस ओर भी। उसके भाग्य में तो यश के बजाय जूतियाँ ही थीं। मराठी में एक कहावत है '-- इकड़े आड़ तिकड़े विहीर।'

परन्तु उदात्त हृदयवाले, जिनको मानव जाति की सेवा करनी है, ऐसे धर्म-संकट में भी, इस बात का विचार नहीं करते कि मेरे सम्बन्ध में लोग क्या कहेंगे बल्कि इसका विचार करते हैं कि जन कल्याण किसमें है। और जिससे मानव जाति का कल्याण हो वैसा कदम उठाते हैं।

श्रीकृष्ण का दृष्टिबिन्दु

श्रीकृष्ण के जीवन के सम्बन्ध में भी ऐसा ही है। भीष्म द्रोणादि का संहार किया, तो लोग कहते हैं-ऐसे सत्पुरुषों का वध करके अच्छा नहीं किया। श्रीकृष्ण '**परित्राणाय साधूनाम्**' कहे के? और यदि उनको मारा न होता तो लोग कहते- वे लोग सत्पुरुष थे परन्तु दुष्टों का साथ देते, थे इसलिये श्रीकृष्ण को इनका वध करना चाहिये था। श्रीकृष्ण ने सज्जनता को टिकाने के लिये भीष्म, द्रोण, कर्ण इत्यादि की बलि चढ़ाने का उचित निश्चय किया था।

इसप्रकार का आक्षेप करनेवाले महाशय कहते हैं-श्रीकृष्ण का उद्देश्य भले ही अच्छा रहा हो, परन्तु उसे सिद्ध करने के लिये उन्होंने बुरे और निकृष्ट साधनों का उपयोग किसलिये किया? उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिये था। अर्थात कृष्णने कपटी आचरण क्यों किया? मारना था तो धर्म से क्यो नहीं मारा?

श्रीकृष्ण की विचारश्रेणी अद्भुत थी। उनकी दृष्टि मानव जाति के कल्याण पर लगी थी। अन्य बातों की उन्हें चिन्ता न थी। 'भीष्म द्रोण और कर्ण सज्जन हो तो भले हों। मुझे तो सज्जनता टिकानी है, अधर्म के स्थान पर धर्म की स्थापना करनी है और इस धर्मस्थापना के कार्य में यदि भीष्म आदि अव-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रोध पैदा करते हों तो उनका भी वध करने के लिये मैं तैयार हूँ।' ऐसा था श्रीकृष्ण का दृष्टिबिंदु।

द्रोण वध का प्रसंग

द्रोण--वध की घटना ने बड़ी हलचल मचायी है। यह घटना अनेक प्रकार के तर्क वितर्कों को पैदा करनेवाली है और अपरिपक्व बुद्धि के व्यक्ति उसका वास्तविक अर्थ समझ नहीं सकते। द्रोण का अपने पुत्र के प्रति अपार प्रेम था। यदि अश्वत्थामा का वध हो तो द्रोण शस्त्र नीचे डाल दें ऐसी स्थिती थी। अतः श्रीकृष्ण ने अश्वत्थामा के युद्ध में मर जाने की अफवाह फैलाई और कभी असत्य न बोलनेवाले युधिष्ठिर के मुँह से 'नरोवा कुंजरोवा' कहलवाया। श्रीकृष्ण के आलोचक कहते हैं कि इस समय श्रीकृष्ण ने इस प्रसंग पर अधर्माचरण किया था, युधिष्ठिर से झूठ बुलवाया था यह क्या स्पृहणीय है?

ऐतिहासिक संशोधक इस घटना के घटित होने को नकारते हैं। महाभारत में यह बात है परन्तु प्रक्षिप्त है। वे दलील करते हैं कि 'द्रोण कुछ कच्ची मिट्टी के नहीं बने थे कि 'अश्वत्थामा मर गया' की अफवाह को सुनकर, उसे सच्चाई मानकर शस्त्र–त्याग कर दें। शस्त्रत्याग करने से पूर्व उन्होंने अपने अन्य सैनिकों और–कौरव सेनापतियों को पूछकर, बात के सत्यासत्य का निश्चय किया होता। अतः महाभारत में यह प्रसंग प्रक्षिप्त है–बाद में जोड़ा गया है। समय के साथ साथ महाभारत आदि ग्रन्थों में ऐसे अनेक प्रसंग घुसा दिये गये हैं।' परन्तु इतिहास-वेत्ताओं के ऐसे तर्कों को स्वीकार करने का कोई प्रयोजन नहीं। यदि इस प्रकार से एक एक प्रसंग को प्रक्षिप्त मानने लगें तो महाभारत, रामायण आदि महाकाव्य मात्र कपोल कल्पनापूर्ण कथायें ही हैं ऐसा मानने का समय आ जायेगा।'

वास्तव में जिस समय द्रोणाचार्य ने शस्त्र–त्याग किया उस समय दो तीन घटनायें घटीं। **एक** तो...रण-संग्राम में अश्वत्थामा के मारे जाने की घटना और 'नरो वा कुञ्जरो वा' कहकर धर्मराज द्वारा किया गया उसका समर्थन। **दूसरी**—ब्रह्मास्त्र प्रयोग। ब्रह्मास्त्र को 'एटमब्रम' ही समझें! वह निरपराधों को भी बिना लिये–दिये मारता था। द्रोण के हाथ से छूटा ब्रह्मास्त्र न जाने कितने मानवों का प्राण–हरण कर लेता, इसीलिये ब्रह्मास्त्र का प्रयोग न करने को समझाने के लिये ऋषि आये। उन्हों ने द्रोण से कहा–अधर्म से ऐसा करने का विचार तुम्हें कैसे आया? ऐसा कहकर द्रोण की भर्त्सना की, उसे लाँछित किया। **तीसरी** घटना.. .भीम ने द्रोणाचार्य का पद–वंदन करके कहा-- 'आपने जीवनभर अधर्म

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का पक्ष लिया। पत्नी और पुत्र के प्रेम में अनेक अनुचित कार्य किये। क्या इतने से ही तृप्त नहीं हुये? अभी भी अधर्म का साथ देकर क्या धर्म की स्थापना के लिये लड़नेवाले हज़ारों सज्जनों को मारेंगे? क्या मरते समय भी अधर्म ही करके मरेंगे?

इन सभी बातों का द्रोण के मन पर गहरा असर पड़ा। सभी ने क्रुद्ध होकर जो कटु, मर्मवेधी वाक्य कहे उन्होंने द्रोण को जागृत कर दिया। द्रोण, कोई दुर्योधन के समान दुष्ट, हृदयहीन या निष्ठुर न थे। कुछ भी हो, वे सहृदय थे। इसलिये बहुत सी ऐसी बातों से उनकी अन्तरात्मा अकुला उठी। अपने द्वारा किये दुष्कर्म उनकी दृष्टि के सामने खड़े हो गये। मैंने आज तक जो कुछ किया है सब बुरा किया इस बात का उनको भान हो गया और जो हुआ, सो हुआ परन्तु अब बुरे कार्य में भागीदार न बनूं, ऐसी भावना उनके मन में उपस्थित हुयी। लेकिन साथ-साथ दूसरा प्रश्न भी था। जिन कौरवों का साथ जीवन--भर दिया, जिनका अन्न खाया और जिन कौरवों ने द्रोण की शक्ति में विश्वास रखकर पाण्डवों के साथ युद्ध करने का साहस किया, उनको एकाएक कैसे छोड़ा जा सकता है? उनका विश्वासघात कैसे किया जा सकता है? इसके अतिरिक्त अपनी भी उपकीर्ति होगी। अतः उन्होंने मध्यमार्ग निकाला, ब्रह्मास्त्र खींचकर यथास्थान युद्ध में बैठकर समाप्त हो जाने का निर्णय किया और समाप्त हो गये।

अतएव युद्ध में समाप्त हो जाने का द्रोण का निर्णय एकमात्र 'नरो वा कुञ्जरो वा' वाला प्रसंग ही न था। श्रीकृष्ण क्या मूर्ख थे? वे जानते थे कि कोई कहेगा फिर भी स्वपक्ष को पूछे बिना शत्रु पक्ष का कथन द्रोण मानेंगे? यह सामान्य बात क्या कृष्ण को ज्ञात न थी? इसलिये यही घटना नहीं बल्कि एक ही समय में ऐसी कितनी ही घटनायें (Coincidents) घटी थीं, जिनसे द्रोण का मन दंशित होने लगा। इसीलिये द्रोण ने शस्त्र त्यागकर युद्ध में प्राणत्याग का, मृत्यु का आह्वान किया।

इस प्रकार द्रोण वध की घटना को आलोचकों और इतिहासवेत्ताओं ने भिन्न-भिन्न रूप से बताया है। अतः केवल 'नरो वा कुञ्जरो वा,' की बात प्रक्षिप्त है, यह मान्य लगता है। परन्तु, ऐसे तर्कों के जाल में फँसने की आवश्यकता नहीं। श्रीकृष्ण के आलोचक और इतिहासवेत्ता जैसे कहते हैं वैसी यह घटना घटी ही न हो और यह बात प्रक्षिप्त न हो तो अच्छा ही है। फिर भी कृष्ण पर आक्षेप करने योग्य बात रही ही क्या? लेकिन यह घटना प्रक्षिप्त न हो और जिस प्रकार लिखी गयी है, वैसी ही घटित हुयी हो तो भी क्या है? अतः प्रक्षिप्त वाली बात को अधिक स्थान न देकर 'नरो वा कुञ्जरो वा' शब्द-प्रयोग ठीक है यह बात

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वीकारकर श्रीकृष्ण का जीवन धार्मिक था या अधार्मिक इसका विचार करेंगे।

धर्म निर्णायक तत्त्व

धर्म–न्याय को निश्चित करते समय पाँच वस्तुओं का विचार करना होता है — १ श्रुति (Revelation). २ अंतःकरण (Conscience). ३ विकास (Evolution). ४ उपयुक्तता (Utility). ५ योग (Mysticism). पाश्चात्य विचारक भी इन पाँच बातों को मानते हैं। यदि इन पाँचों में से प्रथम चार बातें नहीं होती, तब महापुरुष योग (Mysticism) का आश्रय लेते हैं। पर इसका अनर्थ मत करना क्योंकि आज तो योग का भूत–प्रेतादि वश करने और ऐसे दूसरे कार्यों में उपयोग किया जाता है।

महापुरुष कोई भी निर्णय लेने से पहले अपने अन्तःकरण से परामर्श कर लेते हैं और अन्तःकरण की आवाज़ का अनुसरण करते हैं। (Voice of Spirit) अन्तःकरण की आवाज़ इनके लिये अन्तिम आवाज़ होती है। अन्तःकरण जिस कार्य को करने का आदेश प्रदान करता है उसे वे अन्य कुछ भी विचार किये बिना तुरन्त ही हाथ में ले लेते हैं। ये लोग अन्तर की ध्वनि को ही प्राधान्य देते हैं। इस दृष्टि से ही उन्हें जो न्याययुक्त लगता है, धर्म्य और योग्य लगता है, वैसा ही कदम वे उठाते हैं। मनुस्मृति में भी कहा गया है–**'हृदयेनाभ्यनुज्ञातोयो धर्मस्तन्निबोधत।'**

कवि कालिदास के साहित्य में भी इसकी प्रतिध्वनि हुई है। दुष्यन्त ने शकुन्तला को कण्वऋषि के आश्रम में देखा और उसका मन उसकी ओर आकर्षित हुआ। सभी शकुन्तला को ऋषि–पुत्री के रूप में जानते थे, परन्तु दुष्यन्त ने सोचा निश्चय ही वह क्षत्रिय–पुत्री होनी चाहिये। क्योंकि– **'संतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमंतः करणप्रवृत्तयः।'** श्रीकृष्ण इस कोटि के मानवों में श्रेष्ठ थे और उन्हें तो ऐसे योगी भी योगेश्वर के रूप में पूजते थे— **'योगं योगेश्वरात् कृष्णात् साक्षात् कथयतः स्वयम्'** इसीलिये तो श्रीकृष्ण के अन्तःकारण को जो कार्य योग्य लगा, वही उन्होंने किया।

संस्कृति रक्षार्थ कूटनीति

प्रवंचना–कपट नहीं करना चाहिये, यह बात बिल्कुल सत्य है। परन्तु रणांगण में सत्य–हेतु, धर्म–रक्षार्थ वह करना पड़े, तो कोई बात नहीं। यह तो रणनीति कहलाती है। रणनीति में कपट त्याज्य नहीं है। श्रीकृष्ण ने किसीसे पाँच, पच्चीस लाख रुपये छीनने के लिये या अपने लिये ज़मीन प्राप्त करने के लिये घर बैठकर कपट नहीं किया। अपनी स्वार्थ–सिद्धि के लिये कपट भिन्न बात है और परोपकार के लिये रणक्षेत्र में छल–नीति–आचरण भिन्न बात है। युद्ध में तो कपटी के साथ कपट करना ही नीति है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्री रामचन्द्रजी को मर्यादा-पुरुषोत्तम के रूप में पूजा जाता है। उन्होंने कभी भी अन्यायपूर्ण या अनुचित व्यवहार नहीं किया। उनके जैसा पवित्र आचरण दूसरा देखने को नहीं मिलता। ऐसे रामचंद्रजी ने भी स्वर्ण–मृग का रूप धारण कर धोखा देने के लिये आये मारीच नामक राक्षस से कहा **'धर्मो व्यतीस्ते तु मयापि धर्मः'** तूने यदि कपट न किया होता तो मेरे सामने यह प्रसंग न आता, रामचन्द्रजी मृगरूप मारीच को मारने के लिए उद्यत हुए। उस समय मारीच तपस्वियों के लक्षण गिनाने लगा है। प्रत्युत्तर में राम ने कहा, 'ठीक है, तू अपने धर्म का पालन कर। तुम जैसे लोगों को मारना मेरा धर्म है, इसका मुझे आचरण करने दे।

विदुर–नीति में भी कहा गया है– **'भावेन देवं कपटेन शत्रुम्।'** परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि शास्त्रों ने कपट करने का आदेश दिया है। अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये छल नहीं करना चाहिये। दूसरे का अकारण ही सर्वनाश करने के लिये कपट नहीं करना चाहिये। परन्तु जब सँस्कृति के संरक्षण का प्रश्न उपस्थित होता है, तब छद्म नीति अपनानी पड़ती है। वह निन्द्य नहीं। अतः किसी के कुछ लाख रुपयों को हड़पने के लिये कपट करनेवाले तथा जगत के कल्याण और संस्कृति के रक्षणार्थ कपट करनेवाले को एक ही तुला से नहीं तोला जा सकता, एक ही माप से नहीं मापा जा सकता। मानवता के हित के लिये कपटी लोगों के साथ कपट से काम लेना पड़ता है।

कोई शिक्षक विद्यार्थी को मारे और वैसे ही कोई गुण्डा उस छात्र को मारे–इसमें अन्तर है। विद्यार्थी को दण्ड देने के पीछे शिक्षक का उद्देश्य विद्यार्थी का भला करना होता है, जब कि गुण्डा अपने स्वार्थ के लिये मारता है। मारते तो दोनों हैं, परन्तु दोनों के बीच ज़मीन आसमान का अन्तर है। जिनको इसमें अन्तर नहीं दिखायी देता उनकी बुद्धि धन्य (!) ही है।

संक्षेप में संस्कृति के रक्षण तथा मानवता के विकास के हेतु कपट करना रण-नीति है। प्राश्चात्य संस्कृति भी इस बात का समर्थन करती है। उनका सिद्धान्त है– 'Everything is fair in war.' जब कि एडमण्ड बर्क (Edmund Burke) के कथनानुसार जब से 'Age of Chivalry has Jone' तभी से 'Everything is fair in love' घुस गया है।

युद्ध में कई बार कपट आवश्यक हो जाता है और कई बार इसका आश्रय लिये बिना विजय असंभव–सी लगती है। ब्रिटेन और फ्राँस की लड़ाई का प्रसंग है– General Wolf (जनरल ऊल्फ) ने क्यूबेक की लड़ाई जीतकर कनाडा को ले

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लिया है। इस लड़ाई दौरान एक घटना घटी। एक ओर फ्रान्सीसी सेना और दूसरी ओर अंग्रेज सेना थी, बीच में एक नदी थी। फ्रान्सीसी सेना नदी के ऊपर भी थी। शत्रु को चकमा देने के लिये ब्रिटीश सेनापति हाइलैण्डर (Hylander) ने थोड़ी सेना नदी के किनारे छोड़कर शेष सेना को अपने साथ ले लिया। हाइलैण्डर के आते ही फ्रेन्च सेनापति ने पूछा 'तू कौन है?' हाइलैण्डर ने उत्तर दिया–' La france ' 'किस रेजिमेण्ट में है?' De-la Rin' – यह फ्रेंच शब्द है, अतः सुनते ही उसे अन्दर छावनी में बुला लेता है। बाद में उसने वह सेनापति को मार दिया और लड़ाई जीत ली।

शत्रु को बनाना–यही रणांगण, युद्ध में शत्रु को मूर्ख बनाना ही चाहिये। लड़ाई अर्थात् शत्रु के दुर्बल पक्ष (Weak point) का उपयोग कर उसे मारना। पिछली लड़ाई में भी शत्रु की दुर्बलता (Weak point) का ही लाभ उठा कर उसका पराभव किया गया था। आश्चर्य तो यही है कि पश्चिम के जो नीतिशास्त्री अथवा उनके अनुगामी हाइलैण्डर की प्रशंसा करते हैं वे ही श्रीकृष्ण को कपटी कहते हैं।

पाश्चात्य नीतिशास्त्री हाइलैण्डर के इस आचरण को योग्य और उपयुक्त बतलाये हैं। उनके नीतिशास्त्र को यह बात मान्य है, परन्तु जब श्रीकृष्ण की बात आती है तब वे पाश्चात्य नीतिशास्त्र के समर्थक श्रीकृष्ण के बर्ताव को अनैतिक बतलाते, हैं यह कहाँ का न्याय है? ऐसे मानने वालों की बुद्धि को धन्यवाद ही दें न; जो इतना विचार भी नहीं करते और जैसा अनुकूल पड़े वैसा तर्क लड़ाते हैं। वे इतना भी नहीं सोचते कि हाइलैण्डर ने तो आक्रमण किया था, जब कि फ्रेंच लोग अधार्मिक भी न थे। लेकिन यहाँ पाण्डव आक्रमक न थे; द्रोण अधार्मिक पक्ष के थे। तो फिर श्रीकृष्ण का कृत्य अयोग्य कैसे कहा जायेगा?

शत्रु की निर्बलता को समझ लेना और उसका लाभ उठा कर प्रहार करना ही रणनीति है। इसके बिना लड़ाई क्या लड़ाई है? शत्रु कहे– 'मुझमें कम शक्ति है इसलिये तू भी कम शक्ति से लड़।' ऐसा कहने वाले शत्रु को यही उत्तर दिया जा सकता है– 'लड़ाई ऐसे नहीं होती। लड़ने से पूर्व सभी बातों का विचार कर लेना चाहिये। यदि शक्ति ही न थी तो लड़ने क्यों आया? कल कहेगा मेरी सेना कम है तरी अधिक, तू लड़ मत। यह कैसे हो सकता है?' और शत्रु में कुछ न कुछ दुर्बलता (Weak Point) हो तभी उसका पराभव होता है। यदि उसमें कोई दुर्बलता ही न हो तो पराभव का प्रश्न ही कहाँ रहता है? रणक्षेत्र में एक सबल क्या दूसरे निर्बल को छोड़ेगा? यदि शत्रु के पास कम साधन–सामग्री हो, तो क्या वह बराबर बाँटकर लड़ेगा? दोनों समान हों तो क्या वह लड़ाई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहलायेगी ? ग्यारह और सात अक्षौहिणी सेना के स्थानपर-दोनों बराबर ही चाहिये ऐसा कहा जाय, तो क्या ऐसा हो सकता है ? इस बात की समालोचन तो जिन्होंने युद्ध किया है; जो रणक्षेत्र में गये हैं, वे ही कर सकते हैं। वातानुकूलित (Air conditioned) कमरों में सोफे पर पड़े-आइस्क्रीम की प्लेट लेकर चम्मच से खाते-खाते रणक्षेत्र की समीक्षा नहीं हो सकती। शत्रु की दुर्बलता का लाभ न लेने की बातें करनेवाले, किसी गुण्डे की दादागिरी-उस का थप्पड़ चुपचाप अपने मुँह पर सहन कर लेनेवाले हैं। यह सुनकर आश्चर्य होता है। सच्चा मर्द ऐसी बातें ही नहीं करता।

भीष्म वध का प्रसंग

श्रीकृष्ण जानते थे कि भीष्म सद्गुणी हैं फिर भी उन्होंने उसका वध किया, क्योंकि सद्गुणों का अतिरेक अथवा निष्क्रिय सद्गुण दुर्गुण ही हैं। 'True virtue lies in the mean between two extremes.' युधिष्ठिर की द्यूत-प्रियता के अतिरेक का परिणाम हमें ज्ञात है। प्रजा को उसके कारण कितना सहन करना पड़ा !

शास्त्रों ने स्त्री-वध को नकारा है। स्त्री अवध्य मानी जाती है। परन्तु यदि वह स्त्री आततायी बन जाय तो ? क्या स्वेच्छाचारी अपकर्त्री के आचरण पर भी केवल वह स्त्री होने के नाते उसको दण्ड न दें ? नहीं, शास्त्रों का आदेश ऐसा नहीं है। बुरे कर्म को करनेवाला व्यक्ति चाहे-स्त्री हो तो उसे भी दण्ड मिलना ही चाहिये। इसीलिये श्री रामचंद्रजी ने ताड़िका राक्षसी का और श्रीकृष्ण ने मौसी पूतना का वध किया था—

'गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आततायिनमायातं हन्यादेवाविचारयन्॥'

आततायी बने गुरु, बालक, वृद्ध या ब्राह्मण भी अवध्य नहीं समझे जाते। उन्हें भी झिझक के मारने का आदेश है। बम्बई की विधानसभा (Bombay Legislative Counsil) में भी एक बार यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि स्त्री लूट--पाट करे, गुंडगिरी करे तो उसे सज़ा हो या नहीं ? उसके विरुद्ध मुक़दमा चलाया जाय या नहीं ? राज्य सभा में अपना मत व्यक्त किया- 'यदि स्त्री गुंडगिरी करे तो उसके विरुद्ध भी मुक़दमा चलाकर सज़ा करनी चाहिये।'

'शिखण्डी सामने आयेगा तो शस्त्र नहीं चलाऊँगा' ऐसा निश्चय दुर्बलता है। इसीलिये शिखण्डी को बीच में रखकर भीष्म का वध किया गया था। शत्रु की दुर्बलता का लाभ उठाकर उसका वध करना तो रणनीति है। युद्ध करनेवाले में यदि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुछ कमी हो, कमज़ोरी या दोष हो तो उसे अपने संरक्षण की पूरी तैयारी पहले से ही कर लेनी चाहिए, वरना विरोधी पक्ष उसकी इस दुर्बलता का लाभ उठायेगा ही और उठाना ही चाहिये, इसमें कुछ भी बुराई नहीं। यह तो रणनीति है। इसलिये जो युद्ध का रणनीति की दृष्टि से विचार करनेवाले हैं, उन्हें श्रीकृष्ण ने जो कुछ किया वह अनुचित या अयोग्य नहीं लगेगा।

द्रोण ने, चाहे वे कितने ही भद्र पुरुष हों, मलिन वृत्ति का प्रयोग किया था। अधर्म का पक्ष लेकर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर के वे हजारों निर्दोष मानवों के संहार के लिये तत्पर हो गये थे। ऐसा अधार्मिक कृत्य करने वाले व्यक्ति के वध में दोष किस बात का? वर्तमान राजनीति के अनुसार भी श्रीकृष्ण का कृत्य उचित ही सिद्ध होता है। श्रीकृष्ण ने जो कुछ किया था वह रणनीति के अनुरूप ही किया था। उनका एक भी काम रणनीति के विरुद्ध न था, इसलिये इस बात को प्रक्षिप्त न मानें तो भी यह राजनीति को दृष्टिगत करते हुये उचित ही लगेगी।

द्वन्द्व-युद्ध के नियम समरांगण में लागू नहीं होते। श्रीकृष्ण ने धर्म और संस्कृति के रक्षण के लिये जो कुछ उचित था, किया। वहाँ यदि कपट नीति भी अपनायी हो तो उसमें भी दोष जैसा कुछ नहीं। श्रीकृष्ण ने अपने लिये पैसा इकठ्ठा करने या रुपयों का ढ़ेर लगाने के लिये कुछ भी नहीं किया। परन्तु, आज हम अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये कितने ही छल करते हैं और उन्हें उचित ठहराने के लिये कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने भी ऐसा ही किया था! व्यभिचारी लोग व्यभिचार करते हैं और अपने दुष्कर्म को छिपाने, उचित ठहराने के लिए कृष्ण पर बहुत सी स्त्रियों के साथ सम्बन्ध रखने का निरर्थक तर्क प्रस्तुत करते हैं। अपने स्वार्थ के लिये श्रीकृष्ण पर दोषारोपण करते हैं। श्रीकृष्ण के जीवन से अपने आचरण के समर्थन के लिये सहारा ढूँढ़ते हैं। ऐसे मूर्ख सात जन्मों में भी श्रीकृष्ण के जीवन को समझ नहीं सकते। संक्षेप में, श्रीकृष्ण ने तो सत्याचरण करने वालों के संरक्षण के लिए सत्य की स्थापना के निमित्त रणनीति के अनुकूल ही काम किया।

मुत्सद्दी साधु पुरुष

इसके अतिरिक्त कई महानुभाव ऐसा आक्षेप करते हैं कि श्रीकृष्ण राजनीतिज्ञ (Politician) थे, न कि ईशु आदि सन्तों जैसे सत्पुरुष। उन्होंने ईशु की तरह दुष्ट लोगों के प्रति सत्य का व्यवहार नहीं रखा। राजनीतिज्ञ के रूप में उन्होंने **'शठे शाठ्यम्'** नीति अपनायी थी। सत्पुरुषों का सिद्धान्त तो **'शठं प्रत्यपि सत्यम्'** होना चाहिये। अतः श्रीकृष्ण उत्कृष्ट कक्षा के असामान्य राजनीतिज्ञ Statesman थे, परन्तु सत्पुरुष नहीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जगत में बहुत से सन्त-महात्मा हो गये हैं। भारत में तो प्रत्येक युग में अनन्त सन्त हुये हैं। भारतीय संस्कृति में तो शैतान को स्थान नहीं, यह बात सत्य है। जीवन का सिद्धान्त भी यही है कि प्रत्येक व्यक्ति में सद्विचार मौजूद रहते हैं– 'Everyman is potentially divine.' शैतान में भी देवत्व जाग्रत करना दिव्य बात है। जो लोग दुष्टों को इस प्रकार सुधार सकते हैं वे निश्चय ही महापुरुष हैं। गुंडे को भी मारना योग्य नहीं। नारदजी ने वाल्मीकि को इसीप्रकार सुधारा था। नारदजी सचमुच ही दिव्य व्यक्ति थे, जिन्होंने वाल्या कौली को वाल्मीकि ऋषि बना दिया।

सामान्यतः मानव दो प्रकार के होते हैं– हथियार देखकर लड़ने के लिये तैयार हो जाने वाले, और शस्त्र देखकर भय से भागनेवाले। परन्तु नारदजी लुटेरे के शस्त्र को देखकर न तो लड़ने को तैयार हुये और न ही भय से भाग उठे। वे अद्भुत और अद्वितीय व्यक्ति थे। इसका कारण उनकी निर्भयता थी। ऐसे महान व्यक्तियों को किसीका और किसी बात का भय नहीं होता, परिणामतः लुटेरे का कंठ तक गया हुआ शस्त्र स्वयं ही नीचे आ गया। वह किंकर्तव्य विमूढ़ होकर देखते ही खड़ा रहा। उस समय नारदजी ने कहा, 'चला अपना शस्त्र'। नारदजी की इस निर्भयता ने शस्त्र पर विजय प्राप्त की। उनके उपदेश ने लुटेरे को भक्त बना दिया जो बाद में रामायण के रचयिता, आद्यकवि वाल्मीकि बने। इसप्रकार मानव की शैतान वृत्ति को समाप्त कर उसमें देवत्व जगाना बहुत बड़ी बात है। जो ऐसा नहीं कर सकता वह अवश्य निर्बल है, दोषयुक्त है। साधु पुरुष सदा इसी दृष्टि से विचार करते आये हैं, इसलिये श्रीकृष्ण के आलोचक कहते हैं, उन्होंने तो दुष्टों के सुधार की अपेक्षा उनका विनाश ही किया। इसीलिये वे ईशु की अपेक्षा निम्न कोटि के थे। वे दैवी पुरुष नहीं थे भले ही वे उत्कृष्ट राजनीतिज्ञ हों। ईसा मसीह दुष्ट व्यक्तियों को सुधारते थे, मारते नहीं थे। जबकि श्रीकृष्ण ने दुष्टों को मारने **'शठं प्रति शाठ्यम्'** Tit for tat की नीति अपनायी। उन्हें तो **'शठं प्रत्यपि सत्यम्'** की नीति अपनानी चाहिये थी, जो उन्होंने नहीं किया। यह उनके तत्त्वज्ञान के दोष को प्रदर्शित करता है, अपूर्णता बताता है।

धर्मराज्य की संस्थापना

उपर्युक्त तर्क करनेवाले श्रीकृष्ण को समझ नहीं सके। श्रीकृष्ण को पहचानना अति दुष्कर है। किसी वस्तु को देखना सामान्य बात है और उसे समझना भिन्न बात है। श्रीकृष्ण में साधुत्व नहीं था ऐसा कहने वाले उन्हें पहचान नहीं सके। ईशु का बात तो श्रीकृष्ण के जन्म के बाद की है, परन्तु श्रीकृष्ण को क्या नारदजी की बात का पता न था?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रीकृष्ण महान राजनीतिज्ञ होने पर भी सौजन्य मूर्ति थे। सामान्य साधु सन्तों की अपेक्षा भी वे साधुत्व में एक अंश अधिक थे। उन्होंने तो जगत के सम्मुख एक अटल सिद्धान्त प्रस्तुत किया। दुर्योधन, जरासंध, शिशुपाल, कंस आदि का वध कर के श्रीकृष्ण ने यह सिद्धान्त प्रस्थापित किया कि सत्तारूढ़ व्यक्ति को सुधारा नहीं जा सकता। समाज और मानव जाति के हित के लिये ऐसे व्यक्तियों का विनाश ही करना होता है। सत्ताहीन व्यक्तियों को ही सुधारा जा सकता है। परन्तु जो सत्ता के आसनपर बैठा हो उसमें विद्यमान देवत्व को कभी भी जागृत नहीं किया जा सकता उसका तो विनाश ही करना चाहिये।

श्रीकृष्ण ने अपने जीवन–द्वारा इस सत्य को सिद्ध कर के दिखाया था। तो क्या उस समय कंस, दुर्योधन, जरासंघ वगैरह के अतिरिक्त सभी साधु–चरित्र थे? क्या सभी लोग सज्जन और धर्मभीरु थे? उत्तर मिलेगा– 'नहीं' उस समय अधर्म इतना व्यापक था कि सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति मानवता को भूल गया था, फिर भी श्रीकृष्ण ने इन सब का वध किया, यह कहीं जानकारी में नहीं आता। इसके विपरीत श्रीकृष्ण तो कहते हैं––

"अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः..."

दुर्जन को भी सज्जन माननेवाले श्रीकृष्ण थे। उन्हें विश्वास था कि सत्ताहीन को संस्कार से अवश्य सुधारा जा सकता है लेकिन सत्तावान को नहीं।

श्रीकृष्ण ने पाण्डवों के द्वारा धर्मराज्य की स्थापना की। इन लोगों को धर्म के मार्ग पर चलने के लिये आदेश दिया था। कौरवों का पराभव हुआ; पाण्डवों के हाथ में सत्ता आयी और छत्तीस वर्षों के शासन काल में पाण्डवों ने लोगों के हृदय–स्थित देवत्व को जागृत किया और इस प्रकार धर्मराज्य की सच्चे अर्थ में स्थापना की। अतः श्रीकृष्ण में '**शठं प्रति शाठ्यम्**' और '**शठं प्रति सत्यम्**' का उत्तम सामंजस्य था। दोनों सिद्धान्तों को उन्होंने ठीक–ठीक पचाया था। उन्होंने विवेक बुद्धि का प्रयोग कर दोनों का समुचित उपयोग किया था।

बहुत से महापुरुष केवल योगी ही रहे और कई लड़ना ही जानते थे परन्तु परशुराम ऐसे थे जो दोनों को कर सके––

'अग्रतश्चतुरो वेदाः पृष्ठतः सशरं धनुः।
इदं ब्राह्ममिदं क्षात्रं शापादपि शरादपि॥'

श्रीकृष्ण भी ऐसे ही तेजस्वी थे। उनके पास भी दोनों बातें थीं, दोनों आयुध थे। इसीलिये वे महापुरुष हैं; महापुरुषों के भी गुरु–जगद्गुरु। इसीलिये वे जगद्गुरु के रूप में पूजे जाते हैं। दोनों सिद्धान्तों का ऐसा सुमेल जगत के दूसरे किसी भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

महान-से-महान व्यक्ति में भी देखने को नहीं मिलता। इसीलिये तो वे जगत के अन्य महापुरुषों की अपेक्षा उच्च स्थान का उपभोग करते हैं।

सच्चा कृष्ण भक्त

दुनियावालों को तो आक्षेप करने में, दूसरे की निन्दा करने में, महापुरुषों की निरर्थक आलोचना करने में, उन्हें नीचे गिराने में ही आनंद आता है। जिनको साधुत्व का पता भी नहीं, ऐसे लोग जगन्नियंता श्रीकृष्ण के विरुद्ध ऐसा आक्षेप करते हैं कि उनमें साधुत्व का अभाव था। ये लोग कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने कंस को नहीं सुधारा, शिशुपाल में रहनेवाले देवत्व को जागृत नहीं किया अतः कृष्ण सज्जन पुरुष नहीं थे। ऐसा कहने वालों के इस मिथ्या प्रलाप के शिकार कई भावुक व्यक्ति बन जाते हैं। उन्हें भी ऐसे कुतर्क सच्चे लगने लगते हैं; उनमें भी शंका का निर्माण हो जाता है। परन्तु श्रीकृष्ण के प्रति अपने भाव के कारण वे इस बात को टाल जाते हैं। और ऐसा कहकर अपने मन को मनाते हैं कि श्रीकृष्ण ने भूल भी की होगी तो उसका विचार नहीं करना चाहिए, क्योंकि '**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**'। परन्तु मन में तो अवश्य लगता है कि श्रीकृष्ण ने अनुचित तो किया ही है।

श्रीकृष्ण के जीवन के सिद्धान्तों को न जानने वाले बुद्धिमानों को ही पूर्वाग्रह होता है। यह बात महाभारत और भागवत पढ़ने वालों को भी मालूम नहीं होगी, ऐसी है। जिन्होंने जगत की सज्जनता के विचारों को पढ़ा है, उनको ही ज्ञात होगा ईशु से श्रीकृष्ण को नीचे गिराया गया है। इन लोगों ने श्रीकृष्ण को अपूर्ण देखा है। इसीलिये उन्हें पूरा-२ समझाने का कार्य-उत्तरदायित्व हम कृष्ण-भक्तों का है। मन्दिर में नित्य दो बार जाकर श्रीकृष्ण के दर्शन करने मात्र से 'वैष्णव' नहीं बनते। सच्चे वैष्णव को श्रीकृष्ण के जीवन का ठीक ठीक अभ्यास करना चाहिये और उन्हें पहचानने का प्रयास करना चाहिये। आलोचकों की निरर्थक दलीलों के जाल में न फँसकर सच्चा तथ्य ढूँढ निकालना चाहिये। श्रीकृष्ण कपटी थे या उन्होंने मात्र '**शठं प्रति शाठ्यम्**' की नीति ही अपनायी थी। ऐसे आक्षेपों को स्वीकार नहीं करना चाहिये।

श्रीकृष्ण ने कभी भी सत्ताहीनों का वध नहीं किया, बल्कि मात्र सत्तारूढ़ दुष्ट शासकों का ही वध किया। क्योंकि वे सँस्कार से सुधरते नहीं वे किसीकी सुनने को तैयार नहीं होते, उनकी जात ही भिन्न होती है। अतः श्रीकृष्ण के जीवन में यदि '**शठं प्रति शाठ्यम्**' होगा तो वह भी नगण्य है। बाकी उनका सम्पूर्ण जीवन '**शठं प्रति सत्यम्**' से भरा हुआ था। उन्होंने अपने आचरण से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जगत को सुधारा। दो चार इने-गिने व्यक्तियों-कंस, शिशुपाल इत्यादि के अतिरिक्त उन्होंने सभी पर चक्र नहीं चलाया था।

'अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव सः मन्तव्यः' यह श्रीकृष्ण का सिद्धान्त था। उन्होंने सभी को वेद, उपनिषद् आदि से सुधारा था। स्यमंतक मणि की कथा इस बात की साक्षी देती है। मणि और पुत्री दोनों मिले तब मणि वापस कर दिया, पुत्री का स्वीकार किया और धर्मराज को धर्मराज्य की प्रेरणा देनेवाले कौन थे?

श्रीकृष्ण तो दिव्यातिदिव्य मानव थे। साधुता और सज्जनता की तो वे साक्षात् मूर्ति थे। उनका जीवन निर्दोष था। उनके जीवन में दोष देखने वालों को तपस्या करनी पड़ेगी। हम बारह वर्ष तपस्याकर निर्मल बनेंगे तभी श्रीकृष्ण को समझ सकेंगे। श्रीकृष्ण का चरित्र बारम्बार पढ़ें; एक बार न समझ सकें तो दूसरी बार, तीसरी बार अनेक बार पढ़ें, भक्तिभाव से स्वाध्याय करें, तभी श्रीकृष्ण का जीवन समझ सकेंगे उनका जीवन अत्यन्त गूढ़ है। उनका जीवन कुछ अमथालाल, फोंगटलाल के जीवन जैसा नहीं। हम स्वाध्याय करेंगे तभी उनके जीवन की दिव्यता समझ सकेंगे परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है, कि जिनको जगत क्या है इसका भी पता नहीं, साधुता का विचार मात्र नहीं; वे श्रीकृष्ण के जीवन की गलतियों को निकालने बैठे हैं। सभी आज मानों नरसिंह मेहता हो गये हों। **'आसपास आकाश मां, अन्तर मां आभास'** और **'अखिल ब्रह्माण्ड मां एक तुं श्री हरि'**-इत्यादि की बातें करते हैं और चोरों में क्या श्रीकृष्ण नहीं-ऐसा प्रश्न पूछते हैं। परन्तु निश्चय समझो कि ये सब कंठ से ऊपर की भाषा (Philosophy above neek) बोलते हैं।

श्रीकृष्ण में दिखायी देनेवाले तथाकथित प्रत्येक दोष का स्पष्टीकरण हो सकता है, और 'वे दोष न थे' ऐसा सिद्ध किया जा सकता है-यह हमने देखा। जागतिक तत्त्वज्ञान जिसे महत्त्व देता है उस **'शठं शाठ्यम्'** तथा 'सत्यम्' की बात भी समझायी जा सकती है।

श्रीकृष्ण में एक भी दोष न था, वे महान-से-महान और साधु से-साधु थे। उनपर लगाये आरोप कितने निराधार हैं यह हमने देखा। ये आरोप लगाने वाले या तो ढोंगी या निर्बुद्ध हैं। बड़ों को निर्बुद्ध न कहें तो ढोंगी तो अवश्य ही कहा जा सकता है। तर्क लगाकर बुद्धि को यथास्थान रखें तो, एक भी दोष नहीं दिखायी दें, परन्तु इसके लिये विशुद्ध तार्किक-विचार (Logical reasoning) चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भगवान ने अवतार लेकर मानव–शरीर धारण किया इसलिये उनके गुण-दोषों की चर्चा होगी ही ! बाकी वे तो निर्गुण–निराकार हैं और सगुण–साकार बने । अतः ऐसी आलोचनायें और आक्षिपों के लिये तैयार रहना ही चाहिये । परन्तु वे तो शत प्रति शत विशुद्ध स्वर्ण ही निकलेंगे । आलोचनायें समाप्त हो जायेंगी परन्तु वे अटल रहेंगे ।

भगवान श्रीकृष्ण के विरुद्ध एक भी आक्षेप टिक सकने वाला नहीं । उनके जैसा व्यक्ति न हुआ हैं और भविष्य में भी कदाचित्त होगा भी नहीं । इसीलिये हम गाते हैं–

'कृष्णं वंदे जगद्‌गुरुम् ।'

आज तक हमने श्रीकृष्ण के सामाजिक सम्बन्धों को देखा । आगे भगवान के कौटुम्बिक सम्बन्ध कितने आदर्श थे, यह देखेंगे ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पन्द्रहवाँ प्रकरण

गृहस्थाश्रमी श्रीकृष्ण

भगवान श्रीकृष्ण के सामाजिक सम्बन्धों की भाँति उनके लौकिक कौटुम्बिक सम्बन्ध भी अलौकिक, अद्भुत और आदर्श थे। श्रीकृष्ण के जीवन में सभी को स्थान है, परन्तु उसमें राधा का क्या स्थान है, यह प्रश्न अत्यन्त विवादास्पद है और श्रीकृष्ण के आलोचक राधा-कृष्ण के पारस्परिक सम्बन्धों को अत्यन्त विकृत स्वरूप से प्रस्तुत कर उन्हें गिराने का असफल प्रयास भी करते हैं।

राधेश्याम और राधाकृष्ण-इस श्याम और कृष्ण के साथ जिस राधा का नाम जुड़ा हुआ है वह कौन थी ? कोई राधा को युवती के रूप में जानते हैं, कोई उद्धरण और श्लोकों को उद्धृत कर कहते हैं, कि श्रीकृष्ण ने उसके साथ विवाह किया था। कई कहते हैं राधा विवाहिता थी और इसके बावजूद श्रीकृष्ण के साथ शारीरिक सम्बन्ध रखती थी; दास्यभक्ति से प्रेम करती थी, अतः सर्वोच्च स्थान पर पहुँच गयी। सभी अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार चित्र-विचित्र बातें कहते हैं; ऐसा होना स्वाभाविक ही है।

प्रेम-भक्ति में राधा को ऐसा स्थान प्रदान किया गया है कि राधा के बिना श्रीकृष्ण ही नहीं ऐसा लगता है। राधा के बिना श्रीकृष्ण कल्पना में भी नहीं आते। परन्तु आश्चर्य की बात यह है, कि श्रीकृष्ण के जीवन का आलेखन करनेवाले किसी भी प्रमाणभूत ग्रन्थ में राधा जैसे किसी व्यक्तित्व के नाम का उल्लेख तक हुआ नहीं। श्रीकृष्ण के जीवन का सर्वाधिक प्रमाणभूत ग्रन्थ 'हरिवंश' है। इसमें राधा के नाम का उल्लेख ही नहीं है। राधा का उल्लेख है मात्र 'ब्रह्मवैवर्त पुराण में'। पुराणों की श्रेणी में यह कनिष्ठ कक्षा का गिना जाता है। विल्सन साहब और ऐसे दूसरे विदेशी विद्वानों ने भी ब्रह्मवैवर्त पुराण को सामान्य कोटि के पुराण के रूप में ही जाना है और यह श्रीकृष्ण के जीवन के सम्बन्ध में आधारभूत ग्रंथ नहीं गिना जाता।

राधा-एक रूपक

राधा अर्थात् रा+धा - रा = रास, धा = दौड़ना। रास के लिये आमंत्रण मिलते ही दौड़ जाय, वह राधा। इस प्रकार राधा का उल्लेख एक रूपक के तौर पर हुआ है, ऐसा ही लगता है। प्रेम-भक्ति की महिमा को बढ़ाने के लिये पुराण-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कार ने राधा को श्रीकृष्ण के जीवन में इतने अधिक महत्व का स्थान प्रदान किया है। समय व्यतीत होते होते यह इतना रूढ़ हो गया कि आज तो श्रीकृष्ण का नाम लेते ही राधा स्मरण हो आती है।

राधा–कृष्ण की महिमा घर–घर गायी जाती है। अनेक भक्तों और भाव प्रधान व्यक्तियों ने राधा से श्रीकृष्ण के प्रति आदर्श प्रेमपूर्ण भक्तिभावना की प्रेरणा प्राप्त की है। और आज भी प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं। यदि शांत चित्त से विचार करें तो सच्ची बात समझ में आ जायेगी। श्रीकृष्ण खण्ड में भगवान स्वयं कहते हैं– **'ममार्धांशस्वरूपा तु मूलप्रकृतिरीश्वरी।'** इससे लगता है कि राधा का वर्णन लक्षणारूप से होना चाहिये। वेद, उपनिषद् और पुराण लक्षणा से परिपूर्ण है।

लक्षणा गूढ़ होती है, इसलिये ऊपर–ऊपर से उसका अर्थ नहीं लिया जाता। उदाहरणस्वरूप–स्कन्द पुराण में शिव–पार्वती के रतिप्रसंग का वर्णन है जिसके द्वारा जीवोत्पत्ति बताई गयी है। शिव अर्थात् आत्मा और पार्वती याने शक्ति। चेतन (Spirit) और जड़ (Matter) के संयोग से जगत का उद्भव हुआ है। (जगत चलता भी है।) जिसे सांख्य शास्त्र मानता है उस Spirit & matter पुरुष प्रकृति का यहाँ उल्लेख है। **'प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी...'** इस बात का मानव लक्षणा के प्रयोग के द्वारा वर्णन किया गया है और इस प्रकार रति वर्णनकर जगत की उत्पत्ति की कथा कही गयी है; स्थूल अर्थ में नहीं। इसी प्रकार श्रीकृष्ण–राधा का भी लक्षणा के रूप में प्रयोग किया गया है। श्रीकृष्ण के जीवन का रूपक भी उसी प्रकार ब्रह्मवैवर्त पुराण में देखने को मिलता है।

प्रायः षड्दर्शन प्रमाणभूत माने जाते हैं जिन में साँख्य और वेदान्त प्रमुख हैं। वेदान्त सर्वाधिक प्राचीन भी है, तथापि कितने ही इतिहासवेत्ता कहते हैं कि इसका आरम्भ ब्रह्मसूत्रों से हुआ है अतः शंकराचार्य और वेदव्यास ने इसका निर्माण किया है। परन्तु उपनिषदों में भी वेदान्त ही है और वह तो ईश्वर की वाणी मानी जाती है। कट्टर अद्वैतवादी भी इस बात को मानता है। संक्षेप में साँख्य और वेदान्त–ये दो दर्शन अधिक प्रभावशाली हैं।

अद्वैतवादी प्रभु भी साँख्य नहीं छोड़ सके; उनको भी जगत की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहना पड़ा– **'कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।'** अद्वैतवाद के पेट में प्रकृतिवाद है। शक्ति का स्थान प्रथम, ब्रह्म का स्थान बाद में। शक्ति जगत की उत्पादक है इसलिये कर्त्री हुयी। **'प्रकृतिः कर्त्री पुरुषस्तु पुष्करपलाशवन्निर्लेपः'** प्रकृति ही सब कुछ करती है। इसलिये जगत पर सत्ता प्रकृति की–भगवान की नहीं। घर में भी पत्नी की ही अधिक सत्ता होती है न!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिसकी सत्ता होती है, उसे सब से पहले नमस्कार करते हैं। इसीलिये हम राधाकृष्ण कहते हैं, कृष्ण-राधा नहीं कहते। राधा पहले और कृष्ण पीछे-प्रकृति पहले और प्रभु बाद में। कृष्ण कर्ता नहीं-चेतन कर्ता नहीं; प्रकृति कर्ता है, इसलिये ऐसी मान्यता है कि कृष्ण-राधा कहने वालों को पाप लगता है। प्रकृति और शक्ति का संमिश्रण अर्थात् प्रेम-भक्ति। प्रेम-भक्ति में इन दोनों का संयोग हुआ। भगवान स्वयं ही कहते हैं-मेरे स्वरूप का आधा भाग राधा। यह शक्तिवाद, प्रकृतिवाद तब लेना पड़ता है जब अद्वैतवाद बुद्धि में नहीं उतरता। यह वर्णन पुराणों में देखने को मिलता है। इस प्रकार श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में प्रमाणभूत ग्रन्थों में राधा का उल्लेख ही नहीं, जहाँ है भी, वहाँ लक्षणा के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

राधा अर्थात्-प्रकृति। प्रकृति और चेतन की शादी हुयी और फिर उनकी संतति-जगत। इसप्रकार रूपक के तौर पर राधा-कृष्ण के विवाह का वर्णन करने वाले श्लोक भी हैं। पाश्चात्यों की तरह ब्रह्मवैवर्त पुराण को हमें कनिष्ठ नहीं मानेंगे परन्तु वह दूसरों की अपेक्षा श्रेष्ठ है ऐसा भी नहीं कह सकते। हम तो हरिवंश और 'महाभारत' जैसे आधार भूत ग्रन्थों के आधार पर ही इस बात को देख रहे हैं। इसप्रकार देखने से राधा प्रेमभक्ति की महिमा बढ़ाने के लिए पुराणकार की उत्पन्न की हुयी अलौकिक पात्र है। राधा अर्थात्-प्रकृति, ईश्वरी शक्ति इत्यादि।

पारिवारिक सम्बन्ध और श्रीकृष्ण

गत वर्ष हमने श्रीरामचंद्र के अलौकिक सम्बन्धों के बारें में विचार किया था। वे सम्बन्ध सरल थे; मर्यादापुरुषोत्तम श्री.राम का चरित्र अति सरल है, जबकि पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का चारित्र अत्यन्त गूढ़। श्रीकृष्ण जिस प्रकार सामाजिक दृष्टि से पुरुषोत्तम हैं, उसी प्रकार वे कौटुम्बिक दृष्टि से भी सर्वोत्तम हैं। उनके कौटुम्बिक सम्बन्ध भी आदर्श हैं। उनका मातृ-प्रेम, भ्रातृ-प्रेम, पत्नि-प्रेम तथा लोक-प्रेम आदि सभी लोकोत्तर थे। इसके अतिरिक्त वे अलौकिक शिक्षक भी थे। पाँच-हजार वर्षों से वे लोगों को सन्मार्ग पर चलाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

मातृ-पितृ प्रेम

राजा रामचन्द्र ने पुत्र-धर्म का आदर्श दृष्टान्त प्रस्थापित किया। उन्होंने पिता के वचनों के पालन के लिये ही राज्य-त्यागकर वनवास स्वीकार किया, इसका विस्तृत वर्णन अयोध्याकाण्ड में हैं। श्रीकृष्ण का पुत्रधर्म भी उसी प्रकार उत्कृष्ट था। माता-पिता के प्रति उनका अपार भाव था। जब तक माता-पिता संकट में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं तब तक अक्रूर का आदरातिथ्य लूँगा नहीं-ऐसा बाहरह वर्ष के श्रीकृष्ण ने कहा था और ग्राम के बाहर रहे। इसके अतिरिक्त पालक माता-पिता नन्द-यशोदा के जीवन में श्रीकृष्ण की बाल-क्रीड़ा में उनके मातृ-पितृ प्रेम की उत्कृष्टता दिखायी देती है। उन्होंने गोकुल को सुखमय बनाया, वहाँ प्रेम की बाढ़सी आयी दिखायी देती है।

वास्तव में यशोदा जैसी भाग्यशाली माता दूसरी कोई नहीं हो सकती। श्रीकृष्ण जैसे अलौकिक पुत्र की माता बनने और उसे लाड़ प्यार करने का सौभाग्य उसे प्राप्त हुआ था। भागवत में श्रीकृष्ण की बाललीला का उत्कृष्ट वर्णन है। बचपन में तो सभी बालक माँ को प्यार करते हैं। ऐसा कोई बिरला ही होगा, जिसे कि बचपन में माँ के प्रति प्यार न हो। जगत में माँ का स्थान अनोखा, अद्भुत है। विश्व में तो अन्य कोई शायद ही उस स्थान को ले सके। उसके उपकारों का बदला चुकाया ही नहीं जा सकता। ऐसी माता के प्रति बड़े होने के बाद भी जो भक्तिभाव रखे, माता की आत्मा को ठेस पहुँचाने वाला कोई काम न करे और उसे सुखी रखने का प्रयत्न करे-वही सच्चा पुत्र है। आज कल तो घर में पत्नी आयी कि पुत्र बदला ही समझो, फिर माँ कौन? तब माँ के प्रति की ममता न जाने कहाँ लुप्त हो जाती है? पत्नी का शासन चलता है और माँ का भाव भी नहीं पूछा जाता।

यदि किसी को सवा सौ, डेढ़ सौ की नौकरी मिल गयी तो उसका मिजाज़ आसमान पर चढ़ जाता है, माता-पिता के प्रति-बर्ताव बदल जाता है। माता-पिता के चरणों में प्रणाम करने में भी शर्म आती हैं। चाहे जो भी हो, परन्तु आज भी मातृ-प्रेम का जीवन में अलौकिक स्थान है। ठोकर लगे, कष्ट या पीड़ा हो तो प्रत्येक 'ओ माँ!'' कहेगा न कि ओ 'पत्नी!'

श्रीकृष्ण आदर्श पुत्र थे। जिनको कि सारा जगत प्रेम या भय से नमस्कार करता था, वे घर आकर माता-पिता के चरणों में झुक जाते और उनका आशीर्वाद प्राप्त करते थे। महाभारत सामाजिक संघर्षों का ग्रन्थ है, इसलिये वैयक्तिक प्रसंगों को ढूँढकर निकालना पड़ता है। भागवत में बाललीला का उत्कृष्ट वर्णन किया गया है।

श्रीकृष्ण गोकुल छोड़कर मथुरा आये और एक के बाद एक ऐसी प्रवृत्तियों में पड़ गये कि वापस गोकुल न जा सके। चौदह वर्ष की अवस्था पूरी होने के पश्चात् जीवन की अन्तिम घड़ी तक उन्हें कभी अवकाश न मिला, समय न मिला फिर भी इतनी प्रवृत्तियों के बीच और इतने महान बनने के बाद भी वे नंद-यशोदा को कभी नहीं भूले। श्रीकृष्ण ने नंद-यशोदा को प्रभास क्षेत्र में बुलाकर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उनके प्रति अपने जो भाव व्यक्त किये, उनका संपूर्ण वर्णन करना शक्य नहीं।

देवकी और वसुदेव के प्रति भी उनका अलौकिक प्रेम था। गोकुल छोड़कर मथुरा आये। कंस उनको राज-दरबार में रखना चाहता था। लेकिन श्रीकृष्ण ने उसे स्पष्ट शब्दों में सुना दिया – "मेरे माता-पिता तुम्हारे कारागार में बंदी हों, तब मैं तुम्हारे राजमहल में नहीं रह सकता। मेरे माता-पिता यातनायें सह रहें हों, तब मैं तुम्हारा आतिथ्य स्वीकार नहीं कर सकता।" कृष्ण महल में न रहकर नगर के बाहर उद्यान में ठहरे और कंस का वध करने के पश्चात् उन्होंने सर्व प्रथम माता-पिता के पास दौड़ते हुये जाकर उनकी चरण-रज माथे पर चढ़ाई थी। इसके बाद वसुदेवजी को मथुरा में सम्मानित स्थान दिलाकर उन्हें, सुखी किया।

बचपन में तो 'माँ, माँ' सभी करते हैं। लेकिन बड़े होने पर भी घर में प्रवेश करते ही जो माँ की खबर पूछे वही सच्चा पुत्र। 'महाभारत के' 'अश्वमेधिक पर्व' के अनुसार कुरुक्षेत्र के युद्ध की समाप्ति के पश्चात भगवान श्रीकृष्ण जब वापस द्वारिका लौटे, तब वे वैभव और कीर्ति के शिखर पर पहुँच गये थे। सर्वत्र उनके नाम का जयघोष होता था। प्रत्येक के हृदय में प्रेम अथवा भय से उनका स्थान था। बलवान और समर्थ शत्रुओं का संहार करके वे वापस लौटे थे। ऐसे महान शक्तिशाली बुद्धिमान और विलक्षण श्रीकृष्ण जिनके नाम या भाव से तत्कालीन ज्ञात समस्त जगत परिचित था। उन्होंने सर्वप्रथम आकर माता पिता को ही प्रणाम किया था। इसीको कहते हैं पुत्र-धर्म। **'मातृदेवो भव; पितृदेवो भव'** के सिद्धान्त उन्होंने सत्यशः जीवन में उतारे थे। उन्होंने सब को गणराज्य, संघराज्य में योग्य स्थान प्रदानकर जगत के समक्ष आदर्श पुत्र का दृष्टांत प्रस्तुत किया है। पुत्र धर्म की महिमा उन्होंने अपने जीवन द्वारा समझायी है। जब कि हम तो मैट्रीक (Matric) हो गये तो बहुत लगता है। और यदि बी. ए. या एम. ए. हो गये तब तो पूछना ही क्या?

श्रीकृष्ण तेजस्वी वीर थे। उनकी बुद्धि के लिये कुछ भी अज्ञात न था। फिर भी श्रीकृष्ण दिगन्त कीर्ति प्राप्त करने के बाद भी बहन सुभद्रा को लेकर, किसीकी उपस्थिति की परवाह किये बिना ही, वसुदेव-देवकी के चरणों में पड़े थे। यह उनका वैशिष्ट्य है। आज तो १५० रु. कमानेवाले को भी अपना मूल्य चाहिये।

जब कुरुक्षेत्र के युद्ध के पश्चात श्रीकृष्ण वापस द्वारिका लौटे, तो द्वारिका वासियों की आँखें प्रेमाश्रुओं से भर आयीं थीं। श्रीकृष्ण ने विनम्रतापूर्वक खड़े रहकर कुरुक्षेत्र के युद्ध की सारी बातें कह सुनाई, परन्तु उसमें कहीं भी आत्मश्लाघा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं मिलती। स्वयं जो महान कार्य किये उनका उसमें कहीं उल्लेख नहीं किया। यह वर्णन आज्ञाकारी पुत्र की तरह खड़े रहकर माता–पिता को भी कह सुनाया।

देवकी–वसुदेव को अभिमन्यु बहुत प्रिय था, इसलिये श्रीकृष्ण ने अभिमन्यु के अवसान की बात स्वयं नहीं कही। माता–पिता की आत्मा को दुःख हो, ऐसा कुछ भी कैसे कहा या किया जा सकता है? लड़का कमाऊ हो तब माँ–बाप रुपया मागें और लड़का दे दे तो यह भिन्न बात है। क्या वस्त्र, भोजन आदि देना ही पितृ–भक्ति है? वास्तविक पितृ–भक्ति तो वह है, जिसमें माता पिता के हृदय को दुःख न हो, ऐसा व्यवहार करना या बोलना। किसी भी परिस्थिति में माता–पिता के प्रति जिसका भाव ज्यों का त्यों रहे, वही सच्चा पुत्र है। माता–पिता की भावना को सन्तोष देना, ऐसा कुछ न कहना या करना जिससे उनको दुःख हो और उनकी बात को हृदय में रखना यह हरेक पुत्र का धर्म है। बड़े होने पर माँ–बाप के भाव और भावना के साथ समरस होना पुत्र–धर्म है, क्योंकि बचपन में हमारे भाव और भावनाओं के साथ माता–पिता समरस होते हैं। श्रीकृष्ण ने इस धर्म का पूर्णतः पालन किया था।

अपने जन्म देनेवाले माता–पिता के प्रति ही नहीं, बल्कि पालक माता–पिता नंद–यशोदा के प्रति भी श्रीकृष्ण ने पुत्र–धर्म निभाया। इसीलिये वे आज भी यशोदानंदन के ही रूप में अधिक जाने जाते हैं।

भ्रातृप्रेम

श्रीकृष्ण इस प्रकार लोकोत्तर पुत्र तो थे ही, उनका भ्रातृ–प्रेम भी इतना ही आदर्श था। दो भाइयों के बीच गहरा प्रेम हो तो उन्हें राम–कृष्ण की उपमा दी जाती है। कुन्तीमाँ ने कर्ण से कहा था 'तू मेरा पुत्र है अतः अर्जुन तेरा अनुज है, इसलिये तुम दोनों भाई रामकृष्ण जैसे हावा।'

बलराम–श्रीकृष्ण में बलराम बड़े भाई और श्रीकृष्ण छोटे भाई थे। दोनों के बीच अवस्था में थोड़ा ही अन्तर था। बचपन में दोनो भाई एक ही बर्तन में भोजन करते थे। विभक्तता जैसी बात का अस्तित्व ही न था। मात्र शरीर ही दोनों के अलग–अलग थे, आत्मा तो एक ही थी। दोनों एक दूसरे के बिना रह नहीं सकते थे, एक दूसरे का दिल दुःखे ऐसा व्यवहार नहीं करते थे। दोनों का एक–दूसरे के बिना जीना कठिन था। ऐसी अभिन्नता इन दोनों के मध्य थी। भागवत के दशम स्कंध में श्रीकृष्ण के भ्रातृ-प्रेम का वर्णन किया गया है। दोनों भाई साथ साथ गाय चराने जाते। बलराम यदि थक कर वृक्ष की छाया में सो जाते, तो श्रीकृष्ण बडे भाई के पैर दबाते रहते। आज बड़े भाई के तो क्या

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

माता-पिता के पाँव दबाने में भी लज्जा आती है। जिनके सामने उस समय किसी की भी खड़े रहने की शक्ति न थी, ऐसे योगेश्वर बड़े प्रेम से बड़े भाई के पाँव दबाते हैं। इस चित्र को दृष्टि के सामने लाओ और विचार करो कि भाइयों का सम्बन्ध कैसा होगा? इससे यह स्पष्ट होता है कि श्रीकृष्ण बलराम का कितना आदर करते थे।

सामान्य प्रसंगों में बड़े भाई की बात, शिष्टता के नाते, सभी सुन लेते हैं। और शादी के समय पर बड़े भाई के सम्मान के लिये चरण भी छू लेते हैं, परन्तु असाधारण भयंकर और कठिन संयोगों में भी बड़े भाई के प्रति जिनका बर्ताव आदरयुक्त रहता है ऐसे भाई कितने हैं? श्रीकृष्ण सामान्य से सामान्य और महत्त्व-पूर्ण सभी प्रसंगों में बड़े भाई का पूर्ण सम्मान करते तथा उनकी आज्ञा या मर्यादा का कभी उल्लंघन न होने देते। उनकी भूल के लिये भी उलाहना-देकर कभी लाल-पीले भी न होते थे।

भ्रातृप्रेम की कठिन कसौटी

एक कठिन प्रसंग का वर्णन देखिये। रुक्मिणी का विवाह श्रीकृष्ण के साथ न हो, ऐसा उसका भाई रुक्मि चाहता था। फलतः लड़ाई हुयी और रुक्मि ने नया नगर बसाकर अपना अलग राज्य स्थापित किया। तब से श्रीकृष्ण-रुक्मि में वैर बंध गया। इस बात को कई वर्ष बीत गये। श्रीकृष्ण और रुक्मिणी दोनों अति सौन्दर्य-वान थे। उनका पुत्र प्रद्युम्न माता-पिता की अपेक्षा भी अधिक लावण्ययुक्त और सौन्दर्यवान था। इतना ही वह सद्गुणी और बुद्धिमान भी था। रुक्मि की दृष्टि प्रद्युम्न पर पड़ी और उसकी पुत्री शुभांगी ने भी शौर्य, रूप तथा श्रीकृष्ण की कीर्ति को देखकर वरमाला प्रद्युम्न को पहना दी। रुक्मि को भी यह उचित लगा और उसने शुभांगी का विवाह प्रद्युम्न के साथ करने का निश्चय किया। श्रीकृष्ण ने पुराने वैर को भूलकर रुक्मि की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। शुभांगी के साथ प्रद्युम्न का विवाह हो गया।

प्रद्युम्न और शुभांगी का अनिरुद्ध नामक पुत्र हुआ। बड़े होने पर वह भी अपने पिता जैसा हुआ। उसे देखकर रुक्मि ने अपनी पौत्री श्रीमती का हाथ अनिरुद्ध के हाथ में देने का निर्णय किया और परस्पर अधिक प्रेम निर्माण करना चाहा। अनिरुद्ध के विवाह-प्रसंग में सभी यादव एकत्र हुये और ठाठ-बाट से विवाह हुआ। कलिंग देश के राजा के आग्रह से सभी चौपड़ खेलने लगे। खेलते-खेलते एक दूसरे पर मार्मिक व्यंग्य भी होता रहा। रुक्मि ने बलराम का मज़ाक उड़ाया। बलराम क्रोधित हो गये और फलस्वरूप उन्होंने रुक्मि के मस्तक पर लौह-खण्डका आघात किया, जो रुक्मि के लिए प्राणघातक सिद्ध हुआ। रुक्मि को मारने के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बाद बलराम मंडप से बाहर निकले और सहज ही श्रीकृष्ण से जाकर बोले 'हम खेल रहे थे; उसने मेरा उपहास किया और मैंने उसे मार डाला।'

यह कोई सामान्य घटना न थी। असन्तोष निर्माण करनेवाला प्रसंग था। रुक्मिणी, प्रद्युम्न, शुभांगी, श्रीमती, अनिरुद्ध – इन पांच व्यक्तियों के कौटुम्बिक प्रेम तन्तु का सम्बन्ध था। इसमें श्रीमती तो नव-परिणीता पुत्रवधू थी। इन सब के मन पर क्या प्रभाव होगा ? ये घर के एक ही रक्त वाले व्यक्ति थे। घर में विरोध निर्माण कर देनेवाला यह प्रसंग था। रुक्मि को इस तरह मार डाला, इसका लोग क्या अर्थ लेंगें ? लोग तो कहेंगे रुक्मि ने पुराने बैर भाव को भुलाकर अपनी पुत्री और पौत्री श्रीकृष्ण के पुत्र और पौत्र को दी, परन्तु श्रीकृष्ण पुराने बैर को न भूले। उन्होंने अन्याय से और वह भी कपट कर के रुक्मि को मरवा डाला।

इस प्रकार की यह घटना श्रीकृष्ण के जीवन पर कलंक लगानेवाली थी, फिर भी श्रीकृष्ण तनिक भी क्रोधित न हुये। उन्होंने शान्तिपूर्वक बलराम की बात सुन ली। बलराम ने भयंकर गलती की थी, परन्तु बडे भाई को क्या कहना ? ऐसा विचार करके उन्होंने बडे भाई की रक्षा की। लोग भला-बुरे चाहे जो कहे, उसे सहना पसन्द कर लिया। आज के भाई इस प्रकार का गम खा सकते हैं ? अरे ! यदि एक भाई ऐसा कृत्य करे तो दूसरा भाई तुरन्त ही अखबार में जाहिर सूचना (विज्ञापन) दे दे कि 'मेरा अपने भाई के साथ कोई सम्बन्ध नहीं।'

बलराम का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम

श्रीकृष्ण बलराम का दिल नहीं दुखाते वैसे ही बलराम भी श्रीकृष्ण का दिल नहीं दुखाते थे। बलराम की इच्छा सुभद्रा का विवाह दुर्योधन के साथ करने की थी। श्रीकृष्ण सुभद्रा की शादी अर्जुन के साथ करना चाहते थे। अतः उन्होंने अर्जुन से सुभद्रा का अपहरण करवाया। बलराम अतिक्रोधी होनेपर भी श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम के कारण सब्र कर गये। इस प्रकार दोनों भाई एक दूसरे को निभा लेते थे। ऐसे प्रसंगों में आज तो जहाँ तहाँ विभाजन (Partition) होते हैं।

युद्ध में बलराम का विचार दुर्योधन का पक्ष लेने का था। बलराम ने एक बार श्रीकृष्ण से कहा भी – 'हमारे लिये तो कौरव और पाण्डव दोनों समान हैं। फिर तू पाण्डवों का पक्ष किस लिये लेता है ?'' परन्तु श्रीकृष्ण बड़े भाई की ऐसी बातें ध्यान में न लेते; चुपचाप सुन लेते। एक बार तो बलराम ने युधिष्ठिर की उपस्थिति में यह बात श्रीकृष्ण से कही। श्रीकृष्ण ने यह बात शांति से सुन ली, कोई प्रत्युत्तर न दिया और न दलील ही की। श्रीकृष्ण के पाण्डवों के प्रति झुकाव के कारण बलराम ने कौरवों का साथ नहीं दिया; उनका पक्ष नहीं लिया। 'श्रीकृष्ण की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इच्छा के विरुद्ध कुछ करने की अपेक्षा तीर्थ-यात्रा पर चला जाऊँगा,' ऐसा सोचकर बलराम द्वारिका छोड़कर चले गये थे।

भीम ने जब अन्त में दुर्योधन के साथ गदा-युद्ध किया तब, 'उसने अधर्म-युद्ध किया' ऐसा बलराम मानते थे, क्योंकि भीम ने गिरे हुये दुर्योधन के मस्तक पर लात मारी थी। इसके कारण बलराम उत्तेजित हो गये और हल को लेकर भीम को मारने दौड़े। दुर्योधन बलराम का शिष्य था अतः बलराम का क्रोधित होना स्वाभाविक ही था। उन्हें भीम निष्कृष्ट वृत्तिवाला लगा। उस समय श्रीकृष्ण बीच में आ गये और लिपटकर बलराम को पकड़ लिया। गौर और श्याम वर्ण का यह अभूतपूर्व आलिंगन था। श्याम और गौर यदु श्रेष्ठों का संध्यासमय का यह मिलन पढ़ने योग्य है। इस प्रसंग का वर्णन नहीं हो सकता। श्रीकृष्ण के भेटते ही बलराम का क्रोध उतर गया। उपयुक्त समय देखकर श्रीकृष्ण ने कहा-'भीम को न मारो तो अच्छा' और भीम बच गया! मात्र श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम के कारण बलराम ने भीम को छोड़ दिया, नहीं तो उस दिन भीम की खैर न थी।

जिस समय यदुकुल का विनाश हुआ, उस समय श्रीकृष्ण ने पुत्र-पौत्रादि किसी और की ढूँढ नहीं की। वे मात्र बलराम को ही खोजते थे। बलराम ने कहा- 'अब तो मैं चला जाऊँगा'। श्रीकृष्ण ने कहा है - 'ऐसा नहीं हो सकता। मैं भी तुम्हारे साथ आऊँगा'। यादव-नारियों का उत्तरदायित्व वे अर्जुन को सौंपकर आये, तो देखा कि बलराम के जीवन का अवसान हो गया है। बस श्रीकृष्ण का जीवन भी उसी समय जड़वत् बन गया। जिस जगत में 'राम' नहीं वहाँ जीवन अशक्य है। बलराम के बिना जीवन श्रीकृष्ण की कल्पना में भी अशक्य था, इसलिये जीवन-यात्रा समाप्त करने का अब प्रसंग है, ऐसा विचार कर उन्होंने समस्त बाह्य वृत्तियों का निरोधकर तुरन्त ही अपनी ज़ीवन-लीला समेट ली और पार्थिव शरीर का त्याग कर दिया। ऐसा आदर्श बन्धु-प्रेम और कहाँ देखने को मिलेगा?

लोकोत्तर मित्रप्रेम

श्रीकृष्ण लोकोत्तर मित्र भी थे, सुदामा के साथ की इनकी मैत्री इस बातकी साक्षी देती है। मित्रता का यह काव्य-रम्य वर्णन अलौकिक है। कहाँ विश्ववंद्य और समर्थ श्रीकृष्ण और कहाँ गरीब ब्राह्मण सुदामा! परन्तु श्रीकृष्ण उसका अलिंगन करते हैं। श्रीकृष्ण का जिसे आलिंगन मिले, उसको और क्या मिलने के लिये शेष है? श्रीकृष्ण बचपन के मित्र को भूले नहीं। उसे छाती से लगा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसका दारिद्र्य दूर किया। जबकि उसी समय की द्रुपद-द्रोण की तथा अन्य मैत्री देखेंगे, दोनों चित्रों को देखेंगे इससे आदर्श मैत्री की कल्पना आयेगी।

अर्जुन के साथ भी कृष्ण की मैत्री अलौकिक थी-

" योऽहं तमर्जुनं विद्धि योऽर्जुनः सोऽहमेव तु।
यद् ब्रूयात् तथा कार्यम् इति बुद्धस्व भारत!'
यस्तान् द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्ताननु स मामनु।
एकात्म्यं मां गतंविद्धि पाण्डवैर्धर्मचारित्रि:॥"

कितनी अद्भूत मैत्री! श्रीकृष्ण कहते हैं अर्जुन और मैं, अभिन्न हैं और अर्जुन का शत्रु मेरा शत्रु है। यदि ऐसा न होता तो श्रीकृष्ण क्या अर्जुन के सारथी बनते? और अर्जुन की देखभाल भी कैसी की! प्रत्येक बार उन्होंने अर्जुन को विपत्ति से उब्रार लेते कुरुक्षेत्र की रण-भूमि में उन्होंने अनेक बार अर्जुन की रक्षा की है।

अर्जुन पर कृष्ण को अटूट विश्वास था। यादव--स्त्रियों की रक्षा का कार्य उन्होंने किसीको दूसरे को न देकर अर्जुन को ही सौंपा था। एक प्रसंग में श्रीकृष्ण ने अपने सारथि दारुक से भी कहा-' इतना ही कहेगा तो भी अर्जुन दौड़ता आयेगा।' 'अभी आऊँ या बाद में?' इस प्रकार हमारी तरह नहीं पूछेगा। इस प्रकार श्रीकृष्ण का जीवन आदर्श मित्र का दृष्टान्त है।

प्रेमपूर्ण पति

इसी प्रकार, कृष्ण लोकोत्तर पति भी थे। पत्नियों के साथ का उनका व्यवहार किसीको भी ईर्ष्या कर देने वाला था। आज तो यदि दो पत्नियाँ हों तो भी महान विपत्ति खड़ी हो जाती है। जीवन में असन्तोष तैरता हुआ दिखायी देता है। अरे! एक पत्नी को ही नहीं संभाल सकते। अनेक पत्नियों वाले होने पर भी श्रीकृष्ण के जैसा सुखी-गृहस्थ जीवन दूसरें किसीका शायद ही होगा। उनके गृहस्थ-जीवन में क्लेश या विवाद का नामोनिशान भी न था। सभी पत्नियों का श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम, भक्ति-भाव था; सभी पत्नियाँ उनसे सन्तुष्ट थीं।

जिस समय सुदामा जी श्रीकृष्ण को मिलने आये, उस समय श्रीकृष्ण की पत्नियाँ उन्हें प्रणाम करने आयीं। वह चित्र हृदयंगम है। सुदामा जी चरण-रज लेने वाली इन पत्नियों की 'अष्ट पुत्रा सौभाग्यवती पतिप्रिया भव'-ऐसे लम्बे आशीर्वाद देते देते थक गये। अन्त में ऊब कर बोले, "इनकी अपेक्षा तुमही मेरे चरण छू लो। मैं तुम्हें आशीर्वाद दे दूँगा, इससे तुम्हारी सभी पत्नियों को मिल जायेगा।" इतना विस्तृत घर-बार श्रीकृष्ण का था, फिर भी उसमें झगड़े या क्लेश का नाम भी न था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रभास-क्षेत्र में सूर्य--ग्रहण के अवसर पर सभी पत्नियाँ --रुक्मिणी, सत्यभामा इत्यादि ने आनंदित होकर अपने सुखपूर्ण गृहस्थ जीवन का वर्णन द्रौपदी के पास किया है। किसीको भी श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में कोई शिकायत न थी। रुक्मिणी, सत्यभामा आदि ने परस्पर श्रीकृष्ण की प्रशंसा हीं की है, दूसरी पत्नियों ने भी उनकी प्रशंसा की है। भागवत में यह वर्णन पठनीय है। विलासी व्यक्ति का गृहस्थ जीवन इतना सुखी नहीं हो सकता।

बहुपत्नीत्व – सामाजिक कारण

श्रीकृष्ण का गृहस्थ–जीवन विलासी न था, वहाँ तो सपूर्णतः प्रेम का साम्राज्य था। आज तो जहाँ प्रेम की बात आवे वहाँ श्रीकृष्ण का नाम जोड़ दिया जाता है। विलास के काव्यों में श्रीकृष्ण के नाम का प्रयोग करने में आता है। कहानी, नाटक और चल–चित्रों में भी ऐसा ही होता है। श्रीकृष्ण के नाम का ऐसा दुरुपयोग करनेवाले उनके जीवन को समझे ही नहीं। वे श्रीकृष्ण के जीवन का आनंद देखकर उन्हें विलासी कहते हैं। परन्तु क्या वास्तव में कृष्ण का जीवन विलासी था ? वह तो आदर्श गृहस्थ–जीवन था।

क्या श्रीकृष्ण ने अपनी वासना–तुष्टि और दूसरों को उस अग्नि में भस्म करने के लिये इतनी पत्नियाँ रखीं थीं ? यदि ऐसा होता तो वासना निग्रह को सर्वस्व माननेवाली भारतीय संस्कृति में पूर्णावतार का जो स्थान उन्हें मिला है, कदापि न मिला होता। श्रीकृष्ण ने पहली आठ पत्नियों से राजनैतिक कारणों से विवाह किया था और शेष पत्नियों से मानवता के कलंक को दूर करने के लिये शादी की। नरकासुर के नरक से मुक्त इन युवतियों को समाज में सम्मानपूर्ण स्थान प्रदानकर जगत के सम्मुख आदर्श स्थापित करने के लिये श्रीकृष्ण ने इन युवतियों से पाणिग्रहण किया, अपने विलास के लिये नहीं। सामान्य दृष्टी से उनके जीवन का विश्लेषण करलेंगे, तो ज्ञात होगा कि जो मानव इतनी अधिक प्रवृत्तियों में व्यस्त हो, उसे विलास के लिये अवकाश ही कहाँ से मिले ? श्रीकृष्ण ने अपने गृहस्थ–जीवन द्वारा, आदर्श पति कैसा होना चाहिये, यह जगत को बताया है।

चिरंतन प्रेममूर्ति

श्रीकृष्ण अर्थात प्रेम। उनके जीवन में जहाँ देखें वहाँ प्रेम ही दृष्टीगोचर होता है। श्रीकृष्ण जैसा गायों पर प्रेम रखनेवाला गोपालक कहीं नहीं मिलता। गायें भी श्रीकृष्ण पर जैसा प्रेम रखती थीं, वैसे प्रेम का अनुभव किसी भी ग्वाले ने नहां किया होगा। पशुओं के प्रति भी श्रीकृष्ण का प्रेम उत्कृष्ट था। पशुओं के हृदय में प्रेम जगाना कोई साधारण बात नहीं है। पशु ही किसलिये ? वृक्षों और नदियों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर भी उनका प्रेम अपार था। सम्पूर्ण विश्व पर उनका प्रेम था। वे तो प्रेम की साक्षात् प्रतिमा थे।

श्रीकृष्ण अर्थात प्रेम के अधिष्ठाता देव। उनके जैसा प्रेममय निष्कलंक और निरुपाधिक तथा दिव्य जीवन कहीं और किसीका भी देखने को नहीं मिलता।

"कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्"

शिक्षक के रूप में भी उनकी भूमिका अलौकिक है। वे सभी के शिक्षक थे। पाँच हजार वर्षों से वे जगत को शिक्षण दे रहे हैं। श्रीकृष्ण सच्चे अर्थ में शिक्षक थे और देहरूप से हमारे बीच न होने पर भी, आज भी, वे मानव मात्र के शिक्षक हैं। वे ऐसे शिक्षक हैं जो विद्यार्थियों को पाठ याद करने के लिये न कहकर स्वयं ही रटते हैं। दूसरों को बुद्धिमत्ता की बात कहने और समझानेवाले शिक्षकों की तो जगत में कमी नहीं परन्तु उच्च सिद्धान्तों को अपने जीवन में उतारकर, तदनुसार व्यवहार कर, जगत को पाठ पढानेवाले शिक्षक कहीं देखने को नहीं मिलते।

श्रीकृष्ण ने अपने जीवन द्वारा करोड़ों लोगों को शिक्षण दिया है। स्वयं चार बजे उठकर अभ्यास करनेवाले ये शिक्षक थे; केवल छात्रों को 'चार बजे उठो' ऐसा उपदेश करनेवाले न थे। 'संसार में रहकर भी उसमें ललचा न जाना और अनासक्त जीवन व्यतीत करना'– ऐसा बोध उन्होंने स्वयं तदनुरूप जीवन जीकर दिया है। ऐसा गुरु मिलेगा नहीं, इसीलिये कहा है – '**कृष्णं वंदे जगद्गुरुम्**'।

उनके जीवन का प्रारम्भ ही संकटों से हुआ था। उनका जन्म बन्दी गृह में हुआ, तब से जीवन की अन्तिम साँस तक इनपर संकटों के पहाड़ टूटे हैं। इस पर भी वे कभी किसी संकट से घबराये नहीं। उन्होंने सभी संकटों का सफलतापूर्वक सामना किया। उनके द्वारा अनुभव किये हुये संकटों को हम स्वप्न में भी देख नहीं सकत। उदाहरणार्थ–गोकुल में उनकी परिस्थिति, माता–पिता की अवस्था, मित्रों का जीवन, यादव–कुल का संहार आदि। यदि वे चाहते तो उनके ऊपर एक भी विपत्ति न आती; संकट सौ योजन दूर रहते, परन्तु यदि ऐसा होता तो जगत को बोध किस प्रकार से मिलता? संकट का–मर्दानगी–वीरता के साथ मुकाबला करने की प्रेरणा किस प्रकार मिलती? इसीलिये लोगों को सामना करने का शिक्षण देने के लिए ही विषमावस्था में भी निर्विकार रीति से अनासक्त किस प्रकार रहना है, यह बताने को श्रीकृष्ण ने स्वयंमेव संकट निर्माण किये थे – यदि ऐसा कहें तो कुछ भी असत्य न होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कृष्ण में विकारों का लेशमात्र भी अंश न था; न तो उन्होंने कभी सत्ता प्राप्त करने की लालसा की थी और न वैभव प्राप्ति की चाह। इसके विपरीत उन्होंने कदमों पर पड़े वैभव और सत्ता को ठुकरा दिया। ऐसा निःस्वार्थ और अनासक्त जीवन दूसरा कोई देखने को नहीं मिलता। उनमें जो एक मात्र विकार या लालसा थी, तो वह भक्तों के प्रेम की थी। वे मात्र भक्तों के प्रेम के भूखे थे।

परार्थ जीवन

अपने लिये तो सभी जीते हैं, परन्तु दूसरों के लिये जो जियें, वही सच्चा मानव–यह बात उन्होंने अपने जीवन द्वारा सिखायी। उन्होंने जो कुछ भी किया, अपने लिये नहीं; वरना पाँच–पचास लाख रुपये न कमा लेते ? उन्होंने जो आया प्रसन्नता से स्वीकार किया–सुख और दुःख दोनों उनके लिए समान थे। जितने प्रेम से सुख को माथे चढ़ाते, उतने ही प्रेम से दुःख को भी सिर–माथे लगाते। दैववशात् सुख या दुःख जो कुछ आता उसे शाँति से ग्रहण कर लेते। इस प्रकार उन्होंने हमें निष्काम जीवन जीना, सुख में फूल न जाना और दुःख में घबड़ा न जाना, और बुद्धि को चंचल न होने देकर अनासक्त वृत्ति का पाठ पढ़ाया। इसीलिए श्रीकृष्ण लोकोत्तर शिक्षक थे, और आज भी हैं।

श्रीकृष्ण मात्र हम सांसारिक लोगों के ही गुरु न थे, वरन् स्थितप्रज्ञ की कोटि में पहुँचे हुये भी उन्हें गुरु मानते हैं। यह स्थिति उनकी जन्म सिद्ध थी–

'प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ ! मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥'

जगत में उनके जैसा अन्य दिव्य व्यक्तित्व पैदा नहीं हुआ और पैदा होगा भी नहीं। सभी विषयों में वे श्रेष्ठ थे, किसी बात में दूसरे नम्बर में नहीं। अमुक विषयों में ही पारंगत हो, ऐसे तो बहुत से महापुरुष देखने को मिलेंगे, परन्तु प्रत्येक विषय में पारंगत हो ऐसा महापुरुष श्रीकृष्ण के अतिरिक्त दूसरा कोई देखने को नहीं मिलता।

अद्‌भुत स्थितप्रज्ञता

श्रीकृष्ण की स्थितप्रज्ञता अद्‌भुत थी। इनके जीवन में हज़ारों ऐसे प्रसंग आये हैं कि जिनमें बड़े बड़े महापुरुषों व तपस्वीयों के लिये भी स्थितप्रज्ञता को बनाये रखना कठिन हो जाय। बचपन में गोकुल में बाललीला की, गोपियों के साथ रासलीला की, यौवन में हज़ारों स्त्रियों को स्वीकार किया और इसके बावजूद ये स्थितप्रज्ञ किसी भी प्रसंग में मलिन नहीं हुये, न चकित हुये। यह कोई छोटी मोटी बात न थी। अंत में अपने कुल का संहार भी शांति से देखा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐसी स्थितप्रज्ञता दूसरे किसीमें देखने को नहीं मिलती। उनके जैसी साम्य योगी दृष्टि दूसरी, कहीं देखने को नहीं मिलती। देह छोड़ते समय भी अपने को मारने वाले व्याध को भी स्वर्ग दिया। ऐसा साम्ययोग व ऐसी सहिष्णुता दूसरे कहीं देखने को नहीं मिलती। एसी, चोटी की समानता और साम्यावस्था दिखाने वाले पुरुषोत्तम के लिये बंधन कैसे ? मर्यादायें कैसी ? नीति–नियम काहे के ?

वे तो **'नित्यतृप्तो निराश्रयः'** थे। **'कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित् करोति सः '**– करते हुये भी वे कुछ नहीं करते थे। जिनके लिये कहा जाता है कि वे जगत में अविश्रांत काम करते थे फिर भी कुछ नहीं किया, उनका वर्णन हमसे किस प्रकार हो सकता है। नीति और अनीति के परे गये व्यक्ति के गुण–दोषों का परीक्षण और संशोधन कैसा ?

किसीका खून कर देनेवाले को न्यायाधीश मृत्युदण्ड देता है, परन्तु क्या वह न्यायाधीश खून नहीं करता ? विलास के लिये स्त्री को करपाश में लेने वाला और डूबने से बचाने के लिये बाहुपाश में लेने वाला–दोनों क्या एक ही कक्षा के हैं ? आभूषणों के लिये बच्चे को कुचलकर मार डालनेवाला और प्रभु-भक्ति में मस्त होने के कारण अपने बच्चे को पैरों के नीचे कुचल ने वाला गोरा कुम्हार क्या एक ही है ? ऐसे नीति की भाषा बोलने वाले, वस्त्र के पीछे नग्न रहने वाले हम उनको क्या कह सकते हैं ? उनके आगे सैकड़ों स्त्रियों का झुण्ड हो तो भी क्या और गुण्डों का गिरोह हो तो भी क्या ? क्यों कि–**'नैवं किंचित करोति सः**

धर्मराज को श्रीकृष्ण ने कितना, परिश्रम कर के राज्य दिलाया परन्तु उसे उसने जुये में खो दिया। तब भी कृष्ण शान्त रहे। उनकी वृत्ति देखो–**' सुखे दुःखे समे कृत्वा '**। उनका जीवन हमें भ्रातृ–प्रेम, मातृ–प्रेम, मित्र–प्रेम, पुत्र–प्रेम का पाठ पढ़ाता है। प्रारम्भ से लेकर स्थितप्रज्ञ तक का शिक्षण प्रदान कर सके ऐसा इनका जीवन था। ऐसे महापुरुष के चरण धुने के अतिरिक्त हम अधिक क्या कर सकते हैं ? परन्तु इनके चरणस्पर्श करना तभी सार्थक समझा जायेगा, जब हम इनके पढ़ाये हुये पाठ को जीवन में उतारने का प्रयास करेंगे।

समर्थ मार्गदर्शक

श्रीकृष्ण तो हमसे कुछ अपेक्षा नहीं रखते। उन्होंने तो एक पुस्तक के रूप में अपना समस्त जीवन हमारे समक्ष रख दिया। जिसमें जगत की छोटी बड़ा सभी समस्याओं का समाधान है। कहीं जरा भी उलझन प्रतीत हो, तो श्रीकृष्ण के जीवन पर दृष्टिपात करें, हमें अपनी उलझनों से अवश्य मार्ग मिल जायेगा। कठिन–से–कठिन समस्याओं का समाधान उनके जीवन से मिल जायेगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बचपन कैसा होना चाहिये और कैसे बिताना चाहिये, यह भी उन्होंनें अपने जीवन द्वारा सिखाया है। उन्होंने अपने विद्यार्थी-जीवन द्वारा हमको आदर्श विद्यार्थी बनने का पाठ सिखाया है। उत्तम से उत्तम गृहस्थ जीवन कैसे चलाना है? यह भी उनके जीवन से सीखने को मिलता है। समाज में किस प्रकार रहना उनका जीवन सिखाता है; और राजनीति का तो पूछना ही क्या? जीवन के समस्त क्षेत्रों के सम्बन्ध में मार्गदर्शन उनके जीवन से मिलता है। आज कई तो मात्र प्राइमरी शिक्षक, कितने ही सेकेण्डरी शिक्षक अथवा बहुत से मात्र प्रोफेसर होते हैं, परन्तु श्रीकृष्ण तो तीनों थे। वे सभी के और सभी क्षेत्रों में गुरु थे। इसीलिये 'जगद्गुरु' कहलाये। वे यथार्थ में मानव जाति के शिक्षक थे और हैं।

जिस देश में ऐसा व्यक्तित्व जन्मा, वह देश धन्य है। हमारे यहाँ ऐसे सर्वगुण-सम्पन्न, सर्व शक्तिमान व्यक्ति के पैदा होने पर भी जो लोग उनको समझने की अपेक्षा, उनके सन्देश को सुनने के बदले दूसरे देशों पर उपदेश की दृष्टि लगाये हुये हैं, उनकी स्थिति सचमुच दयनीय है। गंगा में डूबे हुये भी वे प्यासे हैं। ऐसों को तो मारने की इच्छा होती है। श्रीकृष्ण जैसे जगद्गुरु की व्यर्थ आलोचना करनेवाले उन्हें समझते ही नहीं।

जीवन को जीने का पाठ देनेवाले, अलौकिक और लोकोत्तर श्रीकृष्ण थे। वे हमारे गुरु हैं और हम उनके शिष्य। वे जगद्गुरु हैं, सभी पहलुओं से लोकोत्तर हैं। उनके अतिरिक्त लोकोत्तरता अन्य किसीमें दिखायी नहीं देती। हमारे लिये उन्होंने इतना कुछ किया अतः पुन भावपूर्वक उनके चरणस्पर्श करेंगे और जीवन में संकट आने पर उनके जीवन को देखकर मार्गदर्शन प्राप्त करेंगे।

वे किसी देश या काल के शिक्षक न थे मानव मात्र के सदा सदा के शिक्षक थे अतः आज भी हम गाते हैं-

'कृष्णं वंदे जगद्गुरुम्'

कालातीत का कितना वर्णन हो? समय से हम मर्यादित हैं। समय-सीमा में रहकर हमें बहुत कुछ करना है। दिल दुःखी है क्योंकि उनके जीवन पर पूरा बोल नहीं सका। इस समर्थ जगद्गुरु, लोकोत्तर व्यक्तित्व के तत्त्वज्ञान के सम्बन्ध में जो कि जीवन का तत्त्वज्ञान था फिर विचार करेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सोलहवाँ प्रकरण

पुरुषोत्तम का तत्त्वज्ञान

अब श्रीकृष्ण के तत्त्वज्ञान का विचार करें। उनका तत्त्वज्ञान मानव जाति के लिये अप्रतिम भेंट है। श्रीमद्भगवद्गीता श्रीकृष्ण की ओरसे जगत को मिला हुआ अमूल्य उपहार है। श्रीकृष्णावतार का वैशिष्ट्य उनका गीता-बोध ही है।

गीता बोध

ब्रह्म ने अनेक अवतार धारण किये हैं। प्रत्येक अवतार में, दुष्टों का संहारकर सज्जनों की सहायता की है। भक्तों के उद्धार के लिये ही निर्गुण ब्रह्म ने सगुण बनकर अवतार धारण किये। वामन, परशुराम, रामचन्द्र आदि भिन्न-भिन्न स्वरूपों में चित्शक्ति ने जगत से अधर्म का नाश कर धर्म की रक्षा की है। परन्तु श्रीकृष्ण द्वारा व्यक्त हुये प्रभु तो मानव जाति के कल्याण का शाश्वत मार्ग बताते हैं। अनन्तकाल तक मानव को सन्मार्ग और उन्नति के पथ पर ले जा सकनेवाला ज्ञानोपदेश, उन्होंने इस अवतार में ही किया है और इसीलिये किसी दूसरे अवतार को नहीं वरन् श्रीकृष्ण को ही जगद्गुरु की उपाधि मिली है।

आज की क्रान्ति का विनाशक तूफान भी गीतारूपी ज्ञान-दीप को बुझा नहीं सका, अपितु वह सविशेष प्रदीप्त हुआ है। गीता का तत्त्वज्ञान आज पाँच हजार वर्षों के बाद भी जगत को मार्ग दिखा रहा है। आज तो जगत को उसकी जितनी आवश्यकता है, उतनी किसी भी अन्य काल में शायद ही रही होगी। यह तत्त्वज्ञान नित्य-नवीन है, कभी पुरातन होता ही नहीं। ऐसे अद्भुत ग्रन्थ के सम्बन्ध में भी कुछ लोग आशंका व्यक्त करते हैं, अपनी बुद्धि (!) का प्रदर्शन करते हैं।

गीता में अठारह अध्याय हैं। और उसमें कुल सात सौ श्लोक हैं। बहुत से लोग कहते हैं 'श्रीकृष्ण ने तो केवल सत्तर श्लोकों में ही अर्जुन को उपदेश दिया था। बाद में उसे विस्तृतकर सात सौ एक श्लोकों की गीता रची गयी।' कोई ऐसी भी शंका व्यक्त करते हैं--'रणक्षेत्र में गीता उपदेश किस प्रकार दिया जा सकता है? गीता का यह उपदेश, उसका तत्त्वज्ञान समरांगण में किस प्रकार समझाया जा सकता है? यह सम्भव ही नहीं है। अतः श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समरां-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गण में गीता बोध नहीं दिया होगा, किसी दूसरे समय दिया होगा अथवा व्यासजी ने बाद में लिखा होगा।

युद्धभूमि पर उपदेश

श्रीकृष्ण अर्जुन को रणक्षेत्र में गीता-बोध दे; इसमें असम्भव या अशक्य क्या है, यह समझ में नहीं आता। क्या कुरुक्षेत्र के रणक्षेत्र में दो-दो फुट के अन्तर पर सैनिक तलवार लेकर एक दूसरे को काटने के लिये खड़े थे? वहाँ तो बावन लाख सैनिक लड़ने के लिए एकत्रित हुये थे। उनके खाने-पीने व रहने की व्यवस्था भी वहीं थी। सैनिकों की सुविधा और व्यवस्था के लिये दूसरे हज़ारों व्यक्ति भी वहाँ थे, अतः सेनाओं का विस्तार कम-से-कम तीस-चालीस मील के क्षेत्रफल में होगा! इसमें भी प्रत्येक पक्ष के छुट पुट-सैनिक कहीं-कहीं खड़े रहे होंगे और दोनों पक्षों की सेनायें एक दूसरे से पर्याप्त अन्तर पर खड़ी रहीं होंगी। हज़ारों छावनीयाँ पड़ीं होंगी। ऐसे विराट समरांगण में, लोग जब शस्त्र-सज्ज होकर लड़ने की तैयारी करते हों, तब वहाँ किसी कोने में किसी को मोह हो जाय और श्रीकृष्ण उसे दूर करने के लिये उपदेश करें, तो इसमें असम्भव या अशक्य क्या है? श्रीकृष्ण ने अठारह वर्ष तक अर्जुन के समक्ष गीता-बोध की माथापच्ची थोड़े ही की होगी? आज भी यदि सामान्य व्यक्ति शांत-चित्त से गीता का पाठ करे, तो वह दो घण्टे में पूरा हो जाता है, तो श्रीकृष्ण जैसे पुरुषोत्तम उपदेशक और अर्जुन जैसा बुद्धिमान उसे ग्रहण करने वाला हो, तो गीता के उपदेश में कितना समय लगा होगा? अर्जुन जैसे बुद्धिमान नरवीर को इस उपदेश को समझने के लिये दूसरे शास्त्रों, टीकाओं या भाष्यों को थोड़ा ही पढ़ना पड़ा होगा। दोनों समर्थ थे। मात्र अर्जुन क्षणिक मोह के वश होकर हताश हुआ था और श्रीकृष्ण ने ज्ञान देकर उसके मोह को दूर किया, इस घटना में अशक्य जैसा क्या है?

आज के युग में, जब कि विमानों और बम-गोलों से युद्ध होता है तब भी चलती हुयी लड़ाई में दोनों पक्षों के अग्रणी एक स्थान पर इकट्ठे होकर घण्टों तक चर्चा विचारणा कर सकते हैं, तो श्रीकृष्ण यदि रण-स्थल में गीता कह सुनाये इसमें नवीनता या आश्चर्य हान जसी बात क्या है? जिनको यह असम्भव, अशक्य प्रतीत होता हो, उनकी बुद्धि पर सचमुच दया आती है - I pity them.

युद्ध के समय तत्त्वज्ञान

कुछ महानुभाव ऐसी भी दलील करते हैं कि शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध के लिये तत्पर हुये अर्जुन को ऐसा ज्ञान देना उचित ही नहीं था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भयाद् रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथा:।
अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्॥

इत्यादि युद्ध के उपयोगी श्लोकोंका उपदेश करना तो ठीक था, परन्तु गीता में तो योग और संन्यास के उपदेश भी हैं। अर्जुन को उस समय योग और संन्यास के उपदेश देने की क्या आवश्यकता थी? समरांगण में तो संग्राम को शोभा देने वाली बात कहनी चाहिये। यह देखते हुये गीता अप्रस्तुत ग्रन्थ है, ऐसा कितने ही लोग कहते हैं। यह तर्क भी निरर्थक है, क्योंकि जिस समय मरना–मारना उपस्थित हुआ, उस समय देह का त्याग योग्य है या देह–रक्षा–इसे समझाये बिना अर्जुन का स्मशान वैराग्य किसप्रकार दूर किया जा सकता था?

'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय।'

देह नाश नैसर्गिक है, निश्चित है, जब कि आत्मा अमर है, चिरन्तन है, शाश्वत है। इसलिये युद्ध में मृत्यु आये तो सहर्ष स्वीकार कर लो, परन्तु ध्येय को न छोड़ो। गीता का यह तत्त्वज्ञान मानव को समरांगण त्यागने के लिए है? या लड़ते–लड़ते सिद्धान्त के लिये, परिणाम की चिन्ता किये बिना, मर मिटने का आदेश देनेवाला है? ध्येय पर पानी फेरने वाला है? या ध्येयप्रवर्तक है? इस उपदेश में कि देह नाशवान है–नश्वर है और आत्मा ही अमर है, अप्रस्तुत कुछ भी नहीं। वास्तव में तो युद्धक्षेत्र का यह उत्तम आदेश है। मानव को ध्येय के निमित्त मर मिटने की प्रेरणा देनेवाला है। इसलिये गीता के विषय को अप्रस्तुत कहना मूर्खता–प्रदर्शन करने जैसा है।

स्वमुख से गीता गान

तीसरी शंका उठायी जाती है कि गीता भगवान ने स्वयं ही प्रबोधी होगी या नहीं? समरांगण में ऐसी छन्दबद्ध, काव्यमय गीता किसप्रकार से लिखी या उद्‌बोधी जा सकती है? शंका करनेवालों की बुद्धि में यह बात नहीं उतरती। बड़े–२ शास्त्री और पण्डित भी ऐसी शंकायें करते हैं। उन्हें यह बात बिलकुल असम्भव लगती है। ये लोग कहते हैं 'भगवान ने सार-सार (Substance) कहा होगा और बाद में वेदव्यास जी ने उसे विस्तृत कर के वर्तमान रूप दिया होगा।' परन्तु यह शंका तथ्यहीन है।

अभी कुछ समय पहले कलकत्ता विश्वविद्यालय में एक सहसा अविश्वसनीय घटना घटी है। मात्र तेरह वर्ष की वय के एक किशोर ने सँस्कृत के दोनों प्रश्नपत्रों के उत्तर संस्कृत काव्य में लिखे। यह कोई ऐसी वैसी बात नहीं है। मात्र दो--तीन घण्टों में सँस्कृत के प्रश्नों का छन्दबद्ध संस्कृत में उत्तर लिखना कोई मामूली बात नहीं। लेकिन उस बालक ने छन्दबद्ध उत्तर लिखे यह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वास्तविकता है। आज भी ऐसे कई विद्वान और पण्डित हैं जो सँस्कृत में और वह भी छन्दबद्ध सँस्कृत में बातचीत करते हैं।

यदि सामान्य बुद्धिमान मानव के लिये इस प्रकार सँस्कृत छन्दों की त्वरित रचना करना और काव्य में ही बात करना अशक्य नहीं, तो फिर भगवान श्रीकृष्ण जैसे पुरुषोत्तम के लिये किस प्रकार अशक्य हो सकता है? जगत की कठिन से–कठिन समस्या जिन्हें उलझन में नहीं डाल सकी, विकट–से विकट समस्याओं को जो घड़ी भर में हल कर सकते थे, ऐसे अमर्याद, उत्कृष्ट बुद्धिवाले योगेश्वर श्रीकृष्ण के लिये समर-भूमि में अर्जुन को छन्दमय सँस्कृत में उपदेश करना तो बिलकुल बाँये हाथ का खेल था।

श्रीकृष्ण भगवान थे, इस बात को भूल कर उनकी बुद्धिमत्ता और कर्तृत्व को देखने के पश्चात उनके लिये क्या यह संभव न था? इसे जो न समझ सके उसकी बुद्धि का दिवाला ही समझें। भगवान ने भी स्वयं ही कहा है-- गीता को व्यासजी ने ग्रथित किया- **'व्यासेन ग्रथिताम्' रचिताम्** नहीं।

व्यास द्वारा संकलन

जिस प्रकार माली योग्य रीति से पुष्पों को सूत्र में क्रम से गूँथ--कर मनमोहक पुष्पमाला तैयार करता है, उसी प्रकार वेदव्यास जी ने भी महाभारत में कहाँ पर क्या उपयुक्त है, यह निश्चित किया और उसी रीति से ग्रथित किया है। **'अशोच्यानन्वशोचस्त्वं'** से लेकर भगवान की कही गीता है, इसमें शंका है ही नहीं। पहले अध्याय में शंका हो तो भले ही हो। और थोड़ी देर के लिये मान भी लें कि श्रीकृष्ण ने गीता के अमुक सिद्धान्त कहे और वेदव्यास जी ने बाद में उन्हें छन्दबद्ध कर, विस्तृत किया, तब भी इससे गीता का माहात्म्य किस प्रकार घट सकता है? उसकी महत्ता तो वैसी की वैसी ही रहती है।

अन्य धर्म ग्रन्थों के रचयिता

उपर्युक्त दृष्टि से विचार करें, तो भी जगत में ऐसे कितने धर्म–प्रवर्तक हुये, जिन्होंने कि स्वयं ही अपने धर्म ग्रंथ लिखे हों? धर्म-प्रवर्तक तो बड़ी मात्रा में सिद्धान्त (आदर्श) प्रस्तुत कर जाते हैं, बाद में उनके अनुयायी ही उनको ग्रन्थस्थ करते हैं। बौद्ध, इस्लाम, ईसाई धर्म आज के बहुत बड़े धर्मों में से हैं। करोड़ों मानव इन धर्मों के अनुयायी हैं, परन्तु ईसाई धर्म के धर्मग्रन्थ 'बाइबल' को किसने लिखा? क्या ईशुक्रिस्त ने? नहीं; उनके शिष्यों ने भी नहीं, वरन् मार्क, जोन (St Mark, St. John) आदि प्रशिष्यों ने बाइबल लिखी और फिर भी वह ईसामसीह का ग्रन्थ माना जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भगवान बुद्ध का भी ऐसा ही है। बुद्ध तो जगत के समक्ष अपने सिद्धान्तों को प्रस्तुत कर गये थे। उनके शिष्यों ने उन सिद्धान्तों और उपदेशों को ग्रन्थरूप दिया। बुद्ध के निर्वाण १०० वर्ष बाद उनके शिष्यों ने उनके उपदेशों को ग्रथित किया।

यदि किसी धर्म-प्रवर्तक ने स्वयं ही अपने उपदेश के ग्रन्थ का आलेखन किया हो तो मोहम्मद पैगम्बर ने। इस्लाम के धर्म ग्रन्थ की रचना उन्होंने स्वयं की थी। यदि इन सभी धर्म-प्रवर्तकों के बाद में लिखे गये ग्रन्थों की प्रमाण भूतता कम नहीं होती, तो फिर गीता श्रीकृष्ण के बजाय समकालीन व्यासजी ने लिखी भी तो इसमें अयोग्य क्या है? उसके सम्बन्ध में किसलिये शंका उत्पन्न होती है? क्या कहीं चोंच मारने को न मिला इसलिये कमज़ोर गाय को पकड़ा है?

तत्त्वज्ञान का सर्वोत्तम ग्रन्थ

भगवान ने जगत के मार्गदर्शन और अपना तत्त्वज्ञान समझाने के लिये गीता कही। उसका तत्त्वज्ञान इतनी उच्च श्रेणी का है कि उसके परिणाम स्वरूप गीता आज जगत के समस्त धर्म ग्रन्थों और तत्त्वज्ञान के ग्रन्थों में अग्रगण्य है। गीता दीपस्तम्भ की तरह तत्त्वज्ञान में मार्गदर्शन करने के लिये खड़ी है। अपनी इस पाठशाला का ही उदाहरण लें। यहाँ हम उपनिषद, ब्रह्मसूत्र आदि अनेक दिव्य ग्रन्थ पढ़ते हैं और उनका अध्ययन करते हैं। फिर भी इस पाठशाला का नाम "**श्रीमद्भगवद्गीता पाठशाला**" है। गीता का बांचन रोज करते हैं, क्योंकि गीता-ग्रन्थ तत्त्वज्ञान के ग्रन्थों का मुकुटमणि है।

निवृत्ति और प्रवृत्ति का चिरंतन संघर्ष

किसी भी मानव-जाति के इतिहास की समालोचना करेंगे, तो ज्ञात होगा कि वह संघर्षों से भरा हुआ है। निवृत्ति और प्रवृत्ति के बीच की टक्कर आदिमकाल से चली आ रही है, परन्तु जिस समय प्रवृत्ति और निवृत्ति के मध्य समन्वय हुआ, तभी मानव समाज विकास के अति उच्च शिखर पर पहुँचा। फिर भले ही वह क्षेत्र नैतिक, बौद्धिक, भौतिक या आध्यात्मिक हो। मात्र निवृत्तिवादी या मात्र प्रवृत्तिवादी विकास नहीं कर सकता। विकास तो मात्र प्रवृत्ति-निवृत्ति के योग्य समन्वय के द्वारा ही सिद्ध हो सकता है; उसे श्रीकृष्ण ने गीता में बताया है।

'**साँख्ययोगौपृथग् बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः**'– जिस-जिस समय ऐसा हुआ तब तब मानव समाज की उन्नति हुयी और जब जब मानव ने मात्र निवृत्ति या प्रवृत्ति को अपनाया, तब तब उसका अधःपतन हुआ है। समाज केवल प्रवृत्तिवादी बन जाय, यह इष्ट नहीं। उसी प्रकार केवल निवृत्तिवादी बन जाय, यह भी इष्ट नहीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समाज और समग्र मानव-जाति के समन्वय के लिये आवश्यकता है प्रवृत्ति और निवृत्ति के समन्वय की। मात्र निवृत्ति एक भ्रान्त कल्पना है। श्रीकृष्ण ने अपने जीवन द्वारा प्रवृत्तिवादी और निवृत्तिवादी-दोनों पाठ पढ़ाये हैं दोनों वादों के बीच चलने वाला संघर्ष, दोनों वादों के समन्वय द्वारा ही टाला जा सकता है। मात्र प्रवृत्ति और मात्र निवृत्ति अपनाने वाले समाज का अवश्य अधःपतन होता है। घड़ी के लोंलक (Pendulam) की तरह प्रवृत्ति और निवृत्ति की एक ओर से दूसरी ओर मानव जाति फिरा करती है।

ग्रीक तत्त्वज्ञान की समीक्षा

मानव इतिहास की समीक्षा करें तो ज्ञात होगा कि ग्रीक तत्त्वज्ञान अत्यन्त प्राचीन है। ग्रीक विद्वान होमर अति प्राचीन काल में हुये थे। उनके समय में प्रवृत्ति का प्राबल्य था। बहुत से लोग एक समय ऐसा दावा करते थे कि होमर के ग्रन्थ (इलियड) से रामायण की कथा ली गयी है परन्तु यह दावा बिलकुल मिथ्या प्रमाणित हो चुका है। उस काल में ग्रीक सँस्कृति उच्चता के शिखर पर पहुँची हुयी थी। उस समय ग्रीस में प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों का समन्वय साधा गया था। तत्पश्चात प्रवृत्ति का प्राबल्य हुआ। वह शक्ति में आयी। इसके कारण कई लोग पतन के गहरे गर्त में गिरे, ग्रीकों का आचरण भ्रष्ट हो गया और उनकी सँस्कृति का पतन होने लगा। नीति और अध्यात्म की अनुचित कल्पनायें होने लगीं। न जाने अधोगति कहाँ जाकर रुकती, परन्तु ग्रीस के सौभाग्य से पाइथागोरस (Pythagoras) पैदा हुआ। उसने लोगों को निवृत्ति का मार्ग दिखाया और गिरी हुयी गाड़ी पुनः पटरी पर आयी। उसने लोगों को मात्र प्रवृत्ति की ओर दौड़ लगाने से रोका और प्रवृत्ति पर निवृत्ति का अंकुश लगाया। इसी कारण पाइथागोरस महापुरुष बना। आज भी जगत के भूतकालीन महापुरुषों में उसका अविचल स्थान है।

पाइथागोरस ने प्रवृत्तिवाद का खण्डन कर निवृत्तिवाद की महत्ता बढ़ाई, तुरन्त उसकी मृत्यु के पश्चात लोगों ने निवृत्ति को इतना अधिक प्राधान्य दिया कि प्रवृत्ति तो बिलकुल विस्मृत हो गयी। परिणामतः ग्रीस का फिर अधःपतन होने लगा। सामने भोजन का थाल तैयार हो, भूख लगी हो फिर भी भोजन न करना ऐसी परिस्थिति निर्माण हो गयी। इसी समय इपिक्यूरस (Epicurus) पैदा हुआ। उसने घोर निवृत्तिवाद का खण्डनकर फिर प्रवृत्तिवाद की महत्ता बढ़ाई और इस प्रकार पटरी से हटी गाड़ी फिर पटरी पर चढ़ी। निवृत्ति और प्रवृत्ति का पुनः समन्वय हुआ। परन्तु उसके अनुयायी उसे यथार्थ रूप में न समझ सके और वे मात्र प्रवृत्तिवाद का समर्थन करने लगे। लोग मात्र भौतिक सुख की ओर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आकर्षित हुये और प्रवृत्ति की मात्रा सीमा का उल्लंघन करने लगी। अत्यधिक प्रवृत्ति के कारण लोगों की भोगवासना बढ़ने लगीं। लोग विषय लम्पट बन गये, समाज की दुर्गति होने लगी और उसमें ईसाई धर्म का बीजारोपण हुआ। ईसा ने बढ़ते हुये प्रवृत्तिवाद को लाल बत्ती दिखायी और लोगों को निवृत्ति की ओर मोड़ा। पटरी से गिरी हुयी गाड़ी को ईसामसीह ने फिर पटरी पर चढ़ाया।

प्रवृत्ति की अधिकता के परिणाम स्वरूप समाज में मारकाट, लूटपाट आदि होने लगे थे – आसुरी वृत्ति बढ़ गयी थी। "**इदमद्य मया लब्धं**" की भावना में से समाज की योग्य व्यवस्था कर ईसाई धर्म टिका रहा।

कई व्यक्ति ऐसे हैं, जो तर्क करते हैं कि ईशु और श्रीकृष्ण समकालीन हैं, इसलिये श्रीकृष्ण ने ईसु के विचार ग्रहण किये हैं। आज, सभी मानवों को यह सत्य स्वीकार करना पड़ा हैं कि श्रीकृष्ण ईसु से पहले हो गये थे। इस ऐतिहासिक सत्य को कोई अस्वीकार भी नहीं कर सकता। केवल वैचारिक साम्य देखकर श्रीकृष्ण को पदच्युत करने का प्रयत्न करने वालों के मुंह बन्द हो गये हैं।

ईसु का उद्देश

ईसु का उद्देश्य प्रवृत्तिवाद और निवृत्तिवाद का समन्वय सिद्ध करना था। परन्तु उनके अनुयायी निवृत्तिवाद को अधिक महत्त्व देने लगे। फलस्वरूप समाज निवृत्तिमय जीवन-यापन करने लगा। अत्यधिक निवृत्तिवाद के प्रचार के फल से गिरजाघर (Churches) और मठ सँस्थायें बढ़ने लगीं। हजारों योगी और योगिनियाँ (Monks and Nuns) निवृत्ति का प्रचार करने लगीं। इनकी संख्या बढ़ने लगीं। परन्तु इस प्रकार योगी और योगिन बने युवक युवतियों के मन से विषय-कीट का नाश हुआ न था। विषय-वासना तथा भोग विलास को दबाकर इन्होंने साधु-जीवन अपनाया था। परिणाम स्वरूप इनके जीवन में व्यापक रूप में अनीति फैलने लगी और धर्म तथा नीति के झूठे पर्दे के नीचे पापाचरण होने लगा। समाज का पुनः अधःपतन हुआ। गिरजाघर और मठ अनीति के केन्द्र बन गये। समाज में अनाचार फैल गया।

मार्टिन ल्यूथर का प्रोटेस्टंट धर्म

इस समय मार्टिन लूथर (Martin Luther) पैदा हुआ। उसने देखा कि मात्र निवृत्ति लोंगों के विकास को अवरुद्ध करती है और दोष फैलाती है। इसलिये उसने प्रोटेस्टैंट (Protestant) धर्म की स्थापना की और प्रवृत्तिवाद को पुनर्जीवित किया। परन्तु स्थायी प्रणाली और मर्यादा के अनुसार प्रवृत्तिवाद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपनी मर्यादा का उल्लंघन कर गया और आज हम इसका प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे हैं। जितना व्यापक इस समय प्रवृत्तिवाद बना है उतना पहले कभी नहीं बना था। पतन की सभी, प्रवृत्तियों के सहज दोषों को हम आज अपनी ही आँखों से देख रहे हैं।

आज के जीवन में निवृत्ति को स्थान ही नहीं मिलता। प्रवृत्ति, प्रवृत्ति और मात्र प्रवृत्ति। उद्योग, व्यापार, यांत्रिक विकास-समाज के प्रत्येक क्षेत्र में हाय-हाय और उठा-पटक ही दिखायी देती है। इस भौतिक विकास को सिद्ध करने के लिये लाखों मानवों की एक या दूसरी रीति से, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रीति से हत्या हो रही है।

आज का युग बुद्धि व व्यक्तिस्वातंत्र्य का युग है। जिसको जैसा भाता है वैसा ही बर्ताव वह करता है। जिसको जो ठीक लगता है वैसा ही आचरण, विचार वह करता है। इस व्यक्ति-स्वातंत्र्य के रंगीन वस्त्र के नीचे मानव आज पाशव-लीला कर रहा है। अपनी वासना, सत्ता-क्षुधा और हठ को सन्तुष्ट करने के लिये वह, सम्पूर्ण मानव जाति को मृत्यु के मुँह में धकेल रहा है। ऐसे संयोगों में, निकट भविष्य में कोई पाइथागोरस या ईसु पैदा होगा और पटरी से गिरी इस समाज की गाड़ी को फिर से पटरी पर चढ़येगा, ऐसी आशा है।

संक्षेप में, होमर से लेकर आज तक का इतिहास हमने देखा। दो ही मिनट में मैंने कह दिया। परन्तु परिवर्तन होने में हजारों बर्ष लगते हैं। आज तो प्रवृत्तिवाद को स्वातंत्र्य, व्यक्ति-स्वातंत्र्य आदि आकर्षक नाम दिये गये हैं और जो पहले पाश्चात्य जगत में हो चुका वह आज भारत में भी हो रहा है। यहाँ भी निवृत्ति-प्रवृत्ति का उतार-चढ़ाव पूर्व से चला आया है और हमारे देश में भी जब जब दोनों का समन्वय हुआ, तभी अभ्युदय भी हुआ।

भारत में प्रवृत्ति-निवृत्ति का सिलसिला

हमारे पूर्वजों ने वर्णाश्रम-धर्म द्वारा प्रवृत्ति और निवृत्ति का समन्वय सिद्ध किया, दोनों का नियमन किया।

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयेषिणाम्।
वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥

यह विधान बहुत सुन्दर और योग्य था। इसके द्वारा बताया गया है, कि किसी भी वस्तु का आग्रह नहीं पकड़ना चाहिये; अनाग्रही बुद्धिवाला ही विकास कर सकता है- '**बुद्धेः फलमनाग्रहः**'-परन्तु लोग इस उत्तम व्यवस्था को सुरक्षित नहीं रख सके।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऋग्वेद कालोत्तर प्रवृत्ति

ऋग्वेद के अन्तिम काल (उत्तर वैदिक युग) में कर्मवाद प्रभाव में आया। भोग–विलास की मात्रा बढ़ गयी। स्वर्ग प्राप्त करना व्यक्ति के वैयक्तिक हित की बात समझी जाती, जिसके लिये हज़ारों जीवों की हिंसा करके यज्ञ किये जाते। बलिदान के रूप में जीवहिंसा की जाती। दूसरों का कुछ भी हो पर अपने को तो स्वर्ग मिलना चाहिये-इस सनक में लोग न करने योग्य कामों को भी करने लगे। धर्म के नाम पर सुख--सम्पत्ति, धन--दौलत प्राप्त करने के अनेक पैंतरे रचे जाने लगे। अमुक यज्ञ करने से अमुक वस्तु की प्राप्ति होती है--ऐसा बताने वाली पुस्तकों की संख्या बढ़ गयी। लोग वैयक्तिक स्वार्थ के लिये, सुख प्राप्त करने के लिये दूसरी बातों का विचार न कर उन सुझावों के अनुसार व्यवहार करने लगे। संक्षेप में यज्ञों का हेतु हो गया स्वर्ग में जाना, खूब भोग–भोगना और फिर भोग्य प्राप्त कर देवताओं को खूब--भोग चढ़ाना, ताकि वे प्रसन्न होकर हमको और सम्पत्ति दें।

देवताओं को हम देते हैं, क्योंकि हमें विश्वास है कि वे हमें दुगुना--अनेक गुना देंगे। सत्यनारायण की कथा करनी चाहिये क्योंकि इससे मनोकामना पूर्ण होती है।

उपनिषत्काल

इस प्रकार के जलावर्त में समाज फँस गया, फलस्वरूप समाज की गाड़ी पटरी से फिर उतर गयी। इसको निवृत्तिवाद ने फिर से पटरी पर चढ़ाया। उपनिषद् पुरुष पैदा हुआ, उसने समाज को प्रवृत्ति--निवृत्ति के समन्वय को साधने का तत्त्वज्ञान दिया। परन्तु जैसा होता आया है, उसी प्रकार लोग पुनः मात्र निवृत्तिवादी बनने लगे। संन्यास की ही बातें होने लगीं। लोग मात्र निवृत्त जीवन--यापनकर शरीर को कष्ट देने लगे। संन्यासियों की संख्या बढ़ने लगी इस समय भगवान कृष्ण अवतरित हुये। उन्होंने भूतकाल देखा। इसीलिये उपसंहार में यह बताया है कि ' गीता ' का तत्त्वज्ञान किसके लिये है ?

" इदं ते ना तपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥ "

श्रीकृष्ण द्वारा समन्वय

श्रीकृष्ण का तप से विरोध नहीं था, न संन्यास से ही। उनका विरोध था बिना समझे हुये अयुक्त तप और श्मशान वैराग्य से। बिना समझे शरीर को अनुचित रीति से कष्ट देना और उसी प्रकार भावावेश में प्रभावित होकर संन्यास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का महत्त्व समझे बिना संन्यास लेना उचित नहीं, ऐसा श्रीकृष्ण नें समझाया है। कर्ममार्ग से मिला हुआ पुण्य भी योग्य नहीं ऐसा निर्देश उन्होंने दिया–

'क्षीणे पुण्ये मर्त्य लोकं विशन्ति।'

जिस समय श्रीकृष्ण पैदा हुये, उस समय साँख्य, वेदान्त, योग, मीमांसा इत्यादि की भ्रान्त धारणा फैली हुयी थी। श्रीकृष्ण ने इस भ्रान्त कल्पना को दूर कर प्रवृत्ति–निवृत्ति का समन्वय किया। उन्होंने समझाया मानव शरीर भोगों का सर्वथा परित्याग नहीं कर सकता, उसी प्रकार शारीरिक–भोगों में लिप्त रहना भी उचित नहीं। उस समय जरासंध और कंस जैसे सत्ता–लोलुप मानव अपनी वासना और भोग–लम्पटता को तृप्त करने में अत्यन्त प्रवृत्त रहते थे। यह प्रवृत्ति समाज का अनिष्ट और विनाश करनेवाली थी। श्रीकृष्ण ने ऐसे प्रवृत्तिवादियों का विनाश कर, समाज को अधःपतन से उबार लिया।

दूसरी ओर अर्जुन जैसे भी थे, जो क्षणभर में वैराग्य धारण कर लेते; क्षणिक वैराग्य–श्मशान वैराग्य का भोग बन जाते, और **'यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्'** का विपरीत अर्थ लेकर संन्यास लेने दौड़ पड़ते। श्रीकृष्ण ने उनको समझाया कि इस प्रकार की निवृत्ति योग्य नहीं, समाज का अधःपतन करनेवाली है। ऐसे मानवों को उन्होंने उपदेश दिया कि अकेली प्रवृत्ति या निवृत्ति से विकास नहीं होता। और धीरे धीरे समाज की गाड़ी पटरी पर आ गयी।

गौतम बुद्ध और निवृत्तिवाद

ईसु से हज़ारों वर्ष पूर्व की यह बात है। श्रीकृष्ण ने गाड़ी पटरी पर चढ़ाई। इसके पश्चात् दो एक हजार वर्ष तक सब कुछ ठीक ठीक चला। भारतीय कला कौशल, साहित्य–संशोधन आदि का यह स्वर्ण काल था। लेकिन इसके पश्चात् समाज ने अधिक पतित प्रवृत्तिवाद को अपनाया। लोग मौज–शौक और आमोद–प्रमोद में पड़ गये। भागवत धर्म का अनुचित अर्थ होने लगा। श्रीकृष्ण के नाम पर लोग अनाचार करने लगे। कृष्ण–भक्ति के पहले पर्दे के पीछे लोग भोग वासना को सन्तुष्ट करने लगे। शिव–भक्तों की भी यही दशा हुयी।

इस समय बुद्ध का जन्म हुआ। प्रवृत्ति की ओर अंधे होकर दौड़नेवालों को बुद्ध ने अधःपतन के गर्त में पड़ने से रोका। महावीर ने भी लोगों को निवृत्ति की ओर मोड़ा, दोनों ने भोगवाद की अति पर प्रहार किया। बौद्ध और जैन धर्म का वर्चस्व बढ़ा। दोनों राजधर्म बन गये।

इस प्रकार पुनः मात्र निवृत्तिवाद का प्रारम्भ हुआ। मठ और विहार बढ़ने लगे, मुण्डन का प्रारम्भ हुआ। साधुओं के झुण्ड यत्र-तत्र फिरने लगे। जंगल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मरने लगे और नगर उजाड़ होने लगे। विषय से अपराङ्मुख युवकों और युवतियों को भी दीक्षा दी जाने लगी परिणामस्वरूप प्रत्येक समय जैसा होता आया है, वैसा ही होने लगा। धर्म के झुठे पर्दे के पीछे अनाचार फैलने लगा।

कुमारिल भट्ट और मण्डनमिश्र

ऐसे समय कुमारिल भट्ट ने ऐसी अन्धी सनक के विरुद्ध प्रहार प्रारम्भ किया और लोगों को कर्मवाद की ओर प्रवृत करने का प्रयत्न किया। परन्तु कर्मवाद की स्थापना करते समय कुमारिल भट्ट ने एक महान भूल की। दोनों वादों के समन्वय की अपेक्षा वे निवृत्तिवाद को धिक्कारते रहे। संन्यासी या भिक्षुक का नाम सुनते ही वे लाल–पीले हो जाते, गरज उठते और काट डालने की बात करते। भिक्षुक या संन्यासी को देखते ही स्नान करने को कहते–**'सचैलं स्नानमाचरेत'**।

कुमारिल भट्ट का शिष्य हुआ प्रखर विद्वान मण्डन मिश्र। कहते हैं कि उनके घर में तोता भी जगत ध्रुव है या नहीं, वेद स्वतः प्रमाण हैं या परतः इत्यादि चर्चा करता था, जिन विषयों की आज के सभ्य लोगों को कल्पना तक नहीं। उनके घर के सम्बन्ध में यदि कोई पूछता तो ऐसा कहा जाता, "जहाँ तोता संस्कृत में सम्भाषण करता हो वही घर मण्डन मिश्र का है।" शंकराचार्यजी भी जब दिग्विजय करने निकले उस समय मण्डन मिश्र का पता पूछने पर उन्हें पनिहारियों ने वही उत्तर दिया था। शंकराचार्यजी यह सुनकर आश्चर्यचकित हो गये–जिसके घर का तोता भी तत्त्वज्ञानी है वह मण्डन मिश्र कैसा होगा?

संन्यासियों और वैरागियों के कट्टर शत्रु कुमारिल भट्ट के शिष्य मण्डन मिश्र के निवास–स्थान पर शंकराचार्य पहुँचे और उसे ललकारकर बोले, 'तेरी बातें बिलकुल मिथ्या हैं। तेरा तत्त्वज्ञान अनर्थकारी है।' उसके बाद शंकराचार्यजी ने मण्डन मिश्र को शास्त्रार्थ कर पराजित किया और उनकी भूल बतायी। कहते हैं कि जब कुमारिल भट्ट के यहाँ शंकराचार्य पहुँचे, तब वे अग्निस्नान करते थे। वे अपनी भूल समझ गये थे इसलिये अनर्थ को रोकने के लिये अपने शिष्य के पास शंकराचार्य को भेजा था। मण्डनमिश्र शंकराचार्य से परास्त हो गये और उनके शिष्य बन कर रहे। इसप्रकार पराजय स्वीकार कर दूसरे धर्म प्रवर्तक का शिष्य बनने का यह एकमेव उदाहरण है।

शंकराचार्यजी ने निवृत्ति–प्रवृत्ति का सुन्दर समन्वय बताया है; उनका तत्त्वज्ञान देखें तब पता चलेगा। परन्तु शंकराचार्यजी के ग्रंन्थों में निवृत्तिका पक्ष लेकर प्रवृत्ति का खण्डन देखते ही उनके अनुयायियों ने मात्र निवृत्ति का ही प्रचार किया। बाद में रामानुज ने दोनों का पुनः समन्वय साधने का प्रयत्न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किया। उन्होंने शंकराचार्य जी के अनुयायियों का खण्डन कर प्रवृत्तिवाद चलाया। वल्लभाचार्य के समय तक सभी ठीक चला, परन्तु मूढ़ लोग फिर गहरे गर्त में गिरे, फिर समाज का अधःपतन हुआ। इस प्रकार प्रवृति–निवृत्ति का गज–ग्राह–युद्ध अनादिकाल से चला आ रहा है।

" समत्वं योग उच्यते "

वास्तव में भगवान श्रीकृष्ण ने दोनों का सुन्दर समन्वय साधा है। और गीता द्वारा जगत को चिर शांति और उन्नति का मार्ग बताया है। जब दोनों का समन्वय हुआ तभी समाज आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और भौतिक प्रगति कर सका। दोनों देशों के, इतिहास से हमने देखा कि जब जब लोगो ने एक ही वाद को पकड़ा तब तब सामाज का अःधपतन ही हुआ। दोनों का समन्वय मध्यमार्ग है। उसमें किसीके लिये भी अधिक आग्रह या दुराग्रह नहीं, सम्पूर्णतः निरोध (Complete prohibition) नहीं। संन्यास नहीं, विचार पूर्ण ग्रहस्थाश्रम।

प्रत्येक वस्तु पर नियंत्रण (Control) चाहिये। किसी भी बात का अतिरेक नहीं होना चाहिये – यही मार्ग सच्चे विकास का मार्ग हैं। मानव इस मार्ग को अपना कर स्थायी उन्नति सिद्ध कर सकता है और इस विकास के लिए योग्य मार्ग दिखाने वाला यदि कोई ग्रंन्थ है तो, एकमात्र गीता ही है।

" आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधि को विशेषः . ॥ "

अनैतिकता को विवाह संस्था नियंत्रण में रखती है एकाकीपन मानव का विकास नहीं कर सकता। संक्षेप में समन्वय श्रीकृष्ण के जीवन और उनकी गीता में देखने को मिलता है।

श्रीकृष्ण के बाद के इस समन्वय के इतिहास को देखें तो ज्ञात होगा कि समाज की किस प्रकार प्रगति हुयी। जरासंध, शिशुपाल और कंस कोई सामान्य व्यक्ति न थे। धार्मिक दृष्टि से देखने पर भी आज के किसी धर्म–प्रेमी की अपेक्षा वे निम्न श्रेणी के न थे, वरन् धर्म के सम्बन्ध उनके विचार अच्छे नहीं थे। धर्म का वास्तविक अर्थ समझे बिना मात्र अपने स्वार्थ सिद्ध करने के लिये ही धर्म का आचरण करते थे। श्रीकृष्ण ने इसीलिय उन मदोन्मत्त और स्वार्थान्धों का संहार किया।

श्रीकृष्ण ने किसी भी धर्म ग्रन्थ का खण्डन नहीं किया। सांख्य, योग, न्याय, वेदान्त या उपनिषद् किसीका भी विरोध नहीं किया, बल्कि सभी धर्मग्रन्थों का अर्क निकालकर लोगों को निरपेक्ष भाव और अनहंकार बुद्धि से कर्म

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करने का उपदेश दिया है। इसमें भी कितने ही बुद्धिमान भेदभाव पैदा करते हैं। कोई कहते हैं 'गीता कर्मवाद का समर्थन करती है।' दूसरे कई कहते हैं 'ज्ञानवाद का समर्थन करती है' दोनों ही मान्यतायें एकांगी हैं। श्रीकृष्ण ने दोनों का सुमेल साधा है। उन्होंने न तो कर्मवाद (प्रवृत्ति) का समर्थन किया है, न निवृत्तिवाद का खण्डन ही। मानव--जाति के विकास में दोनों की आवश्यकता है।

श्रीकृष्ण तो कहते हैं-जो निरपेक्ष भाव से कर्म करता है वह संन्यासी तथा फलेच्छारहित साम्य दृष्टि से कर्म करता है, वह कर्मयोगी है। अर्थात् कर्म तो प्रत्येक को करना ही है। "**साँख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति** " परन्तु सत्य बात तो यह है–जैसी जिसकी बुद्धि वैसी उसकी दृष्टि। कर्मवाद और संन्यास में भेद करने वाले नादान हैं। **काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।** संक्षेप में, निरपेक्ष और निरहंकार वृत्ति से आदेश देकर कर्म और संन्यास की एकता गीता बताती है। कर्मवाद और संन्यास दोनों एक ही हैं–एक दूसरे के पोषक हैं। दोनों में से एक की भी अवगणना नहीं हो सकती।

कार्य और संन्यास के साथ-साथ श्रीकृष्ण ने भक्ति को भी मिलाया है। भक्ति–धर्म के प्रस्थापक भी वही हैं। इस प्रकार तीनों का समन्वय ही गीता की विशिष्टता है।

तेजस्वी भक्तिमार्ग

श्रीकृष्ण ही वस्तुतः भागवत--धर्म के आदि संस्थापक थे। सामान्य मानव के लिये संन्यास, कर्मयोग आदि अन्य विषय अति कठिन है। शास्त्रों के अभ्यास के लिये पर्याप्त समय और बुद्धि चाहिये। यज्ञयाग के लिये भी धन चाहिये। गृहस्थ आश्रम को चलाने का दायित्व जिन पर है उनके लिये इस प्रकार के ग्रन्थों का अध्ययन या यज्ञयाग कठिन है। इसके अतिरिक्त संन्यास और योग के लिये सुदृढ़ मनोबल और उत्कृष्ट बुद्धि चाहिये। इसलिये द्रव्यहीन और सामान्य बुद्धि के मानवों के लिये तो भक्ति--मार्ग ही उत्तम है, सरल है। इसीलिए श्रीकृष्ण ने कहा-

'**पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति...**' तथा
'**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु** '

भक्तियोग का निरूपण करते समय श्रीकृष्ण ने साँख्य, योग, मीमांसा सभी बातों को एक ओर रख दिया। इसीलिये गीता सब शास्त्रों में श्रेष्ठ गिनी जाती है। गीता में सभी कुछ है। सभी धर्म ग्रन्थों, दर्शनों, वेद–उपनिषदों का सार इसमें है। इसीलिये उसे सर्व शास्त्रमयी गीता कहते हैं। उनकी समाप्ति का मंत्र भी देखो – '**इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु...।**'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सामान्य मानव वेदरूपी गहरे कुँये से ज्ञानरूपी जल निकालकर अपनी तृषा शान्त नहीं कर सकता इसलिये श्रीकृष्ण ने उनके लिये गीतारूप प्याऊ खोला है।

सर्व सुलभ भक्ति मार्ग

एक समय में शूद्रों के अतिरिक्त शेष तीनों जातियाँ वेदाभ्यास करती थीं। बाद में वैश्यों ने वेदाभ्यास और यज्ञोपवीत का परित्याग कर दिया, इसप्रकार सभी उत्तरदायित्व ब्राह्मणों और क्षत्रियों पर छोड़कर निश्चित बन गये तथा द्रव्योपार्जन के पीछे लग गये। बाद में क्षत्रियों ने भी वेदाध्ययन छोड़ दिया और इनका ध्यान कृषि और वाणिज्य पर केन्द्रित हो गया।

वैश्ववर्ग च्युत हुआ, उसके पीछे क्षत्रिय वर्ग भी दौड़ पड़ा और ब्राह्मणवर्ग उलझन में पड़ गया। पहले स्त्रियाँ भी वेदाभ्यास करती थीं बाद में उनमें भी शिथिलता आ गयी। स्त्रियाँ स्वाभाविक रूप से भोगप्रधान होती हैं। उन्हें तनिक भी स्वाधीनता मिली कि फिर पूछना ही क्या! इसप्रकार वेद पढ़नेवालों ने वेद छोड़ दिये। शूद्रों ने तो कभी वेद हाथ में भी नहीं लिया था, परिणामस्वरूप वेदाभ्यास मात्र ब्राह्मणों के लिये रह गया। वेदधर्म से ब्राह्मण भी च्युत हुये। श्रीकृष्ण तो बचपन से ही वैश्य, शूद्र और स्त्री–तीनों वर्णों के बीच रहे, इन तीनों के अन्तस् में प्रेम है, यह वे जानते थे, इसलिये वेदाभ्यास न कर सकने के कारण इनके लिये उन्नति के द्वार बन्द रहे–यह श्रीकृष्ण को उचित न लगा। अतः उन्होंने उन लोगों को भक्ति मार्ग बताया वैकुण्ठ का द्वार उनके लिये खोला। **"स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।"**

श्रीकृष्ण की उदार और क्रान्तिकारी दृष्टि

ईसु ने मात्र ईसाइयों का उद्धार किया। बाइबिल मात्र इनके लिए ही मर्यादित रही। मुसलमानों की भी ऐसी ही संकुचित वृत्ति है। मुसलमान के अतिरिक्त समस्त मानव उनके लिये नापाक–अपवित्र जब कि श्रीकृष्ण का उपदेश सम्पूर्ण मानव–जाति के लिये है। जाति, वर्ग या धर्म की रोक उन्हें मान्य नहीं। उन्होंने भक्ति–धर्म की स्थापना की। गीता के दसवें अध्याय में लिखा है–

'यद्यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्॥'

श्रद्धापूर्वक किसी भी देव किसी भी विभूति की उपासना करो, वैकुण्ठ मिलेगा। दूसरे धर्मों में जैसे–मात्र ईसु की अथवा मोहम्मद की ही उपासना करो यह बात कही है, वैसे श्रीकृष्ण ने नहीं कहा। कितनी व्यापक और क्रान्तिकारी दृष्टि! जगत के किसी भी धर्म–प्रवर्तक में ऐसी उदार और क्रान्तिकारी दृष्टि देखने को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं मिलती। ऐसी स्पष्ट घोषणा वाले श्रीकृष्ण ही प्रथम हैं। उन्होंने राजनीति, तत्त्वज्ञान, धर्म आदि सभी में क्रान्ति की चिंगारी सुलगाई थी।

शास्त्रप्रमाण

'To be or not to be' यह प्रश्न अनेक बार मानव के सम्मुख उपस्थित हुआ है। श्रीकृष्ण कहते हैं– 'जो होना हो वह भले ही हो, तू श्रद्धापूर्वक अपना कार्य कर।' उन्होंने–**'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते...'** तथा **'सहजं कर्म कौन्तेय...'** कहकर दोषयुक्त स्वकर्म का भी त्याग करने का अनुमति नहीं दी है। शास्त्र कहे वह प्रमाण, बुद्धि कहे वह नहीं। ऐसा अनाग्रही वक्ता मिलेगा क्या? कृष्ण स्वयं ऐसा नहीं कहते, 'मैं जो कहूँ उसे स्वीकार करो' परन्तु शास्त्र सम्मत बात को स्वीकार करने को कहते हैं।

मानवी समस्याओं का सनातन हल

एक तत्त्ववेत्ता ने 'Greatest good of greatest number' अधिक से अधिक लोगों का अधिक से अधिक हित के कार्य का समर्थन किया है। परन्तु इस सिद्धान्त का अनर्थ होने लगा है। एक व्यक्ति किसी युवती को चाहता है, इस बीच उसका अन्यत्र विवाह हो जाता है। अब उसे क्या करना? पत्नी को छोड़े या प्रेमिका को? धर्मपत्नी को छोड़ने की आज्ञा नहीं देता। अधिक प्रमाण में अधिक व्यक्तियों के हित के सिद्धान्त के अनुसार यदि पत्नी को छोड़ दे तो दो व्यक्तियों को सन्तोष मिलता है, जब कि दूसरी ओर मात्र पत्नी को ही सन्तोष होता है। इसलिये दो व्यक्तियों के सन्तोष के लिये एक व्यक्ति का हित छोड़ दे, इसमें कोई बाधा नहीं। इस प्रकार यदि इस सिद्धान्त का अर्थ लगाया जाय तो संसार की गाड़ी किस प्रकार चलेगी? इसीलिये गीता शास्त्र के अनुसार चलने की आज्ञा देती है। इस प्रकार गीता मानव की समस्याओं का स्थायी समाधान बताती है।

फलनिरपेक्ष कर्मयोग

गीता सर्व शास्त्र-सार है–**'सर्वोपनिषदो गावो...!** गीता मानव जीवन का तत्त्वज्ञान है। कर्म करना ही पडेगा; संन्यास चाहिये ही, परन्तु संन्यास के लिये कर्म-त्याग नहीं होता–यह है गीता का उपदेश। गीता फल की आशा रखे बिना कर्म करने का आदेश देती है– **'कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'** क्योंकि कर्म जाय तो मात्र संन्यास वृत्ति ही रहेगी और यदि मात्र फलेच्छा रखकर काम किया जाय तो मात्र प्रवृत्ति आये।

यह बात कृष्ण को मान्य नहीं कि 'मानव या तो संन्यासी बने या सिर्फ कर्मठ' उन्हें तो संन्यासी होते हुये भी सच्चा कर्मयोगी रुचता है। रुपये के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दोनों पहलुओं की आवश्यकता होती है। श्रीकृष्ण एक समय में (Simultaneousty) दोनों बातें रखने के लिये कहते हैं। और इसकी सिद्धि के लिये ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करने की सरल युक्ति बताते हैं। यदि कर्म फल अपने साथ रखें तो मानव जीवन निर्भय नहीं बन सकता। काशी यात्रा जाते समय यदि दो हजार रुपये साथ रखे हों तो मार्ग में कभी भी निर्भयता नहीं रहेगी।

श्रीकृष्ण निर्भयता सिखाते हैं। 'किसीसे भी न डरो' यह गीता का आदेश है। सफल जीवन--यापन करने के लिये निर्भयता अति आवश्यक है। जो कुछ करो वह सब ईश्वर को अर्पित कर के करो। संक्षेप में फलासक्ति रहित कर्म करो यही गीता का रहस्य है।

गीता एक ऐसा अद्‌भुत ग्रन्थ है जिसको सुनकर अर्जुन का मोह जाता रहा '**नष्टोमोहः स्मृतिर्लब्धा**' परन्तु अधुनिक अर्जुनों को उसमें अनेक शंकायें होती हैं; जैसे आज कितने ही नाम के तो राम, लक्ष्मण है परन्तु बर्तन मांजकर पेट भरते हैं वैसे ये अर्जुन भी हैं। इन अर्जुनों को गीता अपूर्ण लगती हैं।

इन अपूर्णों को गीता के सम्बन्ध में क्या क्या शंकायें हैं, गीता क्यों अपूर्ण लगती है, और वे शंकायें सत्य हैं या असत्य इन सभी बातों का विचार आगे करेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सत्रहवाँ प्रकरण

आधुनिक अर्जुनों के प्रहार (१)

गीता का तत्त्वज्ञान प्रभु का–पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का है। प्रभु के तत्त्वज्ञान का निरूपण करनेवाले ग्रन्थ का नाम है--'गीता।'

उत्कर्ष और अधःपतन

हमने प्रभु के तत्त्वज्ञान के सम्बन्ध में विचार किया है। मानव उत्कर्ष और अपकर्ष सम्बन्धी कारणमीमांसा में हमने देखा कि उत्कर्ष एक सहकार्यपर आधारित है। अति प्रवृत्ति याने अधःपतन, उसी प्रकार अति निवृत्ति से भी अधःपतन परन्तु निवृत्ति–प्रवृत्ति दोनों का समन्वय अर्थात् उत्कर्ष–विकास–ऐसा है मानव जीवन का इतिहास। जिस काल में यह समन्वय हुआ, तब भौतिक, नैतिक, और आध्यात्मिक विकास देखने को मिला।

घड़ी के लोलक (Pendulam) की तरह अस्थिर समाज को महापुरुषों ने समन्वय का रास्ता बताया है। एक महापुरुष जन्म लेता है और लोगों को प्रवृत्तिवाद के मार्ग पर मोड़ता है और समाज की गाड़ी पटरी पर चढ़ती है। परन्तु उसके अनुयायी उनके तत्त्वज्ञान का भ्रामक अर्थ कर, मात्र प्रवृत्तिवाद का ही समर्थन करने लगते हैं। समाज प्रवृत्ति के पीछे अन्धा होकर दौड़ता है, भोगविलास बढ़ता है और समाज का अधःपतन हो जाता है। दूसरा महापुरुष जन्म लेता है और समाज को निवृत्तिवाद की ओर मोड़ता है। पटरी से गिरी हुयी समाज की गाड़ी पुनः पटरी पर आती है, परन्तु उसके अनुयायी उसके तत्त्वज्ञान का गलत अर्थ कर निवृत्तिवाद का ही समर्थन करते हैं। समाज उनका अनुसरण करता है और उसका अधःपतन होता है। अनादिकाल से यह क्रम चला आया है।

हमने पहले होमर से प्रारम्भ कर प्रोटेस्टैण्ट तक का विचार कर लिया है। वेदकालीन उन्नति से लेकर वल्लभाचार्य और रामानुजाचार्य के समय तक का विश्लेषण किया। अपकर्ष और उत्कर्ष का बस यही क्रम चलता आया है। संक्षेप में कहें तो–आचार्य समन्वय करते हैं और अनुयायी कुछ भिन्न अर्थ कर साम्प्रदायिक दीवार खड़ी कर देते हैं। एकांगी आग्रह रखकर 'आँख का काजल गाल में घिसकर' वे कथन का अनर्थ कर देते हैं। मानव जब पशुता का मार्ग छोड़कर मानवता की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ओर अग्रसर होने का प्रयास करता है, तब पशुता उसे अपनी ओर खींच लेती है; जगत का यह सामान्य क्रम है।

सर्वशास्त्रमयी "गीता"

पिछले प्रकरण में मानव के साँस्कृतिक अंगों को हमने देखा। जगत प्रवृत्ति और निवृत्ति के मध्य झूलता रहता है। श्रीकृष्ण ने प्रवृत्ति और निवृत्ति का समन्वय साधने वाला गीता का तत्त्वज्ञान देकर मानव जाति के स्थायी उत्कर्ष का मार्ग आसान कर दिया है। इसीलिये गीता दिव्यातिदिव्य ग्रन्थ के रूप में पूजी जाती है।

गीता अर्थात् सभी ग्रन्थों का सार; किसी भी ग्रन्थ से विरोध नहीं। गीता ने प्रत्येक शास्त्रा को पकड़कर उसका अवरोधक तत्त्व क्या है, यह बताया है। इसी लिये सभी शास्त्रों के मूल सिद्धान्त गीता में आ जाते हैं। गीता तो साँख्य, योग द्वैत–अद्वैत आदि को अविरोधी सिद्ध करती है। परन्तु हमें तो सभी दर्शनों, शास्त्रों में विरोध ही दिखायी पड़ता है, क्योंकि हमारी दृष्टि ही भेदमय है। गीता में ऐसा कुछ भी नहीं, इसलिये वह "सर्व शास्त्रमयी" कहलाती है।

हमारे धर्म में तो प्रत्येक कार्य को निर्विरोध करने को कहा गया है। संध्यां कर्म के प्रारम्भ में ही कहना होता है, '**सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे।**' यदि यह वास्तविकता हम न समझ सकें तो, समझना चाहिये कि हमारी बुद्धि में ही कुछ दोष हैं। शांत चित्त से श्रद्धापूर्वक गीता का अध्ययन करेंगे तो उसकी दिव्यता के अवश्यमेव दर्शन होंगे। कर्तव्याकर्तव्य के निर्णय में गीता को पढ़ने के पश्चात कठिनाई नहीं आयेगी। जो बुद्धिपूर्वक गीता ग्रन्थ को नहीं पढ़ेंगे, उन्हें 'उसमें कुछ भी नहीं'–ऐसा लगेगा परन्तु कहते हैं न '**मिष्टान्नपानं किम् गर्दभाणाम्**' गधों को मिठाई के स्वाद की खबर कहाँ से हो?

"गीता" की अपूर्वता

गीता ऐसा अद्‌भुत और दिव्य ग्रन्थ है कि विदेशी तत्त्वचिन्तक और विचारक भी इसके पीछे पागल हो जाते हैं। हमारे देश के धर्माचार्यों ने उसके पीछे अपना जीवन आर्पित किया था, यह कहने की तो आवश्यकता ही नहीं। पाश्चात्य जगत के धुरन्धर तत्त्वचिन्तकों ने कहा है–"Geeta is Indin's valuable Contribution to the future religion of the world" गीता जगत के भावी विश्व-धर्म के लिए भारत का अति मूल्यवान योगदान है।

आप को किसी भी विषय में कोई भी सन्देह हो, तो गीता हाथ में लें, आपका सन्देह दूर हो जायगा, परन्तु उसका–गीता का अध्ययन और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मनन आवश्यक है। जीवन–पर्यन्त गीता का अभ्यास होगा तभी मार्ग–दर्शन मिलेगा, अन्यथा नहीं। नित्य गीता का तोता–पाठ करने से गीता का अर्थ समझा नहीं जा सकता। मृत्यु–शय्या पर पड़े–पड़े किसी के द्वारा गीता पारायण करा के सुनने से उद्धार नहीं होगा, बल्कि उसका तत्त्वज्ञान पचाने पर ही उद्धार होगा। परन्तु आज तो मृत्यु समय ही गीता पढ़ी जाती हैं और वह भी घर में किसी को पढ़ना न आये तो ब्राह्मण पारायण करता है!

शेक्सपियर (Shakespeare) का हेम्लेट पागल बन गया था। डेन्मार्क के राजपुत्र को उसके संकट से मार्ग दिखानेवाला श्रीकृष्ण जैसा कोई गुरु नहीं मिला। कोरोयलिन्स की भी यही दशा हुयी थी। अर्जुन के समक्ष आयी समस्यायें हेम्लेट की अपेक्षा अनेक गुनी दुरूह थीं, फिर भी वह पागल नहीं हुआ क्योंकि उसे श्रीकृष्ण जैसा पथ–प्रदर्शक मिल गया था। श्रीकृष्ण ने गीता के तत्त्वज्ञान द्वारा उसका मार्ग–दर्शन किया था। अर्जुन को मार्ग मिला; उसका मोह नष्ट हुआ। गीता से अर्जुन की भाँति प्रत्येक का मार्ग–दर्शन मिलता है इसीलिये गीता दिव्य है। परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि ऐसे अलौकिक ग्रंथ को पढ़कर भी बहुत से लोगों को सन्तोष नहीं होता! अर्जुन की तरह आधुनिक अर्जुन (?) के मन में अनेक शंकायें पैदा होती हैं।

आधुनिकों की शंकाएँ

श्रीकृष्ण पाँच हज़ार वर्ष पूर्व हुये थे, और आज नहीं हैं, ऐसी बात नहीं। आज भी वे हमारे मध्य विद्यमान हैं। गीता पढ़िये, दृष्टि के सम्मुख श्रीकृष्ण उपस्थित हो जायेंगे। वे आज भी जीवित हैं; इसका अनुभव करना हो तो उनका तत्त्वज्ञान पढ़िये। सहृदयतापूर्वक, स्थिर बुद्धि से '**प्रजहाति यदा कामान्**' आदि पढ़कर स्थितप्रज्ञ के वर्णन के श्लोकों का मनन करें, तब ऐसा ही लगता है कि स्वयं श्रीकृष्ण ही यह बोल रहे हों

आधुनिक अर्जुनों का कहना है कि गीता के ग्यारहवें अध्याय के अनुसार श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपने विराट् स्वरूप का दर्शन कराया। उससे भयभीत होकर अथवा विस्मित होकर अर्जुन ने श्रीकृष्ण के समक्ष अपनी दूसरी शंकायें व्यक्त नहीं कीं। श्रीकृष्ण ने यह रूप बता (परोक्षरूप से) डाँटकर कहा– 'मानता नहीं?' अन्यथा अर्जुन के मन में बहुत से सन्देह थे और उनका स्पष्टीकरण वह प्राप्त करना चाहता था। उसने श्रीकृष्ण के विराट स्वरूप दर्शन के बाद शेष आशंकायें व्यक्त न कर उन्होंने जो कुछ कहा उसे मानते हुये– '**नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धाः करिष्ये वचनं तव।**' कहा।

किसी भी ग्रन्थ के अध्ययन के समय साहित्य-शास्त्र के अनुसार सविकल्प समाधि आनी चाहिये। तादात्म्य साधे बिना ग्रन्थ पढ़ने का कोई अर्थ नहीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हनुमानजी का वर्णन पढ़ते समय अन्य सभी बातें भूलकर मन हनुमानजी की तरह छलांग मारने लगे, ऐसी एकाग्रता से ग्रन्थ पढ़ना चाहिये; तभी ग्रंथ का तात्पर्य समझा जा सकता है। ऐसी सविकल्प समाधिपूर्वक गीता न पढ़ें तो अवश्य लगेगा कि अर्जुन को शंका रही ही होगी। '**विमृश्यैतदशेषेण . . .**' कहनेवाले को शंका पूछने में बिलकुल रुकावट न थी। हमको गीता पढ़ने के पश्चात् भी शंका होती है। कि– '**अहोबत महत् पापम् . . .**' कहकर अर्जुन ने शस्त्र डाल दिये थे। उसे क्या उसका उचित उत्तर मिल गया था?

परस्पर विरोधी कर्तव्य

आधुनिक अर्जुन को श्रीकृष्ण कहते हैं— 'हे आधुनिक अर्जुन! तुझे वाद–विवाद करने का अत्यधिक शौक है। पाँच हज़ार वर्ष पश्चात् भी तेरी शंकाओं का समाधान नहीं हुआ कि तू मेरे साथ वाद--विवाद करना चाहता है?'

हम कहेंगे, "भगवान श्रीकृष्ण! ज्ञानी से प्रश्न पूछकर ज्ञान प्राप्ति की उत्कृष्ट रीति-- '**तद्विद्धि प्रणिपातेन–**' जो आपने कही है उसके अनुसार आपसे प्रश्न करता हूँ। इसमें बुरा क्या है? और फिर '**वादः प्रवदतामहं**' ऐसा आपने वाद--विवाद के सम्बन्ध में कहा है, अतः वाद–विवाद क्या बुरा है? आपसे अभी कितने ही प्रश्न पूछना चाहता हूँ। कर्तव्याकर्तव्य का प्रश्न उपस्थित होने पर क्या करना? अर्जुन के इस प्रश्न पर आपने उसे खूब छकाया; '**तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते...**' कहा; यह तो योग्य है; परन्तु अर्जुन ने आपको प्रश्न अलग ही पूछा था और आपने उस बेचारे को भिन्न ही उत्तर दिया। जब कर्तव्य--अकर्तव्य का प्रश्न हो तब कर्तव्य को ही चुनना चाहिये, ऐसा आपने गीता में कहा वह बात तो ठीक है। आपकी यह सलाह स्वीकार की। परन्तु अर्जुन का प्रश्न तो 'दो कर्तव्यों में से किस कर्तव्य को योग्य मानकर करना चाहिये' यह था। इसलिये आपने जो उत्तर दिया वह ऊपरी था। मूल प्रश्न का उत्तर तो आपने दिया ही नहीं।"

सत्य बोलना या चोरी करना--इन दो कर्तव्याकर्तव्य के मध्य चुनाव करना हो तो ऐसा कहा जा सकता है "–भाई! सत्य बोलना कर्तव्य है और चोरी अकर्तव्य। इसलिये कर्तव्य का मार्ग स्वीकार करो। परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी न थी। अर्जुन को तो दो कर्तव्यों के बीच चुनाव करना था। एक के अनुसार क्षत्रिय-- धर्मानुसार युद्धकर राज्यप्राप्ति और दूसरे के अनुसार भीष्म, द्रोण आदि पूज्य, गुरुजनों तथा अन्य सम्बन्धियों की हत्या से बचना, शस्त्र त्याग करना; तो आपने पहले ही काम करने की सलाह अर्जुन को क्यों दी? और इस कर्तव्य को करने के लिये आपने आग्रह किसलिये किया?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'**तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते ...**' के अनुसार, आपके कथनानुकूल दोनों ही कर्तव्य शास्त्रप्रणीत हैं। युद्ध करना भी और बडों, गुरुजनों के प्रति पूज्य भाव रखना भी; तो पहला कर्तव्य करने के सम्बन्ध में, क्या आपका आग्रह अनुचित नहीं कहा जायेगा? अर्जुन के दोनों कर्तव्य शास्त्रोक्त ही थे! अतः आपकी "**तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते**" की युक्ति मिथ्या है।"

श्रीकृष्ण कहते हैं- "भाई! अर्जुन ने मुझे जो प्रश्न पूछा था उसका ही मैंने उत्तर दिया है। किस कर्तव्य को करना है यह निर्णय देते समय- '**सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्**' कहा। जन्मगत स्वभाव का विचार करना पडता है। ऐसे समय जो नैसर्गिक और स्वाभाविक लगता हो, वह कर्म करना चाहिये और स्वाभाविक जन्म जात कर्म करने वाले को पाप का बन्धन नहीं होता।

"परन्तु प्रभु! अर्जुन क्षत्रिय था और युद्ध करना जैसे उसका जन्मजात स्वभाव था, तो पूज्य, बड़ों को सम्मान देना और उनके प्रति आदर भाव रखना भी स्वाभाविक था। पूज्यत्व मानने में भिन्न-भिन्न विचार थोड़े ही होते हैं? मद्यपी अपने से अधिक मद्य पीने वाले को पूज्य माने और उसका आदर करे तो यह बात भिन्न है। परन्तु सामान्यतः अपने गुरुजन सत्कर्मी हों, तभी उनका आदर भाव करने की इच्छा होती है। नैसर्गिक, जन्मजात प्रवृत्तियाँ (Instincts) चौदह हैं। उनमें से पूज्य भाव (Reverence) एक है ऐसा मेक डुगल (Mc-dougal) साहब कहते हैं। यह एक जन्मजात संस्कार है। बड़ों के प्रति आदर नैसर्गिक स्वभाव है। इसलिये उनका वध न करना यह दलील क्या तथ्य-हीन है? इसलिये भगवान! '**स्वभावजम्**' या '**सहजम्**' कर्म कर कहने से काम नहीं चलेगा।"

क्षत्रिय का स्वधर्म

श्रीकृष्ण कहेंगे, "स्वभाव के दो प्रकार हैं, मुख्य स्वभाव और गौण। कर्म और अकर्म के निर्णय में तुम अपने को बुद्धिमान मानते हो, परन्तु तुम्हें इस बात का पता है-'**धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्यात न विद्यते।**' अर्थात्, हे आधुनिक अर्जुन! धर्मयुद्ध करना अर्जुन का परम कर्तव्य था, उसका स्वाभाविक धर्म लड़ना था, शेष धर्म गौण थे -'**स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकंपितु मर्हसि**'। इसलिये अर्जुन यदि शस्त्रों को नीचे फेंककर रणांगण से लौटा होता, तो उसकी गणना कायरों में होती '**भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वांमहारथाः**' यदि वह बिना लड़े ही वापस लौटा होता, तो लोग उसकी निन्दा करते। वे कहते कि 'उसने भय से शस्त्र-त्याग किया था' और उसे अपकीर्ति मिलती। युद्धक्षेत्र से बिना लड़े लौटना क्षत्रिय को शोभा नहीं देता।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वजन हत्या का डर

आधुनिक अर्जुन कहता है, "भगवन्! आप मान-अपमान, कीर्ति-अपकीर्ति का प्रश्न उपस्थितकर धमकाऐंगे तो यह नहीं चलेगा। कर्तव्या-कर्तव्य का सही निर्णय आप कहते हैं, परन्तु दो में से चाहे किसी एक कर्तव्य को करें तो भी लोग उसमें कुछ न कुछ दोष निकालेंगे ही, क्योंकि लोगों की जबान पर लगाम थोड़े लगती है? '**सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतोह्य वचनीयता**' आपका कहना मानकर सगे भाइयों का व बड़ों का वधकर के अर्जुन राजसत्ता प्राप्त करे तो लोग उसे स्वार्थी और लोभी ही कहेंगे। आप कहेंगे कि लोकमत की कीमत कितनी? परन्तु यह तो समाज में रहने वाले को ही ज्ञात होता है। लोग भीरु-डरपोक कहें तो सहा जा सकता है, परन्तु स्वार्थी हत्यारा कहें तो कैसे सहन हो? लड़ेगा, तो उन्मत्त कहलायेगा। न लड़े तो लाचार कहलायेगा, अपमानित होगा परन्तु सज्जनों की हत्या का दोष तो नहीं लगेगा न! इसलिये मैं तो अपमानित होना ही अधिक पसन्द करूँगा।"

इस आधुनिक अर्जुन का प्रलाप सुनकर श्रीकृष्ण कहते हैं- "**मिथ्यैष व्यवसायस्ते न योत्स्य इति मन्यसे**" यह तेरा मिथ्या अभिमान है। तेरे ऐसे विचार अनार्यों के मन को शोभा देने वाले हैं, "**अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यं... क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ क्षुद्रं... हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ...**" तू फिर कायर, डरपोक बना है, इसलिये हृदय-दौर्बल्य को त्याग लड़ने के लिये खड़ा हो।

आधुनिक अर्जुन कहता है "भगवान! आप हृदय की दुर्बलता की बातकर मुझको डराते हैं; मैं कोई डरपोक या कायर नहीं, मात्र अधिक ऊँचे सिद्धान्तों के हेतु शस्त्र नीचे डालता हूँ। बड़ा स्वार्थत्याग करता हूँ। सर्वस्व का त्यागकर उच्च सिद्धान्तों के पालन करने वाले को आप दुर्बल-हृदय कैसे कह सकते हैं! क्योंकि सामर्थ्य होने पर भी निश्चित ध्येय के लिये राज्य या सम्पत्ति का त्याग करने में श्रेष्ठ--निष्ठा है, कि उसके स्वीकार में? इसलिये यह हृदय-दौर्बल्य है या श्रेष्ठ निष्ठा? युद्ध करके बडों का संहार कर राज्य प्राप्त करना कठिन है या सर्वस्व का त्याग करना? रुपये-पैसे में लिप्त रहने वाला कदाचित् इसे मेरा दौर्बल्य कहे परन्तु आपको तो प्रशंसा करनी चाहिये। क्योंकि लोगों को तो यदि किसी को पाँच रुपये देने पडें तो जी काँपने लगे। अरे! पुरोहित ब्राह्मण को दो रुपया दक्षिणा देते समय तीन बार तो पत्नि को पूछेगा जब लोग इतने स्वार्थी होते हैं तब मैं तो सर्वस्व त्याग करता हूँ '**न कांक्षे विजयं कृष्णः न च राज्यं सुखानि च...**' इत्यादि तो मैं आपको स्पष्ट बताता हूँ। यह कहना कोई सामान्य बात है? इसके लिये कितना दृढ़ हृदय चाहिए? आधुनिक अर्जुन के रूप में आगे कहूँ तो गुरुजनों और बुजुर्गों को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मार कर आर्यत्व प्राप्त हो, इसकी अपेक्षा वह प्राप्त न हो तो अच्छा है "To hell I shall go" मैं नरक में जाऊँगा (यह अपेक्षनीय है)-ऐसा जैसे (Mill) मिल कहते हैं, उससे मैं भी सहमत हूँ।

श्रीकृष्ण कहते हैं– 'हे आधुनिक अर्जुन! आंग्ल विद्याविभूषित होकर तू तो आवश्यकता से अधिक बुद्धिमान बनता जा रहा। बड़े रौबदाब में बात करता है। बड़ों के संहार की अपेक्षा तुझे अनार्य रहना पसन्द है। तेरी बुद्धि बहुत आगे चलने लगी है, परन्तु 'मैं ऐसा नहीं करूँगा' यह तेरा ऐसा अहंकार मिथ्या है। तुझे नहीं करना होगा तो भी तेरी प्रकृति तुझसे करायेगी। तुझे नहीं लड़ना होगा तो भी प्रकृति तुझे लड़ायेगी।

"यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे। मिथ्यैष व्यवसायस्ते . . ."

आधुनिक अर्जुन कहता है, "आप कहते हैं कि प्रकृति मुझे लड़ायेगी परन्तु मैं प्रकृति का निग्रह करूँगा, निरोध करूंगा। उसे दबाकर बताऊँगा कि तू मिथ्या है।"

श्रीकृष्ण कहते हैं, "तेरा यह अहंकार भी मिथ्या है। प्रकृति को तू दबा या टाल नहीं सकता। तू प्रकृति का निग्रह नहीं कर सकता।

"सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति?"

मन को दबाया जा सकता है, प्रकृति को नहीं।

आधुनिक अर्जुन कहता है, "भगवन! आप भी कमाल करते हैं! आप के मुँह में ऐसी विसंगति शोभा नहीं देती आपसे अर्जुन का प्रथम प्रश्न यही था, 'कि मेरा मन वश में नहीं तो क्या करूँ?' तब आपने ही कहा था "**अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते . . .**" और अभी फिर कहते हो, "**निग्रहः किं करिष्यति?**" आत्मा अकर्ता है"– इस प्रकार विधिनिषेध के बन्धन में डालते हैं। ऐसी परस्पर विरोधी बात आपको शोभती नहीं।

श्रीकृष्ण कहते हैं, तेरा यह तर्क भी उचित नहीं। व्यावहारिक दृष्टि से जो बन्धन होता है। वह आध्यात्मिक, पारमार्थिक दृष्टि से बंधन नहीं होता। ग्रन्थ शान्त-चित्त होकर पढ़ना चाहिये। आत्मा पारमार्थिक दृष्टि से अकर्ता है। उसे व्यावहारिक दृष्टि से बन्धन है, ऐसा मैंने कहा। "**य नं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्। मयैवैते निहता पूर्वमेव . . .**" कौरव अपने दुष्कर्मों से मरे हुये ही हैं। इसलिये अर्जुन को तो मरे हुओं को ही मारना था। मात्र निमित्त ही बनना था।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आधुनिक अर्जुन कहता है, "परन्तु मरे हुओं को मारने का पातक मैं किसलिये करूँ ? आप कहे तो जल समाधि लेने को तैयार हूँ परन्तु मरे हुओं को मारने का पातक मुझसे न होगा और आप तो कहते हैं-- "**विमृश्यैतदशेषेण . . .**"।

निष्काम कर्म

श्रीकृष्ण-- "हे आधुनिक अर्जुन ! यहीं तेरी भूल हो रही है। तू मूर्ख का मूर्ख ही रहा। इसीलिये तेरे लिये गीता नहीं कही। वह तो पाँच हजार वर्ष पूर्व के अर्जुन के लिए कही थी। गीता को पढ़कर भी तू न समझा। तू पातकी होता ही नहीं। तुझे तो निर्लेप अन्तःकरण से, कुछ भी फल की अपेक्षा रखें बिना, निरहंकार और निर्भय होकर कर्तव्यबुद्धि से कर्म करना है। इससे युद्ध में बड़ों को मारने के बावजूद तू पापी या दोषी नहीं। तुझे तो कर्तव्य बुद्धि से अहंकार का त्यागकर जनकल्याण के लिये संग्राम करना है, "**कर्मण्येवाधिकारस्ते--** "।

आधुनिक अर्जुन- "भगवान् ! क्षमा करो, आपका यह तत्त्वज्ञान आपके ही विरुद्ध है। यदि मैं फल की अपेक्षा रखे बिना लड़ूँ तो मुझे कोई पाप नहीं लगेगा उसी प्रकार बड़ों के प्रति आदरभाव को अपना कर्तव्य मानकर फल की अपेक्षा रखे बिना शस्त्रत्याग करूँ तो इसमें दोष क्या है ? बुराई क्या है ? यदि वास्तविकता यही है, तो फिर मुझे किसलिये लड़ना ? आपकी बात ठीक--ठीक मेरे मन में उतर गयी है, इसलिये मैं आपको ऐसा कहता हूँ। कर्तव्य के लिए जिस प्रकार लड़ने में पातक नहीं, उसी प्रकार कर्तव्य के निमित्त न लड़ने में भी पातक नहीं, तो फिर लड़ने का ही निश्चय क्यों करूँ ? किसलिये अपना निश्चय छोड़ूँ ?"

अर्जुन ने जो बहुतसी शंकायें प्रदर्शित कीं, जो प्रश्न पूछे, उनमें यह प्रश्न (अन्तिम) महत्त्वपूर्ण लगता है। सभी प्रश्नों का यह नवनीत है; आधुनिक अर्जुन कहेगा। अर्जुन अवश्य कह सकता है '**न यत्सोत्स्ये**' ऐसा जो मैंने कहा है वह योग्य ही है, परन्तु अर्जुन तो ऐसा न कहकर अन्त में '**नष्टो मोहः**' कहता है और धनुष हाथ में ले लेता है; इसका कारण विश्वरूप दर्शन ही होना चाहिए। क्योंकि अर्जुन, आधुनिक अर्जुन से कम बुद्धिवाला न था। इस वार्तालाप से हम जान सकते हैं 'कि अर्जुन ने लड़ने का निश्चय श्रीकृष्ण के विराट स्वरूप से प्रभावित होकर ही किया था। बाकी उसके सन्देह का पूर्णतः समाधान हुआ नहीं था' ऐसा आधुनिक अर्जुन मानता है।

गीता कोई पढने-सुनने या मात्र रटने की वस्तु नहीं है, गीता के विचार योग्य हैं। पढे, सुने और मनन करें तभी गीता पढ़ना, सुनना सार्थक है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसका मनन करेंगे तो इन सभी प्रश्नों के उत्तर स्वयं ही उसमें मिलेंगे। दूसरी बातें आवश्यक हैं, परन्तु उसका मनन मुख्य है। महत्व का है। अर्जुन अति बुद्धिशाली था उसने एकाग्रचित्त होकर गीता सुनी थी और उसे समझकर बुद्धि में पचाया था, समझा था इसीलिए धर्म्य कर्तव्य समझकर युद्ध किया।

व्यक्ति धर्म और समष्टि धर्म

धर्म की भी दो कक्षायें हैं। एक व्यक्ति धर्म और दूसरा समष्टि धर्म। व्यक्तिधर्म – व्यक्ति का स्वयं पालन करने का धर्म और समष्टि – धर्म याने समाज के प्रति का धर्म। यदि आप सचमुच धर्म का पालन करना चाहते हैं तो आपको दोनों धर्मों का पालन करना चाहिए। दो में से एक का पालन कर ऐसा दावा नहीं कर सकते कि आप धर्म का पालन करते हैं। वह भक्त योग्य नहीं कहा जायेगा जो व्यक्तिधर्म का पालन करते हुये समष्टिधर्म को हानि पहुँचाये। व्यक्ति का जीवन समष्टि जीवन का एक अंग है; एक सरिता–प्रवाह है और दूसरा अनन्तता का महासागर। व्यक्तिजीवन की सरिता समष्टि जीवन के महासागर में मिले, तभी उसे सच्चा जीवन कहा जा सकता है। यदि उस प्रवाह को अलग कर दिया जाय तो अल्प समय में ही उसका जल सूख जाय और वह किसीके उपयोग में न आये।

जगत की, धार्मिक दृष्टि से विवेचना करेंगे तो ज्ञात होगा कि जब-जब समष्टिधर्म का उदय हुआ और व्यक्तिधर्म की अवगणना की गयी, तब लोग उपभोगों के अधीन हो, विकारवश पशु बन गये और जब जब मात्र व्यक्तिधर्म का उदय हुआ, तब भी समाज गर्त में गिरा। दोनों ही धर्मों का जब समुचित रीति से पालन हुआ तभी मानव सच्चा मानव बना है। इसी-लिये गीता में कहा है मात्र व्यक्तिधर्म के पालन से काम नहीं चलता; समष्टिधर्म को भी मानना पड़ेगा और पालना पड़ेगा। वर्णाश्रम व्यवस्था इसी हेतु से की गयी थी। **"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।"**

रूस के आज के 'वाद' (Ism) का मूल भी यहीं है। व्यक्ति और समष्टि का योग्य समन्वय नहीं हो सका इसीलिये–वाद (Ism) घुसा। तत्कालीन धार्मिक वृत्तिवाले लोग वाद (Ism) का संकलन नहीं कर सके। आज भी विश्व के राजनीतिज्ञ रूस के वाद के भ्रान्त निर्णय से दिङ्मूढ़ बने हुये हैं और बेचारी जनता सहन कर रही है; बिगड़ रही है। बड़े लोग भूल करते हैं, तो उनकी भूल भी बड़ी होती है और लोगों को दीर्घकाल तक उस भूल का फल भोगना पड़ता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्जुनद्वारा युद्ध करने का निर्णय अति उच्च बौद्धिक कक्षा पर पहुँच कर लिया गया था। वह चाहता, तो करोड़ों बहाने–उपक्रम कर सकता था क्योंकि वह अति बुद्धिमान था। युद्ध न करना व्यक्ति धर्म का पालन हुआ। अर्जुन बड़ों की हत्या नहीं करना चाहता था, यह उसका व्यक्तिगत धर्म था। जबकि युद्ध करने में व्यक्ति और समष्टि धर्म--दोनों का पालन था। क्षत्रिय–पुत्र युद्ध से नहीं डरता; इस प्रकार अर्जुन का लड़ना क्षत्रिय का युद्ध करना--यह व्यक्ति–धर्म है। फिर उस समय तो धर्म युद्ध था। अधर्म का नाशकर धर्म की स्थापना करने के लिये अर्थात् समाज के कल्याण के लिए युद्ध करना था। इस दृष्टि से देखने पर **'सर्वभूतहिते रताः'** प्राणिमात्र के हित में लगे हुये के लिये भी **'लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्—'** लोकसंग्रह की दृष्टि से युद्ध करना समष्टिधर्म हुआ। इन दोनों धर्मों को यथार्थ रूप में समझकर उनका पालन करने के लिये ही अर्जुन ने युद्ध करने का निश्चय किया था। अर्जुन के समक्ष दो कर्तव्य थे एक के पालन से व्यक्तिधर्म का पालन और दूसरे धर्म के अनुसरण से दोनों धर्मों का पालन होता था। दोनों धर्मों का योग्य रीति से वर्तन किया जाय तभी धर्म का पूर्णतः पालन हुआ समझा जाता है। इस प्रकार से दोनों धर्मों का पालन करने के लिये ही अर्जुन ने अच्छी तरह बुद्धिपूर्वक विचार करके युद्ध करने का निश्चय किया। उसके युद्ध–निर्णय में उसकी अपरिपक्व बुद्धि नहीं थी या श्रीकृष्ण द्वारा विश्वरूप–प्रदर्शन द्वारा धमकी न थी, वरन् अर्जुन ने सम्पूर्णतया सभी पहलुओं से धर्म और कर्तव्याकर्तव्य की व्याकुलता छोड़कर विना किसी भावना के अधीन हुये, बुद्धिपूर्वक यह निर्णय लिया था। अतः हमारी यह शंका कि श्रीकृष्ण के भय से अर्जुन युद्ध के लिए तत्पर हुआ पूर्णतया निराधार है।

निःशंक अर्जुन की विनंती

मात्र दस अध्यायों में श्रीकृष्ण अर्जुन की शंकाओं का समाधान न कर सके अतः ग्यारहवें अध्याय में विश्वस्वरूप दिखाकर अर्जुन को डराया ऐसे तर्कों को करनेवाले गीता के दसवें अध्याय को पढ़ेंगे तो उन्हें अपने तर्कों का खोखलापन ज्ञात हो जायेगा। दसवें अध्याय में श्रीकृष्ण कहते हैं- **'वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः**। अतः सर्वस्व मैं ही हूँ ऐसा कहने वाले श्रीकृष्ण का विराट स्वरूप कैसा होगा ऐसी जिज्ञासा पैदा होते ही अर्जुन ने श्रीकृष्ण से उस रूप के दर्शन कराने की प्रार्थना की थी, और अर्जुन की उसे देखने की तीव्र इच्छा होने पर ही श्रीकृष्ण ने बताया था। इसलिये अर्जुन के लिए डरने या श्रीकृष्ण के लिए डराने का कोई प्रश्न ही उपस्थित नहीं था। युक्ति से और बुद्धि से जो माँगा था वह मिला, इसलिये प्रभु पर आक्षेप करना अनुचित है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग्यारहवाँ अध्याय पवित्र है। दसवें अध्याय को पढ़ने के पश्चात व्यक्ति को स्वाभाविक रूप से ग्यारहवें का विचार आता है। जिज्ञासा से निर्माण हुये विराट-स्वरूप के दर्शन की आवश्यकता है और अर्जुन तब सचमुच्च निःशंक हो गया था। **यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम-** आपनी सभी शंकाओं के समाधान के पश्चात ही अर्जुन ने लड़ने का निर्णय लिया था। उसने जो किया वह योग्य ही था।

'गीता का हेतु'

गीता का हेतु अर्जुन का मोह-नाश था और उसके द्वारा युद्ध के निर्णय पर यह हेतु सिद्ध हो गया था। गीता का हेतु पूरा होगा; गीता फिर पढ़ो और विचार करो कि गीता का हेतु पूरा हो गया। गीता पराङ्मुख हुये मानव को योग्य मार्ग दर्शन के लिये रची गयी है ऐसा गीता के प्रचारकों और प्रवक्ताओं का दावा है। आधुनिक अर्जुनों के भ्रम--निवारण के लिये हम इस विषय पर पुनर्विचार करें।

दो प्रमुख शंकायें

गीता के प्रथम अध्याय के अनुसार अर्जुन की मुख्यतः दो शंकायें थीं एक कि सभी का वध करके राज्य-प्राप्त करना महापाप कहलायेगा और ऐसा करूँगा तो अपराधी बनूँगा अतः अर्जुन कहता है **'न कांक्षे विजयं कृष्ण ...'** अर्थात् अर्जुन मानता है कि बांधवों का संहार करना महापातक है, इसीलिये वह ऐसा करने से डरता है। जो कर्तव्य करना है, वह पाप-कृत्य नहीं लेकिन उसे भय है पाप का और अर्जुन के मन में घर कर गये इस आत्मिक भय को निकाल कर श्रीकृष्ण अर्जुन से बोले--'अरे भले मानस! इस जगत में कौन किसका भाई और कौन किसका मित्र है? मृत्यु क्या और जीवन क्या? आज जो भाई, पिता या मित्र है, वही कल शत्रु बन जायेगा। **'यथाकाष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ'** तो फिर पाप क्या और पुण्य क्या?' यह बात समझाकर तत्त्वज्ञान द्वारा श्रीकृष्ण ने अर्जुन के मन से आत्मिक पाप का भय निकाल डाला। सम्बन्धियों का सच्चा स्वरूप बताकर उसे निर्भय बनाया।

समाज के अधःपतन का डर

अर्जुन को दूसरी शंका थी, दूसरा भय था, कि यदि मैं इतने सारे लोगों को मार डालूँगा तो, समाज पर महान विपत्ति आ पड़ेगी। युद्धस्थल में मृत लाखों सैनिकों के कुल की स्त्रियाँ निराश्रित बन जायेंगी और उन्मार्ग पर चली जायेंगी। ऐसा होने पर समाज नारकीय बन जायेगा-

"अधर्माभिभवात् कृष्ण! प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय! जायते वर्णसंकरः॥"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'हे वृष्णिकुलोत्पन्न कृष्ण! अधर्मपूर्वक कुल का पराभव करने से कुल की स्त्रियाँ दूषित होती हैं और स्त्रियों के दूषित होने से वर्णसंकर (प्रजा) उत्पन्न होती है।'

पहला अध्याय पढ़ेंगे तो अर्जुन के सामने मुख्य प्रश्न यही ज्ञात होगा। उसे भय था कि 'युद्ध के फलस्वरूप अधर्म निर्माण होगा, कुल की स्त्रियाँ पतित होंगी, वर्णसंकरता आयेगी, समाज का अधःपतन होगा। समाज को ऐसा नरक बनाऊँ या नहीं? लड़ूँ या नहीं?' उसका यह महत्त्वपूर्ण भय था। अर्जुन ने इस प्रश्न पर बहुत भार दिया है। इसे बहुत स्पष्ट रूप में वर्णन किया है। इससे उसकी दूरदर्शिता ज्ञात होती है। एक तो चाचा, मामा, गुरुजन, बांधव, सभी की हत्या कर पातक बटोरना और दूसरा युद्ध में मरनेवाले लाखों व्यक्तियों की युवा स्त्रियाँ विधवा होंगी और सिर–छत्र (पति) न होने के कारण अपने चरित्र की रक्षा नहीं कर सकेंगी। विधवा होने के बाद यदि वे स्त्रियाँ कोई अविचारी कृत्य करें, तो उस पाप का उत्तरदायी अर्जुन ही गिना जायेगा। '**कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुल धर्माः सनातनाः**–' कुलक्षय से परम्परा–प्राप्त कुलधर्म नष्ट हो जायेंगे।

चाचा, मामा आदि के साथ लड़ना है इसका पता तो अर्जुन को था ही। अतः भावि पातक से भी वह विज्ञ था, परन्तु जब लड़ने आया और '**सेनयोरुभयोर्मध्ये. . यावदेतान्निरीक्षे...**' दोनों सेनाओं के बीच खड़े होकर ठीक से निरीक्षण किया, तब जवान लड़कों को देखनेपर उसे लगा कि युद्ध में ऐसे असंख्य सैनिकों की मृत्यु के पश्चात् उनकी अनन्त स्त्रियाँ विधवा होंगी, समाजक्रम अस्त–व्यस्त होगा, दुराचार बढ़ेंगे, शील का मूल्य नहीं रहेगा और समाज की इस नारकीय दुर्दशा को लानेवाले अर्जुन को ही पाप लगेगा ऐसा उसके मन में भय था। इसलिये हम आधुनिक अर्जुन कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन का यह भय तो निकाला ही नहीं तो फिर गीता को पूर्ण कैसे मानें? श्रीकृष्ण ने गीता को पूर्ण किया फिर भी वह अधूरी है, अपूर्ण है।

नीतिमत्ता पर युद्धों का असर

लड़ाई के दुष्परिणामों की श्रीकृष्ण को खबर नहीं थी क्या? युद्ध के अन्त में समाज का कैसा नैतिक अधःपतन होता है इसका ज्ञान क्या श्रीकृष्ण के जैसे उत्कृष्ट राजनीतिज्ञ को भी न रहा होगा? हमने इस युग में भी लड़ाई के दुष्परिणामों का अनुभव किया है। दो विश्वयुद्धों ने मानव को कैसा बना दिया, यह हम प्रत्यक्ष देखते हैं। एक युद्ध हो तो समाज में से ५० टक्के नीति समाप्त हो जाती है और दो युद्ध हों तो १०० टक्के। यदि दुर्भाग्य से तीसरा युद्ध फट पड़े तो उसके अन्त में मानव पशु ही बन जायेगा; पशु की अपेक्षा भी निम्न कोटि का कृमि–कीट जैसा होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रत्येक युद्ध के अन्त में सामान्यतः मानव का नैतिक अधःपतन होता है। हज़ारों लाखों स्त्रियों के वैधव्य से व्यभिचार बढ़ता है। परिणाम-स्वरूप समाज के नरकरूप बन जाने का भय होता है। अर्जुन को भी यही भय था। इसीलिये वह युद्ध करने के लिये सहज तत्पर न था। स्त्रियाँ दूषित होंगी, वर्णसंकर होंगे आदि अर्जुन की बातें कदाचित हमें न रुचें, परन्तु सामाजिक पतन किसको अच्छा लगेगा? क्या श्रीकृष्ण इससे अनभिज्ञ थे? नरकासुर को मारकर हजारों स्त्रियों का उद्धार करनेवाले श्रीकृष्ण को इसका विचार नहीं था, ऐसा यदि मानें, तो ऐसा कहा जायेगा कि हम श्रीकृष्ण को समझ ही नहीं पाये। भगवान श्रीकृष्ण तो महान मानवतावादी थे। उनकी दृष्टि के समक्ष यह विचार अवश्य रहा होगा अन्यथा गीता अधूरी कहलायेगी।

आधुनिक अर्जुनों का तो मानना है कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन के सामान्य आत्मिक भय का ही निर्मूलन किया था, सामाजिक भय को वे दूर नहीं कर सके। उन्होंने अर्जुन के दूसरे भय का समाधान नहीं दिया। इस प्रश्न को तो उन्होंने छुवा भी नहीं।

पहला अध्याय तो गीता का आधार ही है। जो उसे ही ठीक-ठीक न समझ सके तो उसके द्वारा गीता सात जन्मों में भी नहीं समझी जा सकती। इसलिये उसे यदि निकाला जाय तो गीता समझ में ही नहीं आयेगी। यह तो गीता को ही निकाल ने जैसी बात होगी।

अर्जुन का दूसरा प्रश्न उचित ही था। वृद्धों का भले ही जो चाहे हो, परन्तु युवान जीवित रहने चाहियें, इनपर भावी पीढ़ी का आधार है इसलिए ऐसे युवानों का वध करके समाज को नरकतुल्य बनाने की इच्छा अर्जुन की न थी। आज भी जब किसीका देहावसान होता है तो श्मशान जाते हुये वृद्ध 'राम बोलो भाई राम' कहते हुये आगे चलते हैं और युवान पीछे; परन्तु श्मशान से वापस आते समय युवान आगे और वृद्ध पीछे चलते हैं। विनोद में इसका अर्थ यह है कि यदि बूढ़े श्मशान में छूट भी जायँ तो अधिक शोक करने की बात नहीं। यह एक प्राचीन रूढि है। अर्जुन भी युवानों का वध करना न चाहे यह स्वाभाविक ही था। युवकों को बहुत संभालना होता है। उन्हें ऐसे ही नहीं छोड़ा जा सकता।

नये रक्त की आनंदमय उमंगों वाले युवानों को मारने से सामाजिक नरक होगा। अतः अर्जुन को भय था समाज के नरक बन जाने का। फिर भी वह युद्ध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करने के लिये खड़ा हो गया, इसका अर्थ यह हुआ कि उसकी शंका का समाधान हो गया था। अर्जुन के इस प्रश्न का उत्तर यदि गीता में न हो तो गीता को परीक्षा में पचास प्रतिशत अंक ही मिले, विशेष-सम्मान (Distinction) न मिले; पास भले ही हो जायेगी। इसी प्रकार कृष्ण को भी ५० टका अंक मिलेंगे।

यह प्रश्न उपेक्षणीय नहीं। सामाजिक भय क्या उपेक्षणीय है ? अर्जुन ने भी इसी प्रश्न पर अधिक भार डाला था। गीता ने इस प्रश्न का उत्तर अवश्य दिया है। 'गीता ने एक प्रश्न का उत्तर दिया और एक का नहीं' ऐसा कहकर हम गीता का सिंहासन डगमगा ने का प्रयत्न करते हैं परन्तु यह रावण जैसी बात है। तनिक शक्ति आयी कि शिवजी को हिलाने गया था। ऐसा प्रयास करनेवाले भोगवादी और पशुतावादी हैं। वे श्रीकृष्ण का नाम न लें, यही अच्छा है। हम भी उस सिंहासन को हिलाने उठे हैं, परन्तु रावण की तरह तो नहीं, क्योंकि हम राम, कृष्ण के उपासक हैं। रामकृष्ण के उपासक भोगवादी नहीं हो सकते।

गीता को अपूर्ण रखने के श्रीकृष्ण, वेदव्यास तथा अर्जुन के ऊपर किये जानेवाले आक्षेपों का आगे विचार करेंगे सभी पर हमारा आरोप है, क्योंकि व्यासजी ने महाभारत में लिखा; श्रीकृष्ण ने कहा; और अर्जुन ने एकदम कह दिया– '**नष्टो मोहः**'। हमको महापुरुषों के साथ संघर्ष करना है, इसलिये एक एक कदम विचार पूर्वक, फूँक फूँक कर रखेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अठारहवाँ प्रकरण

आधुनिक अर्जुनों के प्रहार (२)

समाज के पतन की भीति

गीता के प्रथम प्रकरण में ही अर्जुन ने युद्ध के फलितार्थों का भय व्यक्त किया है। **'प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः -'** आदि अर्जुन के उद्गार प्रभावपूर्ण हैं। अंन्त में **नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा।** कहा है।

अर्जुन को समाज के नारकीय बनने तथा पाप लगने का भय था, जिसका निवारण आवश्यक ही था। उसमें से पाप का भय--आत्मिक भय तो तत्त्वज्ञान कहने पर दूर हो गया किन्तु सामाजिक नरक के भय का क्या हुआ? गीता में इसका उत्तर मिला है या नहीं? यदि न मिला हो तो **'नष्टो मोहः'** कहने वाले की बुद्धि पर शंका निर्माण होती है और प्रभु पर भी आक्षेप आता है परन्तु श्रीकृष्ण की बुद्धि आधुनिक अर्जुनों की अपेक्षा अवश्य कुछ विशिष्ट थी। उन्हों ने अर्जुन का यह भय भी निकाल दिया था।

यदि गीता का यथोचित अध्ययन करें तो उससे इस सन्देह का भी समाधान मिल जाता है। अर्जुन कोई सामान्यबुद्धि का व्यक्ति नहीं था और निर्बुद्ध तो था ही नहीं, सुबुद्ध था। इस पर हमारी अपेक्षा भी उसकी बुद्धि अनेक गुनी तीव्र और प्रखर थी। विद्यार्थिकाल में भी वह सदा प्रथम श्रेणी का रहा था। द्रोण के आश्रम में उसकी बुद्धिप्रतिभा के वर्णन को देखने से ज्ञात हो जायेगा। उसे कृष्ण से आपनी शंकाओं का समाधान मिला, इसीलिये उसने **'नष्टो मोहः'** कहा। अन्यथा वह मूर्ख न था कि पूर्ण रूप से समझे बिना किसी बात को मान ले।

अर्जुन का आत्मिक भय-पापकी भीति निर्मूल हुयी थी, उसका योग्य उत्तर गीता में है, यह हमें स्वीकार है। परन्तु सामाजिक अधःपतन के भय का उत्तर उसमें नहीं, ऐसा हम कहते हैं। वास्तव में तो आत्मिक भय के पेट में ही सामाजिक भय है। जो इस बात को नहीं समझ सकता वह ऐसा कहने जैसा होगा कि मेरी जेब में सौ रुपये हैं, परन्तु पचास रुपये हैं या नहीं, इसका मुझे पता नहीं। संस्कृत में इसे **'शते पञ्चाशत्'** न्याय कहते हैं। अर्थात् सौ रुपये में पचास रुपये भी आगये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब तक का जगत का विकसित जीवन–क्रम जड़ और चतने से ही है। जगत विराट है; श्रीकृष्ण ने चेतन का महान से महान पर्वत खड़ा किया, अपने विराट स्वरूप में। उसमें अर्जुन का अस्तित्व कहाँ होगा ? अर्जुन की बुद्धि में उसका स्पष्ट विचार देकर विश्व की व्यवस्था बताते हुये श्रीकृष्ण ने उसे कहा इस विराट स्वरूप में तेरा अस्तित्व कहाँ है यह देखले। इस विराट तंत्र में तू तो मात्र एक छोटासा पुर्जा (Screw) है। तू किसी दूसरे पुर्जे को नीचे गिराये या न गिराये, यह विचार छोड़। अतः 'यह मैं करता हूँ' या 'यह मैंने किया' का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने अहंभावरहित मनःस्थिति करके ज्ञान का शिखर बताया उसी प्रकार अर्जुन को भक्ति–योग का भी शिखर बताकर समझाया कि ईश शक्ति के हाथ में, विराट व्यवस्था में मानव तो मात्र खिलौना है। इसीलिये वह जिस प्रकार नचाये उसी प्रकार नाचना है; यह बात अर्जुन के मन में ठीक ठीक उतर गयी थी। उसने हमारी तरह दोष निकालने के लिए गीता नहीं सुनी थी, बल्कि एकाग्रचित्त से उसने गीता सुनकर सन्देह दूर किये।

धर्माधर्म का निर्णय

ज्ञान और भक्ति की परमोच्च श्रेणी को देखकर अर्जुन को दीपक की तरह स्पष्ट दिखायी दिया कि सामाजिक नरक की जो बात मैं करता हूँ वह बिल्कुल निरर्थक है। विराट–व्यवस्था में धर्माधर्म का निर्णय व्यक्ति की सद्–असद् विवेक बुद्धि पर अवलम्बित नहीं। वहाँ धर्म का प्रमाण कुछ भिन्न ही है और जो वहाँ है वही सत्य है। अपनी विवेकबुद्धि को प्रमाण मानना अधर्म है। गीता श्रवण कर, उसका मंथन कर अर्जुन ने यही नवनीत निकाला था। इसीलिये वह '**करिष्ये वचन तव**' कहकर चुप हो गया।

कर्तव्य सब से महान् धर्म है। कर्तव्य का पालन मात्र एक व्यक्ति का विचार नहीं होता। 'क्या करूँ' 'जिससे मुझे पाप न लगे' ऐसा विचार करना व्यक्तिगत बात हुयी जब कि 'धर्म मुझे क्या करने को कहता है ?' यह भिन्न ही बात है। यहाँ अपनी बुद्धि को लड़ाकर, अपना विचार करके ही पग उठाना अधर्म है। 'मुझे क्या लगता है' यह शास्त्रीय प्रमाण नहीं है। किसी भी शास्त्र में इसे प्रमाणभूत नहीं कहते। व्यक्ति के मत को शास्त्र में नहीं गिना जाता। मैं जो करूँगा उसका समाज पर, जगत पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह धर्म के प्रमाण से विचारना चाहिये। ऐसे दीर्घ दृष्टि से विचार करते समय धर्म का प्रमाण आवश्यक है।

व्यक्ति का मत और शास्त्र का मत

दूरगामी परिणामों को देखकर कार्य करने की बौद्धिक शक्ति धर्म के अवलम्बन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बिना सम्भव नहीं। अनेक बार ऐसा होता है कि आज हमें बुद्धि से एक कार्य योग्य लगता है और उसे करते हैं, परन्तु पचास वर्ष पश्चात् उस कार्य को करने में पश्चात्ताप होता है। कार्य करते समय पता नहीं चलता कि पचास वर्ष बाद इसका क्या प्रभाव पड़ेगा। इसलिये 'मुझे इस समय जो ठीक लगा उसे किया' ऐसा नहीं चलता। अतः जो हम करें उसका दूरगामी प्रभाव क्या होगा, इसका विचार भी करना पड़ेगा। जो भूलें हमारे नेताओं ने की हैं उनका भस्मासुर (दुष्परिणाम) आज हम देखते हैं। इसलिये व्यक्ति का मत धर्म में प्रमाणभूत नहीं होना चाहिये।

शास्त्र समाज और समग्र मानव-जाति का विचार करते हैं, उनमें हमारा मत नहीं चलता, क्योंकि उनमें व्यक्तिवाद की कोई कीमत नहीं है। यदि सभी कहेंगे कि 'अग्नि शीतल होती है' तो मान्य होगा? **Rice is boiled in a paper vessel** चावल कागज के बर्तन में पकाये हैं- यह बात मानी नहीं जा सकती, बिल्कुल असम्भव लगती है। किसीसे ऐसा कहें तो मूर्ख कहे जायेंगे, फिर भी विज्ञान इसे सम्भव सिद्ध कर चुका है। अब यदि हम कहें कि यह बात हमें मान्य नहीं, अतः गलत है तो यह हमारा अज्ञान ही कहलायेगा। हम विज्ञान को समझ नहीं सके, इसलिये ही इस बात को मानने से इन्कार करते हैं। परन्तु इस प्रकार हमारे न मानने से वास्तविकता क्या टल सकती है? इसीलिये निर्णय लेना व्यक्ति पर नहीं शास्त्र पर छोड़ा गया है। व्यक्ति को असम्भव लगनेवाली, असत्य लगनेवाली बात शास्त्र की दृष्टि से सम्भव और योग्य हो सकती है।

समष्टि के हित का विचार

संक्षेप में 'मुझे जो लगता है' की अपेक्षा समाज पर मेरे कार्य का क्या प्रभाव होगा? क्या परिणाम होगा? यह देखकर काम करना होता है। इसीलिये धर्म के हाथ में निर्णय रखा गया है। इसीलिये श्रीकृष्ण ने अर्जुन को धर्म का विचारकर निर्णय लेने की सम्मति दी थी। निर्णय लेने की उसे छूट थी परन्तु अपनी बुद्धि पर ही विश्वास रखकर निर्णय लेने में भूल होना बहुत सम्भव रहता है। अतः व्यक्ति को विचार करना चाहिये। सद्-असद् बुद्धि को पूछें, परन्तु कार्य करते समय धर्म को प्रमाणभूत मानकर निर्णय लें।

किसीका दुःख देखकर दुःख हो यह स्वाभाविक बात है। किसी नवयौवना विधवा को देखकर आत्मा चीख उठती है; शास्त्रकारों द्वारा विधवा के पुनर्विवाह पर प्रतिबन्ध उस समय खटकता है, परन्तु शास्त्रीय दृष्टि से दूरगामी परिणामों का विचारकर शास्त्रकारों को नियम बनाने होते हैं। तब अर्जुन के सामने तो लाखों विधवाओं का प्रश्न था। युद्ध के अन्त में लाखों स्त्रियाँ विधवा बनेंगी, ऐसा उसे भय था, परन्तु यहीं उसे धर्म का विचारकर निर्णय लेना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

था। इसके लिये-समाज के कल्याणार्थ अपने जीवन का उत्सर्ग करने के लिए मुझे तैयार रहना पड़ेगा-ऐसा उसे ज्ञात था।

धर्म की मर्यादा स्वीकार किये बिना छुटकारा ही नहीं। अर्जुन को क्या अच्छा लगता है यह भिन्न बात है। उसे रुचना न रुचना धर्म नहीं। अर्जुन चाहे कितना ही बड़ा हो, समाज के लिये व्यक्ति का होम करना ही पड़ता है। नीति-शास्त्र व्यक्ति का दृष्टि में रखकर निश्चित नहीं होता।

मैक्डुगल साहब ने (Mcdougall) अपने ग्रंथ 'Ethics-A Modern World problem' में उत्तम रीति से इस प्रश्न का विवेचन किया है और अंत में वे इस निर्णय पर आये हैं कि धर्म के सम्बन्ध में बात व्यक्ति के हाथ में न जाने दो।" जबकि पाश्चात्य सँस्कृति में व्यक्ति को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। हमारी सँस्कृति में ऐसा नहीं। चैस्टर्टन (Chestertan) भी कहता है जिस सँस्कृति में व्यक्ति को प्राधान्य है, अभिरुचियों का विशेष विचार होता है, वहाँ समाज का पतन निश्चित है।

गीता-पान करने के पश्चात् अर्जुन को भी इस बात का भान हुआ। व्यक्ति की दृष्टि से विचार नहीं किया जा सकता यह बात समुचित रूप से उसे समझायी गयी थी। वह समझ गया कि मेरी बुद्धि, कर्तव्य और निर्णय सभी धर्म के आभारी हैं। स्वधर्म, कर्तव्य और निर्णय आदि किसी दूसरी अतीन्द्रिय शक्ति के अधीन हैं इसलिये मुझे कुछ बोलना ही नहीं चाहिये। निर्णय वही ले सकते हैं जिन्होंने जड शास्त्र, चेतन शास्त्र, समाज-शास्त्र, मनोविज्ञान, जीवशास्त्र, इन्द्रियविज्ञान शास्त्र और इतिहास आदि का गहन अध्ययन किया हो। पूर्व से चले आने वाले किसी निर्णय को निरस्त करना हो अथवा उसमें परिवर्तन करना हो, तब भी इन शास्त्रों का अनुमोदन चाहिये। आज तो सभी अपने को जैसा ठीक लगे वैसा ही कहते हैं।

आजकल सभी अपने को समाजशास्त्र के (Sociology) अभ्यासी के रूप में प्रदर्शित करते हैं। घर-घर में समाजशास्त्री पैदा हो गये हैं और मानवता-विरोधी,' 'समाज-विरोधी' ऐसा बकवास करते रहते हैं। उनमें से अधिकांश की योग्यता तो इतनी ही होती है कि उन्हें मैट्रिक का फार्म भी नहीं मिल पाया।

मुझे क्या अच्छा लगता है, इसका विचारकर निर्णय नहीं लिया जाता बल्कि धर्म क्या कहता है। इसका विचारकर निर्णय लिया जा सकता है; यह बात अर्जुन के मन में ठीक-ठीक उतर गयी थी। इसलिये वह अगला प्रश्न न पूछकर '**नष्टो मोहः**' कहकर खड़ा हो गया था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दो अनिष्टों में से पसन्द

श्रीकृष्ण जैसा पराक्रमी, मानवतावादी ढूँढ़े भी नहीं मिलेगा। युद्ध के गम्भीर परिणामों का उनको ज्ञान था। वे स्वयं भी जीवन में कई लड़ाइयाँ लड़े थे, फिर भी उन्होंने अर्जुन को कायरता छोड़कर युद्ध करने का आदेश दिया था। इसीलिये बहुत से लोग कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने युद्ध के अन्तिम परिणामों का स्वयं अनुभव होने पर भी अर्जुन को युद्ध करने के लिए उकसाकर बुरा किया। ऐसा माननेवाले गीता के रहस्य को तनिक भी नहीं समझे। अन्यायी को अपनी कृति के लिये सजा मिलनी ही चाहिए। ऐसा न हो तो वह ठीक नहीं रहता। जगत का व्यवहार ठीक चले इसके लिये भय की आवश्यकता है। विशेषकर 'दण्ड का भय' और 'धर्म का भय' अति आवश्यक है। मनुस्मृति भी यही कहती है। दण्ड और धर्म का भय निकाल फेंकेंगे तो घर-घर में कलह का साम्राज्य छा जायेगा। एक भी घर सुखी नहीं रहेगा, प्रत्येक में मात्र उपद्रव दृष्टिगोचर होंगे।

राजा यदि अनीतिमान हो तो वह भोगवाद के कुछ सँस्कारों का निर्माण करेगा जोकि सात-सात पीढ़ियों तक प्रविष्ट होकर समाज का विनाश कर देंगे। इसीलिये यदि भावी पीढ़ी को कुसँस्कारों की शिकार होकर नाश होने से बचाना है तो ऐसे कुसंस्कारों को निर्माण करनेवाले राजा और उसके अनुयायियों सहित समस्त दुर्जनों का विनाश करना ही चाहिये। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय है? इसलिये अर्जुन को युद्ध के परिणामों के फल से समाज में अनीति फैलने का जो भय था, वह दुष्टों के द्वारा फैलाये जाने वाले कुसँस्कारों की तुलना में नहींवत् था। इसीलिये श्रीकृष्ण ने समाज में अनीति के उत्पन्न होने का वृथा भय अर्जुन के मन से निकाला और भावी पीढ़ी को उबारने के लिये उसे युद्ध के लिये तत्पर किया।

मानवजाति के कल्याण का विचार

अणु बम (Atom Bomb) का उदाहरण लें। अणुयुद्ध याने आसुरी युद्ध। उसका सर्वप्रथम उपयोग जब हुआ तब लगा था कि मानवता नष्ट हो गई। इसका अन्वेषण करनेवाले कितने क्रूर होंगे। दुरुपयोग करनेवाले राक्षसों को तो कहना ही क्या? परन्तु वे अन्वेषक जब बम्बई आये थे और उनकी शोध के उपयोग के प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर हुये तो उस समय उनकी बात सुनने जैसी है। उनके हाथ काँपते थे। हस्ताक्षर करने से तीन दिन पहले तक नींद नहीं आयी थी। मन में घबराट रहती थी। उन्हें लगा की जब तक अणु बम का उपयोग नहीं किया जाय, युद्ध का अन्त होगा नहीं; दीर्घकाल तक भीषण संग्राम चलता रहेगा। अतः दीर्घकालीन युद्ध का अन्त करने के लिये उन्होंने प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर किये। फलस्वरूप हज़ारों-लाखों निर्दोष मानवों का एक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्षण में विनाश हुआ। राष्ट्र के स्वार्थ के लिये वह आसुरी कदम था। उस कृत्य का मानवता के साथ किसी प्रकार का भी साम्य नहीं मिलता, परन्तु उसका स्थूल परिणाम अवश्य अच्छा निकला। कितनी लड़ाइयाँ रुकीं ? मैं अणुबम के पक्ष के समर्थन में यह सब नहीं कहता।

यह व्यक्ति अथवा राष्ट्र-हित की लडाई थी, जबकि कुरुक्षेत्र का युद्ध नैतिक अधःपतन को रोकने के लिये हुआ था। वहाँ युद्ध क्षत्रिय के रूप में अर्जुन का कर्तव्य, धर्म्य-कर्तव्य था, स्वकर्तव्य था। उसके अक्तिरिक्त दूसरी बातें करना भीरुपन है, कर्तव्य पराङ्मुखता की बातें हैं। इसलिये गीता ने अर्जुन को अपने व्यक्तिगत भावों का विचार न कर मानव-जाति के कल्याण के लिये समझाया। अपने धर्म का विचार करते बैठे न रहने देकर गीता ने उसे कर्तव्यपरायण बनने का बोधप्रदान किया था। इस प्रकार का विचार करना कि 'मैं यदि ऐसा करूँ तो क्या होगा ?' कर्तव्यविमुखता कहलायेगी।

आजकल बहुत से नवयुवक बारबार कहते हैं "हमें विवाह नहीं करना" लेकिन इसका कारण क्या है ? 'विवाह करेंगे तो सिर पर बहुत बड़ा उत्तरदायित्व आ पड़ेगा, नहीं करेंगे तो कोई झंझट नहीं; किसी बात की चिन्ता नहीं,' इसलिये कर्तव्य विमुखता का सरल मार्ग अपनाने की बात करते हैं। वास्तव में यह इनकी दुर्बलता-कमजोरी-कायरता है।

सड़े हुए अंग के लिए शस्त्रक्रिया

शरीर में रोग प्रवेश किये तो क्या करेंगे ? सम्पूर्ण शरीर नष्ट हो यह पसन्द करेंगे या जिस अंगमें रोग हो उस अंग का त्याग करना ? डाक्टर (Surgeon) व्यक्ति के जीवन को बचाने के लिये रोगग्रस्त भाग को काट डालता है। शस्त्र-क्रिया करते समय सभी इन्द्रियों को शिथिल अचेतन बना देता है। शल्यक्रिया के पश्चात--रोगी की समुचित सेवा- शुश्रूषा करनी पड़ती है। पन्द्रह-पन्द्रह दिन तक उसे पूर्ण विश्राम देना पड़ता है, उसकी देखभाल करनी पड़ती है। शल्य-चिकित्सक (Surgeon) का काम शल्यक्रिया (operation) करने के बाद ही पूरा नहीं होता, उसके पश्चात् फिर से शरीर पूर्ववत् शक्तिशाली बने, इसके लिये रोगी के शरीर की देख-भाल करनी होती है। शरीर के रुग्णभाग को काटने के बाद शेष भाग ठीक से किस प्रकार काम करे यह देखने का प्रत्येक डाक्टर--सर्जन का कर्तव्य है।

समाज शरीर के आरोग्य के लिए

श्रीकृष्ण भी उसी प्रकार युद्ध के भयानक और अनिष्टकारी परिणामों से विज्ञ थे। समाज के सड़े हुये भाग की वे अर्जुन के द्वारा (अर्जुनरूपी सर्जन)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चीर--फाड़ करवाना चाहते थे। समाज को विनाश से बचाने का यही एकमात्र मार्ग था। सभी शिथिल होंगे, इसका श्रीकृष्ण को पता था। अर्जुन का काम काट--छाँट कर देने से ही समाप्त नहीं होता वरन् समाज का निर्बल व्यक्तित्व किस प्रकार पुनः खड़ा हो, इसका विचार भी करना होता है। सर्जन केवल ऑपरेशन कर के छूट नहीं जाता। ऐसा करे तो उसका लाइसेंस--अनुमति--पत्र (License) वापस ले लिया जाय। इसलिये शरीर के शेष अंगों को सुदृढ़ बनाने का कार्य भी उसे ही करना पड़ता है। शिथिल शरीर में ऑपरेशन किये हुये भाग पर चारों ओरसे वेदना प्रविष्ट होने का प्रयत्न करती है, तब उसे संभालने का काम भी डाक्टरों का ही है। शरीर टिकेगा या नहीं ऐसी परिस्थिति निर्माण होने पर प्राण-वायु (oxygen) देनी पड़ती है। इन सभी बातों को ध्यान में रखकर युद्ध के प्रभाव से समाज से जो नैतिक मूल्य चले जाते हैं, वे पुनर्जीवित हो, इसके लिये कुरुक्षेत्र के युद्ध के पश्चात् श्रीकृष्ण ने छत्तीस वर्ष तक पाण्डवों से समाज के शेष अंगों को सुदृढ़, निरोगी बनाने का भगीरथ प्रयत्न सफलता पूर्वक कराया।

सरल भाषा में फिर से देखें। अर्जुन ने अनैतिक और दुष्ट मानवों का संहार किया। इसके बाद समाज निर्बल अवश्य पड़ा होगा, और जिस प्रकार दुर्बल देह में सैकडों रोगों के प्रवेश होने का भय रहता है, उसी प्रकार कमज़ोर पड़े समाज में भी हज़ारों दोषों के प्रविष्ट होने का भय रहता है। क्षात्रिय समाज के डॉक्टर हैं। समाज के सड़े हुये भागों की शल्य-क्रिया उनका कर्तव्य है। परन्तु उनका कार्य इस काट छाँट से ही पूरा नहीं होता। बल्कि दुर्बल पड़े समाज को सबल बनाने का उत्तरदायित्व भी उनके ही सिर पर रहता है।

नीतिमत्ता की संभाल का कार्य

अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा है, 'युद्ध के अंत में अनैतिकता अत्यधिक बढ जायेगी।' उसका यह भय उचित हीं कहा जायेगा। परन्तु श्रीकृष्ण ने कहा "अनैतिकता कैसी बढ़ेगी?" युद्ध के पश्चात तेरा और मेरा कार्य नैतिकता को जीवित रखना होगा। समाज को सबल बनाने के लिए मैं रात-दिन परिश्रम करूँगा। समाज को सशक्त बनाने में अपने को निचोड़ डालूँगा। तेरा भी यही काम होगा। बाकी 'समाज में अनैतिकता बढ़ेगी'-ऐसा कहकर क्षात्रिय कर्तव्य से छूट नहीं सकता। यह कथन उसकी निर्बलता का द्योतक है। उसका कर्तव्य तो समाज के दुर्बल भोगों को संस्कृति के प्रचार से पुष्ट करना और नीति निर्माण करना है। इसलिये किसी भी परिस्थिति में मैं तुझे कर्तव्य-विमुख न होने दूँगा।"

इस प्रकार अर्जुन का आत्मिक भय दूरकर नीति के अस्तित्व को बनाये

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रखने के लिये उसे तत्पर किया। युद्ध के बाद का पाण्डवों के छत्तीस वर्षों का पुरुषार्थ इस अमृत का परिणाम था। लोगों में सांस्कृतिक जीवन का निर्माण उन्होंने किया था। उसे विस्तार में जानने के लिए महाभारत पढ़िये। सम्पूर्ण गीता का एकमात्र उपदेश यही है। गीता पुकार कर कहती है- 'कर्तव्य विमुख होना सब से बड़ा अपराध है। किसी भी क्षेत्र में-कुटुम्ब में भी कर्तव्यपराङ्मुखता नहीं चल सकती।'

श्रीकृष्ण ने अर्जुन के मोह को दूर करने के लिये कहा, 'तू राजा है, प्रजा का संरक्षक है। सामाजिक भय से डरकर तू कर्तव्यविमुख नहीं हो सकता।' अर्जुन के हृदय में यह उपदेश उतर गया। उसके पलायनवाद (Escapism) पर पुनः आघात न हो, इसलिये वह बोला नहीं। श्रीकृष्ण सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से उसे लड़ने को समझाया।

काटनेवाले को यह भी देखना चाहिये कि शेष अंग पुष्ट हों। ऐसा उत्साह निर्माण कर श्रीकृष्ण ने अर्जुन के मुँह से '**नष्टो मोहः**' कहलाया है। यह श्लोक दीनता – लाचारी का नहीं है। '**करिष्ये वचनं तव**' दीनता की वाणी नहीं है। इसलिये हमको वैसा न समझ, छाती तानकर, उत्साह एवं हर्षपूर्वक यह श्लोक पढ़ना चाहिये। पाण्डवों ने ऐसा करके दिखाया है। अर्जुन भी प्रभु की प्रेरणा से समाज के पतन के भय को त्याग कर लड़ा और युद्ध के पश्चात् निर्बल हुये समाज को सबल बनाने में भी वह सफल हुआ। उत्साह से भरा हुआ अर्जुन ने समाज की काया पलट कर दी। छत्तीस वर्षों में उसने समाज में नवचेतन भर दिया। अनैतिकता की वृद्धि को रोक कर संस्कृति की स्थापना की। पाण्डव अपना कार्य कर, भावी पीढ़ी को उस व्यवस्था को टिकाये रखने को कहकर चले गये।

गीता ने अर्जुन के प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर दिया है। न लड़ना कर्तव्य-विमुखता है और युद्धोपरांत समाज की दुर्दशा का भय भी कर्तव्य विमुखता ही है। अर्जुन इस बात को समझ गया और युद्ध में जूझ पड़ा। बड़े अनिष्ट (Evil) के निवारण के लिये थोड़ा अनिष्ट (Evil) स्वीकार किया। श्रीकृष्ण जैसे बड़े शल्य-चिकित्सक (Surgeon) की देख-रेख में उनका सहायक (Assistant) हो उसने समाज के सड़ हुये भाग की सफलता पूर्वक चिकित्सा (operation) की और तत्पश्चात अशक्त पड़े समाज की योग्य परिचर्या कर उसे पुनः पुष्ट बनाया।

भयमुक्ति

जहाँ श्रीकृष्ण हों, वहाँ हमेशा विजय है, पराजय सम्भव ही नहीं। उन्होंने अर्जुन को भयमुक्त कर कर्तव्य-परायण बनाया और अब इस प्रकार गीता का लमू

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उद्देश्य पूर्ण हुआ। अर्जुन को सामाजिक भय के अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया। अर्जुन इस अवगुंठन से भागना चाहता था परन्तु श्रीकृष्ण के सामने कैसे भागे? श्रीकृष्ण की तो वस्त्र–हरण करने की बचपन से ही आदत थी। इसीलिये तो अर्जुन के प्रज्ञावाद का नग्न स्वरूप उसे बता दिया। श्रीकृष्ण ने बड़ी अवस्था में लोगों का अज्ञान–आवरण दूर किया। उनके पापों को खुला कर दिया, ढोंग और दंभ को प्रकट कर दिया।

गीता – अमूल्य और अद्भूत विरसा

अतः गीता मानव को कर्तव्य–परायण बनानेवाला अद्भुत और अलौकिक ग्रन्थ है। यह श्रीकृष्ण की जगत को मिली सर्वाधिक मूल्यवान विरासत है। श्रीकृष्ण समझा गये कि सिद्धान्तों में (Principles) समझौता (Compromise) संभव ही नहीं। ऐसी उत्तम विरासत श्रीकृष्ण पाँच हज़ार वर्ष पहले मानव जाति को दे गये हैं। इसमें शंका को स्थान ही नहीं। जिसको गीता के सम्बन्ध में शंका होती हो उसे १२ वर्ष तक तपस्या कर गीता का अध्ययन करना चाहिये, तभी गीता समझी जा सकती है। गीतारूपी सागर अथाह है। इसमें हम तैर नहीं सकते। यह हमारी शक्ति के बाहर की बात है। गीता अलौकिक अमृत मिला है इसीलिए श्रीकृष्णावतार की महत्ता है। अर्जुन को निमित्त बना कर भारत द्वारा समस्त विश्व को मिला हुआ यह अद्भुत और महान् ग्रंथ है। गीता पर, जगत के अग्रगण्य महापुरुषों, आचार्यों ने भाष्य और टीकायें लिखी हैं। अनेक तत्त्वाचिन्तकों और विद्वानों ने गीता की अनेक प्रकार से समालोचना की है। परन्तु कोई भी उसकी थाह पा नहीं सका।

आचार्यों के भाष्य

भारतीय तत्त्वज्ञान में दशोपनिषद और ब्रह्मसूत्र के साथ गीता का भी स्थान है। सर्वाधिक पुराना, गीता पर भाष्य--"शांकर भाष्य" है जिसे श्रीमदाद्य शंकराचार्य ने लिखा। इससे पूर्व भी गीता पर टीकायें होंगी, ऐसा भाष्य के आलेखन से सिद्ध होता है। परन्तु शंकराचार्य जी इतनी अलौकिक योग्यता, अनुपम प्रतिभा और लोकोत्तर बुद्धि वाले थे कि उनके लिखने के पश्चात, जिनका खण्डन उन्होंने किया, उनके ग्रन्थ भी न रहे। शंकराचार्य जी का भाष्य छठी शताब्दि में हुआ। उनके मतानुसार गीता का प्रतिपाद्य विषय अद्वैत वेदान्त और सर्वकर्मत्याग–युक्ति है। गीता--भाष्य का भार ज्ञान--कर्म के समुच्चय के खण्डन पर है। गीता भाष्य के अनुसार '**ज्ञानादेव तु कैवल्यम्।**'

श्रीमदाद्य शंकराचार्य महान आचार्य थे; वे जगद्गुरु कहलाते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्त्वज्ञान का शिखर उन्होंने बताया है। उनका जीवन हममें लाने वाला है। तत्त्वज्ञानियों के वह मुकुट शिरोमणि हैं। उनके बाद ढाई सौ वर्षों में एक नये संप्रदाय के प्रवर्तक महापुरुष भारतीय तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में अवतीर्ण हुये, जिनका नाम था रामानुजाचार्य। शंकराचार्य की जीव, चेतन और ईश्वर की एकता सामान्य मानव की बुद्धि में नहीं आ सकती। श्रीरामानुजाचार्य परमेश्वर को सगुण मानते हैं। भक्ति उसको प्राप्त करने का साधन है। इसलिये भक्ति ही गीता का प्रतिपाद्य विषय है ऐसा उन्होंने सिद्ध किया हैं। इसके बाद भारतीय तत्त्वज्ञान में जीव और ईश्वर में अद्वैत अशक्य है, जीव केवल जीव ही रहेगा और ईश्वर केवल ईश्वर ही--इस मत का प्रतिपादन गीता करती है ऐसा कहनेवाले मध्वाचार्य अवतीर्ण हुये। फिर द्वैताद्वैती श्री निम्बार्काचार्य ने गीता के ऊपर स्वतंत्र टीका लिखकर भारतीय तत्त्वज्ञान पर भिन्न ही प्रकाश डाला है। उनके पश्चात् शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के प्रवर्तक महाविभूति निम्बाकाचार्य ने प्रतिपादित किया कि गीता में पुष्टि मार्ग का ही प्रतिपादन किया गया है। इन पाँच भाष्यों के अतिरिक्त मधुसूदन सरस्वती जैसों की अलौकिक टीकायें भी गीता पर प्रकाश डालती हैं।

मानवमात्र का मार्गदर्शक ग्रन्थ

उपरोक्त पाँच महान आचार्यों ने गीता पर भाष्य लिखे हैं। उन्होंने गीता में से जीवनामृत निकाल के दिया है। उससे स्पष्ट है कि गीता में सब को स्थान है। सभी वादों के खण्डन-मण्डन का उसमें समन्वय हुआ है। धार्मिक और आध्यामिक क्षेत्र में ही नहीं, राजनैतिक क्षेत्र में भी पूर्ण सामाजिक जीवन को ही सर्वस्व माननेवाले, परस्पर विरोधी मत रखनेवाले महान राजनैतिक पुरुष भी अपनी नीति के समर्थन के लिये गीता का आश्रय ढूँढ़ते हैं, गीता को आगे करते हैं। इस प्रकार गीता सभी को प्रेरणा देती है। औरों की बात तो अलग रही परन्तु आजकल तो पक्के जड़वादी-साम्यवादियों को भी गीता का मोह हो गया है। अपनी विचार-सारणी के समर्थन में वे गीता का आधार लेने लगे हैं। ईश्वर को न माननेवाले ये साम्यवादी गीता को मानने लगे हैं। गीता में साम्यवाद (Communism) होने की बात वे करते हैं।

दुनिया में गीता जैसा अलौकिक ग्रन्थ दूसरा एक भी नहीं। इससे सब के मत को समर्थन मिलता है। प्रत्येक को गीता की बात मैं कहता हूँ, इसमें बड़प्पन लगता है। गीता मानव-मात्र को राह बताती है। भोगवादियों को उसमें से मार्ग-दर्शन मिलता है। भक्त को वह भक्ति-रस की महिमा समझाती है। राजनीतिज्ञों को भी गीता से आवश्यक तत्त्वज्ञान मिल रहा है। चाहे जिस दशा में भी मनुष्य हो, गीता में से वह कुछ न कुछ प्रेरणा अवश्य प्राप्त करता है। श्रीकृष्ण ने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आठ अवतार लिये; प्रत्येक समय जगत के कल्याण के लिये उन्होंने महान कार्य किये, परन्तु कृष्णावतार में गीता रचकर तो उन्होंने मानव-जाति की समस्त समस्याओं का हल बताकर उसका मार्ग सुगम बना दिया है। इसीलिये कृष्णावतार दूसरे सभी अवतारों की अपेक्षा बहुत अलौकिक और उपकारी है। श्रीकृष्ण ने गीता रचकर मानव जाति को चिरन्तन मार्ग-दर्शन दिया है। गीता के मार्ग-दर्शन की आज जितनी आवश्यकता है, उतनी अतीत में कभी भी नहीं थी। जगत को गीता प्रदान कर भगवान श्रीकृष्ण ने कृतकृत्यता अनुभव की है। गीता आज भी जगत की सभी समस्याओं को सरलता से हल कर देती है। जीवन की विकट से-विकट समस्याओं का समाधान भी गीता से मिलता है।

सामाजिक पुनर्रचना पर पश्चिम का असर

हमें लगता है कि समाज का पुनर्गठन किया जाना चाहिये क्योंकि सर्वत्र आज द्वेष, मत्सर इत्यादि दिखायी देते हैं। पाश्चात्य देशों में भी वैश्विक पुनर्गठन के विचार चल रहे हैं। आज हमने सामाजिक और नैतिक पुनर्निर्माण का पुरुषार्थ आरम्भ किया है परन्तु हमारे इस पुरुषार्थ में हमारे हाथों कुछ दोषों के हो जाने का भय है, इसे ध्यान में रखना चाहिये। पुनर्निर्माण हमने अपना करना है परन्तु इसके सम्बन्ध में हमारे विचार भारतीय नहीं, अभारतीय हैं। पाश्चात्य विचार श्रेणी के आधार पर हम अपने समाज के पुनर्गठन का प्रयास कर रहे हैं।

हमारा शिक्षण और हमारे संस्कार पाश्चात्य संस्कृति के साथ ऐसे एकरूप हो गये हैं कि हम अपनापन खो बैठे हैं। इसलिये हम अपने अति आवश्यक मुख्य भारतीय तत्त्वों का विचार ही नहीं करते। वेदव्यास पुकारकर कहते हैं, परन्तु सुनता कौन है? दूसरी बात यह है कि आज सारा जगत एक हो गया है, इसलिये हमपर विदेशी हवा प्रभाव डाले, यह स्वाभाविक ही है, और उसमें भी जो प्रभावशाली प्रवाह है वही काम करता है। आज हमको विशेष पद्धति का शिक्षण मिलता है, मिला है। शिक्षण देनेवाले का दृष्टिकोण चाहे वैसा न रहा हो परन्तु परिणाम तो वैसा ही हुआ है। फलस्वरूप हम जाने-अनजाने पुरानी निष्ठा और प्राचीन मूल्यों को भूलने और छोड़ने लगे हैं। परन्तु इसके साथ-साथ हम नयी निष्ठा या नये मूल्य अपना न सके, इसलिये स्वभावतः नयी सँस्कृति की छाप हमारे मन पर रहती है। परिणामस्वरूप हमारी स्थिति **'इतोऽपि भ्रष्टस्ततोऽपि भ्रष्टः'** जैसी होती जाती है।

जापान की राष्ट्रीय अस्मिता

आज जब हम नैतिक पुनर्गठन के लिये प्रयास कर रहे हैं, तब हम पर पाश्चात्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिक्षण पद्धति एवं संस्कृति का अतिप्रभाव पड़ता है। वह हमको आकर्षित करती है। पाश्चात्य संस्कृति की शक्तिशाली, प्रभावशाली लहरें भारतीय संस्कृति पर टूट पडी हैं। इसी प्रकार जापान पर भी एक समय पाश्चात्य संस्कृति की लहरें लहरायीं थी परन्तु कहा जाता हैं–'Japan has used the West but has never become westernised' जापान ने पश्चिम का लाभ उठाया है फिर भी वह अपनी संस्कृति को नहीं भूला। उसने पश्चिम से अनेक लाभ पाये, फिर भी वह पाश्चात्य कभी नहीं बना।

मानवनिष्ठा को टिकाने के लिये जिन–जिन तत्वों की आवश्यकता पड़ी उन्हें जापान ने ग्रहण किया है क्योंकि वह स्वतंत्र था–ऐसा कुछ लोक कहते हैं, परन्तु जापान ने तो पूर्ण संशोधन के पश्चात् ही विचारों को अपनाया है। विजय–पराजय से किसी बात का निर्णय नहीं होता। पश्चिमी विचारों के साथ साम्य कर सकें और उसे कुछ दे सकें, ऐसी तैयारी जापानियों की थी। क्योंकि उन्होंने अपनी संस्कृति, नीति या निष्ठा छोडी नहीं थी। फलस्वरूप आज भी जगत में पूर्ण सभ्यता के डंके बजने पर भी, जब जापानी पति घर वापस आता है तो जापानी पत्नी घुटनों के बल झुक कर उसका स्वागत करने के लिये दरवाजे पर खडी रहती है। अर्थात् जापान ने अपनी संस्कारिता जीवित रखी है।

जापानी भाषा चाहे जितनी भी कठिन हो परन्तु उसके लिए जापानियों को सम्मान है, वे अनिवार्य रूप से उसे सीखते हैं। पश्चिम का इतना लाभ उठाने के बावजूद जापान ने अपनी नीति, निष्ठा या मूल्यों को नहीं छोडा न भुलाया ही है। जब कि हमारी स्थिति इससे विपरीत है।

मौलिकता का अभाव

पाश्चात्य मूल्यों को ग्रहण करते समय हमने अपने सँस्कृतिक मूल्यों को गँवा दिया क्योंकि हम पराधीन थे। हमारे देश पर पाश्चात्य सभ्यता व सँस्कृति के झंझावात टूट पडे यदि हमारा देश भी जापान की तरह स्वतंत्र होता तो ये आँधियाँ भारतीय मूल्यों का विनाश नहीं कर पातीं। भारतीय सँस्कृति पर पाश्चात्य सँस्कृति का जाल न फैल सकता।

हमारी भाषा सँस्कृत याने दैवी भाषा (देव-वाणी)। भारतीय कितने परिश्रम से सँस्कृत पढ़कर आचार्य बनते थे और सम्मान के अधिकारी बनते थे; उस सँस्कृत को हमने आज द्वितीय श्रेणी की भाषा (Second Language) बनाया है जो अपनी ही थी। फलस्वरूप आज सँस्कृत के आचार्यों की अपेक्षा–मैट्रिकुलेट (Matriculate) और ग्रज्युयेट (Graduate) युवक अधिक सम्मान प्राप्त करते हैं। जापान स्वतंत्र था, इसलिये यथोचित विचार कर सका-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हम भाग्य या दुर्भाग्य से स्वतंत्र न थे, इसलिये जानबूझ कर अथवा अज्ञान वश परिणाम का कुछ भी विचार न कर सके। मैट्रिक होकर तहसीलदार और बी. ए., एम. ए. बन कर आबरू का (Status) विचार करते हैं। इसमें इतना एक-रूप हो गये कि उनकी जैसी ही निष्ठा हो गयी है।

हम आज नीति, प्रगति, धर्मशास्त्र या तत्त्वज्ञान का विचार करते भी हैं तो पाश्चात्य दृष्टि से ही। इस पाश्चात्य पद्धति पर ही अपने समाज की पुर्नरचना का प्रयास हम करते हैं। आज हम स्वतंत्र हो गये हैं, परन्तु पाश्चात्य विचार ही बुद्धि में प्रधान भाग लिये हैं, स्वतंत्र भारतीय मौलिक विचार हैं ही नहीं। दूसरी बात, आज विज्ञान ने जगत को एक सूत्र में बाँध दिया है। अन्तर्राष्ट्रीयता और विश्व बन्धुत्व के युग में जगत के प्रवाह से अलग कोई भी नहीं रह सकता। इसलिये आज जब हम नवसृजन का प्रयास कर रहे हैं, तब विचार करना चाहियें कि यदि अपनी निष्ठा प्रभावी है तो जगत को उसमें मिलाऐं और यदि ऐसा नहीं, तो जो प्रभावी है उसमें मिल जाऐं क्योंकि, इस प्रकार आन्तरराष्ट्रीय विचार किये बिना छुटकारा ही नहीं। इस प्रकार नव राष्ट्र निर्माण करते समय विचार की आवश्यकता है। हम पाश्चात्य प्रबल वैचारिक प्रवाहों से प्रभावित हुये हैं और दृढ़ न होने से उस प्रवाह में खिंच भी गये हैं।

विश्व के दो वैचारिक प्रवाह

जगत में दो प्रकार के वैचारिक प्रवाह बह रहे हैं। पाश्चात्य देशों में आज व्यक्ति की निष्ठा एवं प्रधानता पर एक विचार-प्रवाह प्रवाहित हो रहा है। यह व्यक्ति-स्वातंत्र्यवादयुक्त लोकतंत्र वाद का है। दूसरा प्रवाह है साम्यवाद का। इन दों प्रवाहों में आज सारा जगत डूबा हुआ है। ये दो महान प्रवाह योग्य हैं या नहीं, अनुसरणीय हैं या नहीं इसका विचार करना चाहिये।

व्यक्तिस्वातंत्र्ययुक्त लोकतन्त्रवाद

प्रथम है, व्यक्तिस्वातंत्र्यवादी लोकतंत्रवाद। फ्रांस में प्रबल राज्य क्रांति हुयी थी और तत्पश्चात व्यक्ति-स्वातंत्र्य पर आधारित लोकतंत्रवाद की नींव पड़ी। क्रांति से पूर्व वहाँ धर्मगुरु और वंशपरम्परागत राजसत्ता काम करती थी। उस काल में विज्ञान ने प्रगति की। भौतिक शोधें बढ़ने लगीं। धर्मगुरु भौतिक प्रगति से चमक ने लगे क्योंकि ईसाई धर्म के मूल तत्त्व प्रेम व श्रद्धा में तार्किक प्रवाहों को प्रत्युत्तर देने की क्षमता नहीं थी। धर्मगुरुओं में प्रविष्ट बुराइयों और तार्किक विचारप्रवाहों का मुकाबला करने की शक्ति न होने के कारण उनके शासन स्तम्भ हिलने लगे। अतः उनके लिये दो ही मार्ग शेष थे-पहला-विज्ञान का बहिष्कार,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दूसरा–वैज्ञानिकों को समाप्त करना। उन्होंने विज्ञान का आदर कर मानव कल्याण के लिये, उसका अपने ढंगसे उपयोग करने की अपेक्षा उपर्युक्त दोनों मार्ग अपनाये, कैथोलिक और प्रोटेस्टैण्ट धर्मगुरु वैज्ञानिकों को अपना शत्रु मानने लगे। उन्होंने उनपर लोमहर्षक पैशाचिक अत्याचार किये हैं। बहुतसे वैज्ञनिकों की हत्या भी की गयी, परन्तु इसके बावजूद भी वे धर्मगुरु विज्ञान के प्रवाह का प्रतिकार न कर सके, और 'डुबते को तिनके का सहारा' जैसे उन्होंने राज–सत्ता की शरण ली, राजसत्ता के साथ सन्धि की और अत्याचारी राजसत्ता के पाप को इस प्रकार धर्म का सयर्थन भी मिल गया। धर्मगुरु राजसत्ता के पापों का समर्थन करने लगे, फलस्वरूप धर्मगुरु कर्तव्यभ्रष्ट और मलिनवृत्ति के हो गये, पापाचार बढने लगा। धर्मगुरु जगत को धर्म के नाम पर चूसकर आनंद करने लगे। इसके फलस्वरूप लोग राजसत्ता और धर्मसत्ता से दुःखी हो गये और दोनों के प्रति अत्यधिक तिरस्कार बढ़ने लगा।

उस समय गुलामी की प्रथा थी। वे सोचने लगे--राजा भी मेरे जैसा मानव ही हैं। मैं क्यों जन्मजात गुलाम हूँ ? क्योंकि मेरा बाप गुलाम था!' बाद में वोल्टेर (Voltaire) और मिल (Mill) ने यह बात समझायी कि 'व्यक्ति के रूप में तेरी भी कोई कीमत है। तुझमें व्यक्तिनिष्ठा चाहिये।' इसके बाद ही वह अनिवार्य क्रान्ति हुयी। राजा को फाँसी पर चढाया गया और स्वातंत्र्य--समता तथा बंधुत्व के युग (Freedom, Equality and fraternity) की हृदय से घोषणा हुयी। लोगों ने जन्मजात दासता के सिद्धान्त के खोखलेपन को परख लिया और इस सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया। 'बाप गुलाम इसीलिये बेटा भी गुलाम' इस बात को स्वीकारने के लिए लोग तैयार न थे। लोगों ने ललकारा 'हम किसी के भी गुलाम नहीं रहेंगे। किसी प्रकार भी बन्धन स्वीकार नहीं करेंगे।' परंतु स्वतंत्र लोगों के लिये भी शासन–प्रबंध तो होना चाहिये न ? इसीलिये किसी न किसी प्रकार की शासन--सत्ता चाहिये। वह ऐसी होनी चाहिये जिसे वंश--परंपरागत राजा या धर्माचार्यों के आशीर्वाद की आवश्यकता न रहे। "Government for the people, of the people and by the people"--लोगों की अपने द्वारा बनायी अपने लिये सरकार के सिद्धान्त के आधार पर पाश्चात्य देशों में लोकतन्त्रवाद का श्रीगणेश हुआ। इसकी स्थापना का मूल हेतु लोगों को शोषण से बचाना था।

लोकतंत्रवाद (जनतंत्र) का बाह्य स्वरूप तो बहुत ही आकर्षक लगता था, परन्तु उसमें व्यक्तिस्वांतत्र्यरूपी भयानक विषबीज भी थे, लोकतंत्रवाद या व्यक्तिस्वातंत्र्यवाद पर आधारित भस्मासुर वह था। वह निकला और कहने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लगा। हम कहाँ रहेंगे, कैसे पैसे रखेंगे? इसे हम ही निश्चित करेंगे, परिणाम-स्वरूप इस व्यक्तिस्वातंत्र्यवादी लोकतंत्रवाद को धार्मिक या वंशपरम्परागत सत्ता को जितना ही शोषक बना दिया गया है। यह जनतंत्र महान शोषक हो गया। इसके दो कारन हैं-- १ व्यक्तिस्वातंत्र्यवाद २ यंत्र--युग।

व्यक्तिस्वातंत्र्यवाद और यंत्र--युग ने जगत का कल्याण करने के साथ साथ उतना ही अकल्याण भी किया है। इसीलिये आज यंत्र -युग में जनसंख्या की अपेक्षा उत्पादन अधिक होने पर भी सभी लोगों की आवश्यकतायें पूरी न होतीं। सब को जितना चाहिये उतना मिलता नहीं।

भयस्थान

पचास व्यक्तियों के एक गाँव में गद्दी बनाने का एक कारखाना है और यह कारखाना पाँच–सौ गद्दी प्रतिवर्ष तैयार करता है। इसके बावजूद भी गाँव के पचास लोगों में से ४८ लोगों के पास गद्दी नहीं होती। यंत्र-युग का बड़े से बड़ा दोष यदि है, तो यही है। विज्ञान की दृष्टि से जगत निकट आता गया, मानव उत्पादन बढ़ाने लगा, परन्तु इसके पीछे का हेतु बाजार पर अधिकार और अधिक धन प्राप्त करना ही होता है। उपयोग कैसे करना, यह निर्णय कोई नहीं करता। सब को आवश्यकता पूर्ण करने की समस्या बिना सुलझी ही रह गयी है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक वस्तु मिलनी ही चाहिये, यह तर्क तो है परन्तु व्यवहार विपरीत। परिणाम स्वरूप उत्पादन बढ़ने पर भी लोगोंकी आवश्यकता पूर्ति के लिये चीज-वस्तुयें भी नहीं मिल सकतीं।

इस प्रकार व्यक्तिस्वातंत्र्य के पीछे की मूल भावना लुप्त हो गयी और व्यक्ति स्वातंत्र्य का अर्थ व्यक्ति का स्वार्थ–हित होने लगा। व्यक्तिस्वातंत्र्य के नाम पर लोग पैसा और सत्ता के ऊपर अपना दावा आगे रखने लगे, परन्तु धर्म या ईश्वर को भूलने लगे। क्योंकि व्यक्तिस्वतंत्रता का अर्थ, 'जिसको जो उचित लगे उस प्रकार व्यवहार करने की छूट' किया जाने लगा।

अनिष्ट परिणाम

व्यक्तिस्वातंत्र्य की भाषा अतिशय मीठी है परन्तु उसके परिणाम अति भयंकर हैं। पुराने जमाने में लोगों से दास के रूपमें काम लिया जाता था, यह पुरानी पद्धति थी। इस प्रथा के अनुसार लोगों पर अत्याचार कर बलपूर्वक उसने काम लिया जाता था। अब जबरदस्ती चली गयी। 'मेरा काम करने का अधिकार भी है और न भी करूँ।' काम करना या न करना यह सब की अपनी इच्छा की बात हो गयी। इस प्रकार व्यक्तिस्वातंत्र्य ने बलपूर्वक काम लेने का स्थान ले लिया है परन्तु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यक्ति स्वातंत्र्य का उपभोग तो मजदूर–मालिक दोनों करते हैं। इसलिये मालिक कह दे कि 'मैं इतने काम की मजदूरी ड़ेढ आने के हिसाब से दूँगा तुझे काम करना हो तो कर, नहीं तो तेरी इच्छा। मैं तुझपर ज़ोर नहीं करता, परन्तु अधिक मजदूरी नहीं दूँगा। मुझे और नौकर मिल जायेगा, तुझे भी मालिक मिल जायेंगे।' यह भाषा कितनी मधुर है। परन्तु यथार्थ में कठोर; क्योंकि मालिकको बहुत नौकर मिलते हैं परन्तु नौकर को बहुत मालिक नहीं। फलस्वरूप प्रत्यक्ष या परोक्ष रीति से नोकर को मालिक का दास ही रहना पड़ता है।

लोकतंत्रवादी राजसत्ता को भी इस विचार का समर्थन करना पड़ा। कारखानेवालों को भी मज़दूरों की तरह स्वातंत्र्य प्रदानकर उनकी सहायता करनी पड़ी। परिणामस्वरूप पैसा ही परमेश्वर माना जाने लगा। वित्त जीवन का सर्वस्व होने लगा। 'मुझे जैसा ठीक लगे वैसा करूँगा.'–ऐसी भाषा प्रबल बनती गयी। न्याय, नीति, धर्म और सद्‌गुणों को छोड़ दिया गया। धर्म को भूलकर सभी स्वेच्छाचारी व्यवहार करने लगे। लोगों में से सद्‌गुणों का लोप होने लगा। पैसा और भौतिकसुख ही धर्म बन गया। 'मेरी जेब का पैसा मेरा ही है मेरे पिताका भी नहीं इस प्रकार धनाभिलाषा, वित्तलालसा बढ़ने लगी।

> यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः
> स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः।
> स एव वक्ता स च दर्शनीयः
> सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते॥

लोगों को सोना–चाँदी, धनसम्पत्ति के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं सूझता और जिसके पास यह सब हो उसे ही मान, वस्त्र, स्त्री आदि मिलते हैं। इस प्रकार व्यक्तिस्वांतत्र्य पर आधारित लोकतंत्रवाद में जनसंख्या की अपेक्षा उत्पादन काफी बढ़ा।

प्लेटो (Plato) और अरिस्टोटल (Aristotle) ने जिसप्रकार राजनैतिक क्षेत्र में लोक विचार को धक्का दिया है उसीप्रकार कार्ल मार्क्स (Karl marx) ने भी दिया। उसने प्रश्न किया उत्पादन बढ़ने पर भी बेकारी बढ़ती है, इसका क्या कारण है? आज भी लोगों पर व्यक्तिस्वातंत्र्य की धुन सवार है। और व्यक्ति स्वातंत्र्य के सिद्धान्त पर आधारित लोकतंत्रवाद के पेट में मात्र पैसा और सत्ता है। 'पैसा हो तो सत्ता का उपभोग' किया जा सकता है ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गयी हैं, इसलिये जबरदस्ती के स्थान पर नये स्वरूप में समाज का शोषण होने लगा है। शोषण की पद्धति बदली, नाश न हुआ, मार्क्स ने लोकतंत्र का दोष बताया,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पैसेवाले को खुला (Expose) कर दिया, पैसेंवालों की नयी शोषणनीति को प्रदर्शित कर दिया है। कार्ल मार्क्स (Karl Marx) ने कहा है-Democracy is the creation of Capitalism जनतंत्र-लोकतंत्र तो पूंजीवादका ही सृजन है।

साम्यवाद

इससे देखा जा सकता है कि लोकतंत्र वाद की कमजोरी Weak Point है व्यक्तिस्वातंत्र्य। लेनिन ने लोकतंत्रवाद की इस कमज़ोर कडी को पहचान लिया था, इसलिये उसने व्यक्ति का मूल्य बिल्कुल नगण्य कर दिया और साम्यवाद की स्थापना की। यह प्रतिक्रियात्मक तत्त्वज्ञान (Reactionary Philosophy) है। यह कैसे टिकेगा लेनिन समझ नहीं सका। साम्यवाद में व्यक्तिस्वातंत्र्य जैसी कोई बात नहीं होती। व्यक्ति का इस में कोई मूल्य नहीं अतः व्यक्ति के हित की अवहेलना होने लगी और समाज के हित की दृष्टि से ही सभी बातों का विचार होने लगा। व्यक्ति साम्यवादी समाज का केन्द्रबिन्दु नहीं रहा, व्यक्ति की उपेक्षा हुयी और सत्ता का सूत्र अपने पक्ष में आया। व्यक्तिस्वातंत्र्य को समात कर कौमरेड लेनिन ने विशिष्ट पक्ष का संचालन किया, उसे स्वातंत्र्य प्रदान किया वही राज-व्यवस्था स्टालिन ने चलायी और आज भी वह पक्ष प्रबल प्रभाव रखता है।

रूस में बात इतने पर ही नहीं रुकी इस प्रतिक्रियात्म विचारक से व्यक्ति-स्वातंत्र्य समाप्त हुआ; व्यक्ति में तो कुछ बुद्धि ही नहीं, ऐसा कह कर उसकी कीमत निकाल दी गई। व्यक्ति को भाषा, विचार या वाणी-स्वातंत्र्य में से कुछ भी नहीं। समाज के हित की उनकी बातें खोखली हैं। समाज को भी कुछ स्वातंत्र्य नहीं। अरे, यह बात तो छोड़ो-समाज याने उनका ही पक्ष, कम्युनिस्ट पार्टी। उसके हाथ में सत्ता है और उस पक्ष के भी चौदह सदस्यों से बने पोलिट-ब्यूरो द्वारा शासन चलता है। परन्तु क्या इन चौदह सदस्यों को स्वातंत्र्य है ? वह उन्हें भी नहीं। इन चौदह सदस्यों में बडा नेता जो कहे, वही मान्य बाकी सभी अमान्य। समस्त सूत्र बड़े नेता के हाथ में रहता है। हमें रूस के बड़े नेताओं-प्रमुखों के अत्याचारों का पता नहीं है क्या ?

दोनों विचार धाराएँ अपूर्ण और हानिकर

जगत में इसप्रकार व्यक्तिस्वातंत्र्यवादी लोकतंत्र और साम्यवाद-दो प्रबल प्रवाह बह रहे हैं, घर किये हुये हैं। और हम इन प्रवाहों पर ही दृष्टि लगा कर बैठे हैं कि किस को पकडें ? इस के अतिरिक्त दूसरे विचार पुनर्गठन में आते ही नहीं। कोई तीसरा मार्ग है या नहीं, इस सम्बन्ध में कभी विचार नहीं करते। आज हम समाज के पुनर्निर्माण करते समय भौतिकता पर आधारित साम्यवाद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आत्मघाती ही नहीं बल्कि मानवताघाती साम्यवाद और लोकतंत्रवाद का ही विचार करते हैं। इन दो में से किसको छोड़े--इसका हम विचार ही नहीं करते।

आज के वैचारिक आन्दोलनों में हमारा मन खो गया है; हमको कुछ सूझता ही नहीं पारिणामतः आज हम पशुतुल्य हैं तो कल उससे भी निम्नकोटि के होंगे।

समस्याओं का एकमेव उकेल

परन्तु भगवान श्रीकृष्णचन्द्र हम को इस समस्या अति बिकट सभी समझी जानेवाली समस्या का समाधान भी बता गये हैं। इसीलिए हम गौरवपूर्वक कहते हैं –'**कृष्णं वंदे जगद्गुरुम्।**' अतः गीता खोलें, उसका अध्ययन करें तो आज जगत में बहनेवाले दोनों प्रवाहों का समुचित समन्वय सिद्ध करनेवाला तीसरा कल्याणकारी प्रवाह मिलकर रहेगा।

आज तो सर्वत्र यहाँ मरना कि वहाँ डूबना–यही विचार हो रहा है। दोनों स्थितियों में मरना ही है। प्रत्येक व्यक्ति–धनी या निर्धन मरने का ही विचार करता है। विचारों का प्रभाव समाज, राष्ट्र–सभीपर होता रहता है। यदि गीता का आश्रय लिया जाय तो फिर इस प्रकार मरने का विचार ही न करना पड़े।

जगत के दो प्रबल प्रवाहों का हमारे व्यक्तिगत जीवन और उसी प्रकार सामाजिक जीवन पर भी अत्यधिक प्रभाव पड़ रहा है। यह प्रभाव रोका जा सकता है या नहीं इसका विचार ज्ञान यज्ञकी पूर्णाहुति के शुभ अवसरपर करेंगे। पाँच हज़ार वर्ष पूर्व की गीता से आज की उपयोगी बातें फिर देखेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उन्नीसवाँ प्रकरण

उपसंहार

भौतिकवाद और विज्ञान

आज हमारे भौतिक जीवन पर जगत में प्रवाहित दो पृथक विचार--प्रवाहों का प्रभाव पड़ रहा है। वे प्रवाह जोर मार रहे हैं। एक विचार--प्रवाह व्यक्ति–स्वातंत्र्य-वाद पर निर्मित लोकतंत्र और दूसरा उसका प्रत्याघाती (Reactionary) प्रवाह--साम्यवाद है। ये दोनों प्रवाह जगत में कार्यरत देखे जाते हैं।

हमने देखा, कि व्यक्ति स्वातंत्र्य के सिद्धान्त पर आधारित लोकतंत्रवाद भी हानिकारक है क्योंकि उसमें भौतिकवाद और भौतिक सँस्कृति के मूल घर कर बैठे हैं। लोकतंत्रवाद तथा साम्यवाद–दोनों का मूल भौतिक सँस्कृति और विज्ञान है। तत्कालीन भौतिक शास्त्रों से उन दोनों की निर्मिति है। इसलिए इनमें से एक का चुनाव ईंट या पत्थर में से एक को चुनने जैसा है। यद्यपि ईंट पत्थर की अपेक्षा मुलायम है, तथापि पत्थर की ही तरह वह माथा फोड़ेगी और डॉक्टर के पास भेजेगी। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि हमें विज्ञान को तिरस्कृत कर निकाल फेंकना चाहिये, बल्कि विज्ञान की नकेल अपने हाथ में रहे, हम विज्ञान के दास न बन जाय–यह अत्यावश्यक है। भौतिक संस्कृति और विज्ञान से इन दो वादों का निर्माण हुआ है, इसलिये उन्हें अमान्य करने की आवश्यकता नहीं। बिना विज्ञान के थोडे ही चलना है।

एक बार एक प्रोफेसर साहब नाव में सैर करने निकले। वार्तालाप करते हुये उन्होंने खलासी की कुशल–क्षेम पूछी। फिर पूछा, 'तेरे बाप–दादा क्या करते थे?' उस नाविक ने कहा – 'मेरे पिता भी नाव चलाते थे। एक दिन वे नाव चलाते ही डूब गये। मेरे दादा और परदादा भी इसीप्रकार डूबे थे।' यह सुनकर प्रोफेसर ने कहा, 'तेरे बाप–दादा नाव चलाते हुये डूब मरे, तो तू इस धन्धे को छोड क्यों नहीं देता?' इस प्रश्न का उत्तर देने के बदले नाववाले ने समान प्रश्न पूछा, 'साहब! आपके पिता कैसे मरे?' प्रोफेसर नें कहा, 'शय्यापर सोते सोते ही मर गये।' मल्लाह ने पुनः पूछा, 'और आपके दादा?' प्रोफेसर साहब ने उत्तर दिया, 'वे भी बिस्तर में सोते सोते ही गुजर गये।' यह सुनकर नाववाला हँस पडा और बोला, 'साहब! आपके दादा बिस्तर में पडे पडे मर गये, पिताजी भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसी प्रकार मरे, तो फिर आप बिस्तर में सोना क्यों नहीं छोडते ? ' यह सुनकर प्रोफेसर साहब की बोलती बन्द हो गयी। कहने का तात्पर्य यही है कि किसी चीज का मिथ्या भय करना आवश्यक नहीं। हमें भी विज्ञान से मिथ्या भय रखने की आवश्यकता नहीं है।

विज्ञान का विवेकपूर्ण उपयोग

शस्त्र तो सभी रखते हैं, परन्तु उससे जगत का कल्याण होगा या अकल्याण, इसका आधार तो शस्त्र धारण करनेवाले के प्रयोग पर निर्भर होता है। रावण और कंस के हाथों में भी शस्त्र थे; भगवान श्रीरामचंद्र और भगवान श्रीकृष्ण के हाथ में भी शस्त्र थे, परन्तु वे ही शस्त्र रावण कंस के हाथ में रहकर अकल्याण के अतिरिक्त कुछ नही कर सकें, जब कि श्रीकृष्ण और रामचन्द्र के हाथ में रहनेवाले शस्त्रों ने मानवता का रक्षण कर विनाश की ओर बढते समाज को--जगत को बचाया है। इसलिये शस्त्र बुरे नहीं बल्कि उनका प्रयोग करनेवाले बुरे हैं। अतः विज्ञान त्याज्य है, उससे दूर रहो, ऐसा कहना निरी मूर्खता है। यह तो मानव--बुद्धि को बाँधकर रखने जैसा है। इससे तो बुद्धि रोके हुये पानी की तरह बिगड़ जायगी।

भौतिकवादी और भौतिकशास्त्री

भौतिकशास्त्र अथवा भौतिक शास्त्री कभी बुरे नहीं कहे जा सकते। इन का कार्य तो सत्य की शोध कर उसे जगत के समक्ष ज्यों का त्यों प्रस्तुत करना है। प्रयोगशाला में वे अनेक कष्ट सहते हैं। रक्त का पसीना बनाकर, अद्भुत धैर्य रखकर, सत्य की शोध कर वे जगत के सामने रखते हैं। फिर इस शोध का उपयोग किस प्रकार करना है, इसका विचार या निश्चय जगत को ही करना है। भौतिकशास्त्री और भौतिकवादी के मध्य बहुत बड़ा अन्तर है। भौतिकशास्त्री रूढ़िवादी (Orthodox) नहीं। वे तो निरन्तर नये सत्य के पीछे लगे रहते हैं; जबकि भौतिकवादी पूरे रूढ़िचुस्त होते हैं और Eat, drink and be merry-' खाओ, पीओ और आनंद करो ' वाले हैं। नैतिक और आत्मिक विकास की अपेक्षा भोग को ही ये लोग प्राधान्य देते हैं। वे तो एक ही शास्त्र को पकड़े बैठें होते हैं। वे हमारे नीति-नियमों और समाजशास्त्रों को बाँध रखते हैं।

भौतिक शास्त्र तो बदलता है, परन्तु भौतिकवादी नहीं। वह पुरानी बातें ही किया करता है। उदाहरणार्थ – उन्नासवी सदी के भौतिक तत्वज्ञानी जड़वादी थे जब कि वीसवी सदी के चेतनवादी बने। ये कहते हैं जड के पेट में गतिमान परमाणु (Electrons) हैं। बीसवीं सदी के भौतिक शास्त्रियों ने यह भी सिद्ध कर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बताया है कि उन्नीसवीं सदी के भौतिक शास्त्रियों की मान्यता पूर्णतः त्रुटिमय थी, परन्तु आज भी भौतिकवादी उन्नीसवीं सदी के शोधों के आधार पर रचे गये शास्त्रों से ही चिपके हुये हैं और जड़वादी रूढ़ि को छोड़ते नहीं। ये ही समाज के लिये अधिक भयानक है। तात्पर्य यह कि भौतिक शास्त्रियें! की जगत की ओर देखने की दृष्टि बदल गयी है, परन्तु भौतिकवादी जैसे के तैसे हैं।

शास्त्रज्ञों का कभी कोई आग्रह नहीं होता। उनसे मानवता को भय नहीं। परन्तु भय है जड से जगत की उत्पत्ति मानने वाले उन्नीसवीं सदी के जडवादी विचारों को पकडे रहने वाले भौतिकवादियों का। क्योंकि तब से तो विज्ञान ने अत्यधिक प्रगति की है, परन्तु भी भौतिकवादी पुराने को पकड कर रहनेवाले हैं। ये पागल ही कहे जा सकते हैं क्योंकि वे अपनी मान्यता से ऐसे चिपके हैं, कि सत्य को जानने का प्रयास ही नहीं करते। वे जड़वाद छोड़ने के लिये तैयार नहीं। पाशवी, भोगाधीन बुद्धिवाले ये भोगलम्पट मानव अपनी जड़ मान्यता से ही चिपके हुये हैं।

जगत चैतन्यमय या जड़ ?

चौदह भौतिक शास्त्रियों का एक महा निबन्ध प्रकाशित हुआ है। जिसका नाम The Great Design ' है। इसमें ऐसा बताया गया है कि विश्व की रचना हेतु पूर्वक की गयी है। इन चौदह में विश्वविख्यात भौतिकशास्त्री सर आइन्सटाइन भी एक हैं। वे लिखते हैं–जगत भौतिक नहीं। यह उन्नीसवी सदी की रूढ़ कल्पना (Orthodox) है; जगत आत्मिक है।

विश्व-संरचना में चेतन को माने बिना छुटकारा ही नहीं। " Ascent of Man " नामक पुस्तक में लेखक लिखता है– ' Are we quite sure that what we call a physical world is after all a physical world ? The View of Science is that–it is not The very term Materialism is misnomer. The world is a spirtual world merely employingr matter for its manifestation ' " जिसे हम भौतिक जगत के रूप में जानते हैं, वह क्या सचमुच ही भौतिक जगत है।– ऐसा हम दृढ़तापूर्वक कह सकेंगे ? विज्ञान का मत तो यह है कि वह भौतिकवाद शब्द स्वयं ही भ्रामक है। यह जगत वस्तुतः चैतन्य जगत है। जो द्रव्य का उपयोग केवल अपनी अभिव्यक्ति के लिए करता है।

विश्व-रचना में आत्मिक शक्ति ही मुख्य है। इस सम्बन्ध में एसेन्ट ऑफ मैन (Ascent of Man) पुस्तक पढ़नी चाहिये। इस प्रकार शास्त्रज्ञ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जहाँ प्रगति कर रहे हैं, वहाँ भौतिकवादियों की नीति–अनीति की, जीवन की तथा दूसरी अन्य कल्पनायें जड़वाद पर ही आधारित हैं। वे तो अभी भी '**ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्**' की मान्यता रखते हैं। इसलिये वे ही जगत की महान हानि करते हैं।

इस प्रकार जगत में आज दोनों विचार–प्रवाहों के पीछे भौतिकवादी विचार श्रेणीका दृष्टिकोण रहता है। यह दृष्टिकोण आधुनिक भौतिक–शास्त्रीयों का नहीं, इसमें भौतिकवादियों का हाथ है इसीलिये वह वाद बदलता नहीं; शास्त्रज्ञों का हाथ होता तो विचार–प्रवाह कभी के बदल गये होते। व्यक्ति स्वातंत्र्य पर आधारित लोकतंत्रवाद में व्यक्ति का विकास चैतन्यशक्ति का आभारी है, इस वास्तविकता को नकारा जाता है। ये जड़वादी, मानव–विकास के लिये चैतन्य शक्ति आवश्यक है, ऐसा मानने के लिए तैयार नहीं हैं, क्योंकि उनके बाप–दादाओं ने यह बात नहीं मानी। इससे अधिक रूढीवादी (Orthodox) दूसरा कौन हो सकता है? ये तो पुराने सिद्धान्तों से चिपटे हैं और नया कुछ भी ग्रहण करने के लिये तैयार नहीं। इन भौतिकवादियों के पास चैतन्य का दृष्टिकोण न होने से ये लोकतंत्रवादी व्यक्ति के विकास के सम्बन्ध में विचार ही नहीं करते। पशुत्व नष्ट करने का मार्ग वे नहीं ढूँढ सके क्योंकि वे स्वार्थ को ही प्रेरणा-स्रोत मानते हैं, फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति स्वार्थी बन गया है। प्रत्येक बात में स्वार्थ मिल गया है। लोग मात्र अपने सुख और 'आज' का ही विचार करने लगे हैं। वे कहते हैं, 'कल किसने देखा है। **यावत् जीवेत सुखं जीवेत्...**' परन्तु सुख क्या है, इसकी उनको खबर ही नहीं, वे तो अपनी कल्पना–तरंगों के अनुसार विहार करते रहते हैं। उसके कारण ही स्वातंत्र्य, समता और बन्धुत्व में से पूँजीवाद (Capitalism)–जगत का महान भक्षक और शोषक उत्पन्न हुआ।

स्वार्थयुक्त लोकतन्त्रवाद

पाश्चात्य जगत का लोकतंत्रवाद पूर्णतया संकुचित है। इसमें मात्र भौतिक सुखोपभोग और व्यक्ति के स्वार्थ का ही विचार किया गया है। इसीलिए ऐसा लोकतन्त्रवाद पूर्ण पशुत्व की ओर ले जानेवाला सिद्ध हुआ है। इसी लोकतंत्र की प्रतिक्रिया है साम्यवाद। साम्यवादियों के बढ़ते हुये वर्चस्व ने लोकतंत्रवादियों को ढीला कर दिया है। ऐसे लोगों को साम्यवादी आक्रमणका भय सतत सताया करता है। साम्यवाद का आक्रमण घोर और भयानक है। इसलिये आज लोकतंत्रवादी झूठ–सच, चिल्ल-पों मचाकर साम्यवाद को कुचल डालनेका प्रयत्न करते रहते हैं।

साम्यवाद मानता है कि इन्द्रियों और शरीर के अतिरिक्त अन्य कुछ भी साध्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं है। और लोकतंत्रवाद में भी दूसरा क्या है? जीवन में पिंड, ब्रह्माण्ड का विचार न कर विषयों के इद्रियजन्य सुख को ही श्रेष्ठ माननेवाले लोकतंत्रवादी नीति की बात बिठा ही नहीं सकते। इन लोगों के पास नीति का आधार ही नहीं मिलता, और ऐसे लोकतंत्रवाद का बच्चा है साम्यवाद। इसलिये दोनों में से किसीको भी चुनना भयावह है क्योंकि 'बाप से बेटा सवाय!'

'मुझे भूख लगे और मैं रोटी खाकर पेट भर लूँ–' यह नीति नहीं है मुझे भूख लगी हो, यह कोई नयी बात नहीं, फिर भी मैं अकेला न खा कर दूसरे भूखे को भी खिलाऊँ, यह नीति है। नीति में व्यक्ति को प्राधान्य नहीं। मात्र परमार्थ का ही विचार जिसमें किया जाय वही नीति। गलत तत्त्वों को दुराग्रहपूर्वक पकडे रहनेवाले मिल (Mill) और बेन्थम (Benteam) जैसे महान शास्त्रज्ञों की बुद्धिभी गड़बड़ हो गयी। उनकी बड़ी दुर्गति भी हुयी। यह उनका बौद्धिक दिवालियापन (Bankruptcy) प्रदर्शित करता है।

व्यक्ति स्वातंत्र्य के आधार पर रचे गये लोक तंत्रवाद का असली रहस्य परमार्थ न होकर स्वार्थ हो गया है। थोडा बहुत नीति जैसा जो वे मानते हैं, केवल स्वार्थ के लक्ष्य से ही हैं, इसलिये ऐसा स्वार्थयुक्त लोकतंत्रवाद कभी जनता का कल्याण सिद्ध नहीं कर सकता। ये लोकतंत्रवादी वैश्विक संघ स्थापित करेंगे, परन्तु उसका हेतु विश्वबन्धुत्व की गप्प मारना ही होगा! भौतिकवाद पर रची विचारश्रेणी को अनुसरण करनेवालों के अधःपतन का कारण भी यही है। ये लोग ढोंगी होते हैं, धूर्त होते हैं। इसी प्रकार साम्यवादी भी ऐसे ही प्रखर रूढिवादी (Orthodox) हैं। वे भी पुराना छोड़कर नया ग्रहण करने के लिए उद्यत नहीं हैं।

जड़वाद का शास्त्रविदों ने खण्डन किया है। जगत आज त्वरित वेग से आगे बढ़ता जा रहा है परन्तु ये साम्यवादी अपना दृष्टिकोण बदलने को तैयार नहीं। इस प्रकार देखने पर सब से अधिक सनातनी यदि कोई है तो साम्यवादी ही। उन्नसवी सदी में जड़वाद के आधार पर रचे गये साम्यवाद का आज बीसवीं सदी में भी वैसा ही स्वरूप है। वे लोग शास्त्रविदों को पहचानते नहीं। उन्हें ज्ञात नहीं कि जड़वाद कब का हटा दिया गया है। संक्षेप में लोकतंत्रवादी और साम्यवादी स्वयं सब से बडे सनातनी हैं और हमको सनातनी (Orthodox) कहते हैं। वे शास्त्रियों की बात मान ने को तैयार नहीं और अपनी ही चिल्ल पों मचा रहे हैं।

मार्क्स (Marx) की विचार–सारिणी प्रवाही, चेतनमय नहीं है। ऐसा कह सकते हैं कि यह एक प्रकार से वर्गों की खिचडी (Dogma) है। उसकी विचार–धारा अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में निर्मित हुयी थी। उस समय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जडवाद था, अतः वह उसके आधार पर रची गयी थी। आज तो जगत बहुत बदल गया है, इसलिये इस विचार--धारा को भी तदनुसार बदली जानी चाहिये थी, परन्तु साम्यवादी, जडवाद पर आधारित इस पुरातन विचार-धारा को छोडने के लिए तैयार नहीं।

साम्यवादी विचार श्रेणी

साम्यवादियों का तत्त्वज्ञान--विरोध विकासवादी है। इसे वे लोग डाइलक्टिकल मेथड (Dialectical Method) कहते हैं। इस पद्धति को साम्यवादी विचार धारा का मूल आधार समझा जाता है। हमको यह पद्धति देखनी है।

मार्क्स (Marx) की पद्धति की विशेषता उसके मतानुसार, जगत के जो मूलभूत गतिरूप जड द्रव्य हैं उनकी गति को प्रक्रियान्वित करना है। एक मूलभूत स्थिति (Thesis) होती है, उसका विरोध करने वाली दूसरी अवस्था (Anti-thesis) उसमें से उत्पन्न होती है; उनका द्वन्द्व चलता है। उस द्वंन्द्व से एक नवीन प्रक्रीया (Synthesis) जन्म लेती है। यह प्रकिया मूल तत्त्व का विरोधकर और विनाशकर जिसप्रकार उत्पन्न होती है, उसी प्रकार वह मूल स्थिति की अपेक्षा विकासोन्मुख होती है। यह बात निर्विवाद: है। यह नयी प्रकिया भी उसमें से विरोधात्मक अवस्था निर्माण होने के पश्चात नष्ट हो जाती है। इसे ध्वंस (Negation) कहते हैं। इस ध्वंस का पुनः ध्वंस होता है (Negation of Negation) और फिर उससे कुछ भिन्न ही निर्माण होता है। वह डाईलक्टिकल प्रक्रिया का Dialectical Method संक्षिप्त विवरण है।

एटम -- अणु के भीतर रहनेवाले इलक्ट्रोनों (Electrones) की गति इतनी तीव्र होती है कि विज्ञान का कोई भी साधन उसका परिमाप नहीं निकाल सकता। साम्यवादी से यदि पूछा जाय कि "जिसे प्रयोगशाला में नहीं देख सकते, वहाँ अन्तर्गत विरोध तथा विकास क्या, और किस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है?" इसका उत्तर वे नहीं दे सकते। संघर्षण न हो तो विकास कहाँ से हो? संघर्षण तभी सम्भव है जब दो परमाणु हैं। इस प्रकार विज्ञान की कसौटी पर उनका तत्त्वज्ञान घिसा नहीं जा सकता। वास्तव में सनातनी तो वे ही हैं, पौराणिक हैं। उन लोकतंत्रवादी और साम्यवादियों ने जो पकडा है, उसे छोडने को वे तैयार नहीं।

रूढिचुस्त साम्यवाद

एक साम्यवादी विद्वान ने मुझ से एक बार कहा, "शास्त्रीजी! आप पौराणिक के ही रहे। पक्के सनातनी और रूढिवादी हैं।" मैंने इस भाई से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहा, " वास्तविकता ठीक विपरीत है, वास्तव में तो असली पौराणिक तो आप ही हैं। हम पुराणों से चिपके हैं इसलिए पौराणिक हैं, परन्तु हमारे पुराण जड नहीं। उनसे नित्य नयी विचार–धारा का प्रवाह सतत बहता रहता है जबकि आप तो अठारहवीं सदी के वैज्ञानियों के और उस समय की परिस्थितियों के आधार पर मार्क्स के लिखे हुये ग्रन्थ से चिपके हुये हैं। बीसवीं सदी ने अठारहवीं सदी के जडवाद को दफना दिया है, परन्तु आप उसे भी छोडने को तैयार नहीं। मार्क्सवाद प्रवाही नहीं और आप उसे पकडकर बैठे हैं। इसलिए वास्तव में तो आप ही पक्के सनातनी हैं, रूढिवादी हैं।'

संक्षेप में, हमारे वैदिक संशोधनों को असत्य कहनेवाले वे अपने ही Dogma का विचार करें साम्यवादियों के ऋषि मार्क्स ने कहा उस पुरानी विचार–धारा पर विज्ञान युग में रचाये गये साम्यवादों को वे पकडकर बैठे हैं परन्तु आज के वैज्ञानिक युग में वे किस प्रकार टिक सकते हैं?

आज, जब हम पुनर्रचना कर रहे हैं तब इन दोनों प्रवाहों का प्रभाव हमपर है। दोनोंका ही मूल त्रुटिपूर्ण है, यह हमने देखा। इससे ही हमारा कल्याण होनेवाला नहीं, साम्यवादी, व्यक्ति की आशंका या आन्दोलन का विचार ही नहीं करते। वे तो कहते हैं, ' चिन्ता न करो, सब को खाने–पीने को मिल जायेगा; सब बातें ठीक हो जायेंगी ' ये लोग द्रव्य का समान वितरणकर रामराज्य का आदर्श सिद्ध करना चाहते हैं। जहाँ **' न मे स्तेनो जनपदे, न कदर्यो न मद्यपः '** तथा **'स्वधर्मेण प्रजास्तावत् रक्षान्ति स्म परस्परम् '** हो। परन्तु ये मूर्ख आँखों के होते हुये भी अन्धे बने हुये हैं। उनको पता नहीं कि मानव को मात्र अन्न- वस्त्र की ही आवश्यकता नहीं। पुराने ज़माने के साम्यवादी तो स्त्री को भी सार्वजनिक निधि (Public Property) मानते थे। कितना जंगली और बीभत्स विचार है! स्त्री को भोगोपयोग की वस्तु मानने वाले मानवता का रक्षण कैसे कर सकेंगे? और, क्या ऐसे विचारधारी जगत का – मानवता का उद्धार कर सकते हैं?

ऐसे साम्यवाद ने लोगों को भौतिक–सुख दिये, परन्तु अनैतिक सिद्धान्तों पर आधारित सत्ता कब तक टिकेगी? मानव की सत्ता स्थापित करने की वृत्ति किसप्रकार टाली जा सकेगी? कौटुम्बिक संघर्ष (clashes) भी इस के ही कारण होते हैं।

दोनों विनाशक प्रवाह

ये दोनों विषय अत्यन्त गम्भीर हैं इसलिये इनपर जितना भी कहा जाय, अल्प ही है। इन दोनों विनाशक प्रभावों के बीच हमने पुनर्रचना का अपना काम आरम्भ किया है। इन के अतिरिक्त हमें और कुछ भी दिखायी नहीं देता। प्रवाह के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

घर–आँगन में होने पर भी उसकी ओर हम देखते ही नहीं।

साम्यवाद और लोकतंत्र–दोनों भाई हैं। इनमें पड़ने के पश्चात् बाहर निकलना अति कठिन है; एक में मरना और दूसरे में डूबना है। आज तो साम्यवाद पशुत्व को पुरस्कृत करता है, और व्यक्तिस्वातंत्र्यवादी लोकतंत्र पशुत्व को नष्ट करने के उपाय बताने का दावा करता है। दोनों भौतिकवादपर आधारित हैं। इन दोनों वादों ने मानवता की वधशाला खोली हुयी है। पिछले दो विश्वयुद्धों ने इस बात को प्रमाणित कर दिया है, और दोनों वादों के अस्तित्व के कारण तृतीय विश्व–विग्रह का भी भय मानवजाति पर मंडरा रहा है। तीसरे विश्व–युद्ध की घुरघुराहट चल ही रही है। कब फट पडे कहा नहीं जा सकता। आज तो प्रत्येक के मन में युद्ध का भय बना हुआ है। यदि व्यक्तिस्वातंत्र्यवादी लोकतंत्र यह बता सकता कि पशुत्व का नाश कैसे हो, तो जगत पर भय की यह छाया न होती। राजनैतिक खेल तो उनको खेलनेवाले ही जानते हैं, सात्विक प्रवृत्तिवाले उसे नहीं समझ सकते।

पाश्चात्य देश भौतिक–आनंद में और भोग--विलास में पड़ गये हैं। उनकी Philosophy – तत्त्वज्ञान है – Eat, drink and be merry· खाओ-पीओ और आनंद करो; इसीलिये भोग के हेतु लूट--पाट करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर खून भी करते हैं; अनीति के मार्ग पर आनंद करते हुये, उनपर किसी की नज़र न लगे इसके लिए दो चार रुपये फेंक देते हैं। इस प्रकार इन लोगों में राक्षसी सँस्कृति, रावणीविचार घर कर बैठे हैं। वे कहते तो हैं, 'मानव नीति और मानवता को भूल गया है, परन्तु 'मुहमें राम और बगल में छुरी' जैसी नीति का अनुसरण करनेवाले, मानव–जगत का कैसे कल्याण कर सकते हैं! खाओ, पीओ, आनंद करो कहते हैं, परन्तु लोकतंत्रवादी लोगों को चूसते हुये विश्व--बन्धुत्व की गप्प जहाँ तक सम्भव हो, मारेंगे। ऐसी नीति को अपनाकर राम–राज्यकी स्थापना किसप्रकार की जा सकती है! आज राम तो कहीं भी दिखायी नहीं देता, जहाँ देखो वहाँ रावण ही दृष्टि गोचर होते हैं। इस प्रकार स्वार्थपर आधारित ये वाद मानवता का किस प्रकार रक्षण कर सकते हैं?

"मुरारेस्तृतीय पन्थाः"

मानव--इतिहास के अध्ययन करने पर यह स्पष्टतया ज्ञात होगा कि जगत को अनन्तकालसे एक तीसरे ही प्रवाह की आवश्यकता थी। मानव अर्थको ही जीवन का सर्वस्व माने हुये है और इसीलिये उसका बार--बार अधःपतन होता रहा है। ऐसी परिस्थितियों में जगत को उसके अधःपतन से उबार सकनेवाला कोई स्थायी समाधान आवश्यक है। इसके लिए आवश्यकता है स्थायी, आत्मिक और चैतन्य के विचार करनेवाली सँस्कृति की। यदि लोगों को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्थायी, आत्मिक और चैतन्य के विचार करनेवाली सँस्कृति मिल जाय तो उनकी गाड़ी स्थायी रूप से पटरी पर चढ़ जाय। भगवान श्रीकृष्ण ने मानव जाति को ऐसी स्थायी आत्मिक सँस्कृति प्रदान की है।

जगत को पिंण्ड–ब्रह्माण्डके ज्ञानकी कल्पना भ्रान्त लगने लगी, नीति अनीति की कल्पना भ्रान्त हो गयी; फलस्वरूप आज मानव, पशु बन गया है। पिंड–ब्रह्माण्ड के पीछे... जगत के पिछे रहनेवाली शक्ति का भगवान श्रीकृष्ण न निःसन्देह मार्गदर्शन किया है पिण्ड--ब्रह्माण्ड का समाधान क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ के रूप में दिया गया है। जगत की उत्पत्ति की कल्पना यदि भ्रान्त हो, तो नीति की वैसी ही रहती है और मानव भी वैसा ही बन जाता है।

श्रीकृष्ण ने हमको यह बात समझायी हैं कि भौतिक संस्कृति नहीं, बल्कि आत्मिक, चैतन्यमय संस्कृति ही मानवता को बचा सकती है और मानवता की वृद्धि कर सकती है। उन्होंने हमें कर्तव्य की महिमा समझायी है। सरल और स्पष्ट शब्दों में उन्होंने हमको कहा है; हक अधिकार की बात छोड़ो। इन के संघर्ष में न पड़कर कर्तव्य का विचार करो। ऐसा करोगे तभी जगत की उन्नति होगी। जगत में मानवता आयेगी; विश्वराज्य स्थापित होगा, और सार्थक होगा।'

आज तो हमारी मनोवृत्ति ही बदल गयी है। सब अपने हक़, अधिकार की ही बातें करते हैं। अपने कर्तव्य की किसीको भी कुछ नहीं पडी है। बेटे की दृष्टि पिता की सम्पत्ति पर होती है। हक़ से, कानून से, अधिकार से वह पिता की सम्पत्ति का मालिक होना चाहता है, जबकि पिता के प्रति अपने कर्तव्य की किसीको कोई चिन्ता नहीं। पिता का कहना कुछ भी नहीं मानते। इस प्रकार आज हक़ के लिये हक़ का संघर्ष चल रहा है, जबकि श्रीकृष्ण ने कर्तव्य कर्म करने का सन्देश मानव जाति को दिया था– **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।'**

आपको आपना कर्तव्य निष्काम और निरपेक्ष भाव से करना है। फल का विचार न कर कार्य करते रहना है। कर्तव्य के पीछे फल दौडता हुआ आयेगा। कितना अलौकिक उपदेश! वास्तव में जब इस बात का विचार करते हैं तो हृदय स्वत: बोल उठता है **कृष्णं वंदे जगद्गुरुम्**

हक और कर्तव्य

जब तक जगत हक–अधिकार के लिये लडता रहेगा, तब तक शांति, सुख या उन्नति शक्य नहीं। जब वह अधिकार की अपेक्षा कर्तव्य की और दौडेगा, उस के लिये संघर्ष करेगा तब ही वह महान् होगा, विशाल होगा; सच्ची उन्नति कर सकेगा। संक्षेप में पुनर्गठनके प्रत्येक विचार के पीछे ईश्वर की सत्ता के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अस्तित्व की विचार-पार्श्वभूमि का आवश्यक है। यह होगा तो धर्म और नीति की कल्पना मानव समाज के गले में उतारी जा सकती हैं।

जीवन में धर्म और नीति के, प्रभावी, सुदृढता विचार हों तभी कर्तव्य कर्म की प्रेरणा मिलती है; निरपेक्ष बुद्धि से कर्तव्य-सम्पादन की अभिरुचि रहती है। उन्नति का मार्गदर्शन यही विचार-सरणी कर सकेगी और समाज की नैतिक तथा साँस्कृतिक निष्ठा बढ़ा सकेगी। हककी आँधी ऐसी है, जिस के प्रभावसे कोई नहीं बच सका।

प्रत्येक स्थान पर अधिकार के झगड़े हैं। मालिकों को उनके अधिकार चाहिये. तो मजदूर अपने अधिकार की बात करते हैं; कोई कर्तव्य का विचार नहीं करता। श्रीकृष्ण तो कहते हैं, 'किसी पर भी अन्याय नहीं होना चाहिये। जो व्यक्ति अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता, उसका जीवन परोपजीवी जैसा है- **'अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति।'** अधिकार के लिये कर्तव्य-पालन नहीं, वरन् कर्तव्य के लिये कर्तव्य-पालन कर।' श्रीकृष्ण ने इस वैश्विक समस्या के पीछे रहनेवाली अतीन्द्रिय शक्ति का मान कराकर नीति और सत्य का व्यवहार करनेवाले में प्रगाढ़ विश्वास निर्माण किया है जिसे उन्होंने **'न हि कल्याणकृत्कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति।'** द्वारा व्यक्त किया।

अडिग आत्मविश्वास

श्रीकृष्ण ने जगत को कर्तव्य और विश्वास का आदेश दिया। जो मानव सत्य की आराधना करता है, नीति से वर्तता है, उसके मन में अटल आत्मविश्वास होता है- होना चाहिये। विश्वास खो बैठनेवाला मानव कभी महान् नहीं होता। कर्मयोग ही ऐसा विश्वास पैदा कर सकता है। सतत कर्मयोग करते-करते मरना श्रीकृष्ण हमें सिखाते हैं। और कर्म भी कैसे? अपने लिये तो सभी कर्म करते हैं परन्तु दूसरों के लिये तथा चित्‌शक्ति के विकासार्थ किया गया कर्म ही दिव्य कर्म है। भौतिकवादी तो इस दृष्टि से विचार ही नहीं कर सकते। क्यों और किसके लिये कर्म करना है, इसका उत्तर उनके पास नहीं। दूसरों के लिये कर्म करने का मार्ग वे कह ही नहीं सकते। श्रीकृष्ण ने इन प्रश्नों का उत्तर देकर जगत को उन्नति का मार्ग दिखाया है।

परार्थ कर्म

दूसरों के लिये कर्म करने का मार्ग भौतिकवादी नहीं बता सकते, इसे तो श्रीकृष्ण ही कह सके-**'अनेकजन्मसंसिद्धः ततो याति परांगतिम्।'** भौतिक-वादी को यदि कोई पूछें कि परार्थ कर्म क्यों करना है? किसलिए किसीको न मारें? किसलिये मानव का माँस भी न खाएँ? तो भौतिकवादी कोई उत्तर नहीं दे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सकता। वह अतीन्द्रिय शक्तिपर बिल्कुल भी विश्वास नहीं करता, इसीलिये उसमें आत्मविश्वास नहीं। उसके जीवन में चिन्मयता हो तब वह आये न! भौतिक विचारों में चिन्मयता कहाँ? वहाँ जड़ के विचार ही हैं, अतः वे भी जड़ बन गये हैं।

आज कल भौतिकवादियों को सभी उड़ाते हैं; ठीक ही उडाते हैं। उनको अमान्य करना आज सरल है क्योंकि उनके साथ भौतिक शास्त्र के पण्डित नहीं हैं।

उन्नीसवी सदी के शास्त्रवेत्ता भी जड़वादी थे, इसलिये उनका नाम भी कोई नहीं लेता, परन्तु आज ऐसा नहीं है। आज तो शास्त्रविद् आगे बढ़े हुये हैं, जब कि भौतिकवादी ऐसे ही रहे हैं। राजनीतिज्ञ (Politician) और पूँजीपति ही भौतिकवाद की आराधना करते हों, ऐसा नहीं, बल्कि दो चार आने की मजदूरी करनेवाले भी ऐसे भौतिकवाद की आराधना करने लगें हैं। भौतिकवाद और जड़वाद ने आज तक कभी भी जगत का कल्याण नहीं किया। इसके लिये आत्मिक चैतन्यवाद पैदा करने की आवश्यकता है और इस सत्य का साक्षात्कार करानेवाला यदि कोई है तो मात्र गीता ही।

जगत को सुधारने के लिए "गीता" की आवश्यकता

जगत एक ही चैतन्य से बना हुआ है। जगत से ईर्ष्या और विसंगति दूर करने की शक्ति इस भावना में है- '**वासुदेवः सर्वमिति...**' मानव को बलपूर्वक, तलवार या कायदे कानून से नहीं सुधारा जा सकता इसीलिये भगवान ने मानव को हृदय परिवर्तन से सुधारने का समर्थन किया है, '**विसृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु।**' निःस्वार्थ और परार्थ कर्म की रूपरेखा देकर, व्यक्ति से परे कोई है, बताकर श्रीकृष्ण ने मानव जीवन में नीति-भावना निर्माण की है। आज जगत को इसी तत्त्वज्ञान की आवश्यकता है।

जगत को तलवार या शक्ति से सुधारने की इच्छा रखनेवाले भौतिक वादी कभी भी जगत को नहीं सुधार सकते। पहले तो इनको स्वयं को सुधारने की आवश्यकता हैं। जब लोग 'मेरी ही तरह दूसरा भी मनुष्य है' ऐसा विचारने लगेंगे तब जगत स्वयं ही सुधर जायेगा। हम अपने हाथ में गीता लेकर जगत को यह मार्ग दिखा सकते हैं। गीता के सात सौ श्लोकों में जगत की समस्त समस्यांओं का समाधान है।

जगत को यदि किसी बातका भय है, तो वह पशुत्व का ही है। इससे उबरने का तत्वज्ञान गीता में है। जगत को यदि सच्ची उन्नतिकर सुखी होना हो, तो गीता के इस तत्त्वज्ञान को स्वीकार किये बिना छुटकारा ही नहीं। यह तर्क शुद्ध और विशुद्ध शास्त्रीय लेख है। इसीलिये आज भी कहते हैं- '**कृष्णं वंदे जगद्गुरुम्।**

निर्भयता उन्नति की कुञ्जी है। भय तो चाहिये ही नहीं। आज अत्याचार करके दबाने या मारने की वृत्ति सर्वत्र है। अल्पमत वालों में भी यह पायी जाती है और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बहुमतवालों में तो है ही। Caste and classless Society जाति और वर्गहीन समाज-रचना, Minority & Majority अल्पमत और बहुमत-इन आधुनिक समस्याओं का समाधान गीता में है।

'अभावे ब्रह्मचर्यम्' – मिली न नारी, सहज बाबा ब्रह्मचारी – इसके अनुसार आचरण करने का कोई अर्थ नहीं ; अल्पमत की भी आज यही दशा है। दुर्लभ वस्तु के लिये मिथ्या आत्म-सन्तोष करने की यह वृत्ति मानव के विकास को अवरुद्ध करती है। मिलने पर भी जिसे मोह नहीं वही सच्चा मानव है।

जगत को अत्याचार से सुधारा नहीं जा सकता। उसके लिए आवश्यकता है आत्मिक सत्ता-निर्माण की। केवल शोध-संस्थानों में शोध करने से मानव नहीं सुधर सकेगा। गीता ने कहा है 'पशुत्व से मनुष्यत्व और मनुष्यत्व से देवत्व जीवन में निर्माण करने के लिए आत्मिक-शक्ति चाहिये' और गीता यही करती हैं।

बुद्धि की महिमा

ईसाई धर्म विज्ञान के विरुद्ध भी लड़ने को खड़ा हुआ था, परन्तु मात्र श्रद्धा भक्ति पर धर्म नहीं टिक सकता। श्रद्धा-भक्ति के साथ-साथ बुद्धि भी आवश्यक है। गीता यह बात हमको सिखातीं हैं और इसीलिए युगों कि आँधियों के सामने भी वह टिकी हुयी है। विज्ञान के संशोधकों को वह ऋषि मानती है। इसीलिये गीता का गायक जगद्गुरु हैं, जगतका उद्धारक है।

कायदे का खोखलापन

मानव को कानून से नहीं सुधारा जा सकता। क्योंकि वह कानून से छूटने का मार्ग ढूँढेगा ही; इसके लिये सलाहकार भी बैठे हैं। कानून का घेरा आनेवाला है तब बच निकलने का विचार करते हैं। पुराने कानून में फाँसी का दण्ड दिया जाता था, गले में रस्सी डालकर फाँसी दी जाती थी। एक बार ऐसी घटना घटी कि एक व्यक्ति के गले में रस्सी डालकर उसे फाँसी दी जा रही थी। तुरन्त ही उसके वकील ने कहा, काम पूरा हो गया, सजा हो गयी। उसे नीचे उतार लो। कानून ने उसे फाँसी देनी थी और उसके अनुसार फाँसी दे दी गयी है। वह मरा या नहीं, यह नहीं देखना, अब क्या किया जाय? इस घटना के पश्चात् कानून में सुधार करना पड़ा (To be hung) फाँसी पर लटकाना इस कानूनी वाक्य में सुधारकर (To be hung by neck till death) मृत्यु तक गले में फाँसी लगाकर लटकाना – परिवर्तन करना पड़ा। इसलिये लोगों को कानून से नहीं सुधारा जा सकता, नित्य के स्वाध्याय, चिन्तन के द्वारा ही सुधारा जा सकता है। कानून हेतु (Motive) न देखकर मात्र शब्द ही देखता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कानून के विचित्र जाल का दूसरा उदाहरण शेक्सपियर को लिखे हुअे Merchant of Venice ' में पढ़िये। शायलौक ने न्यायालय में करार पत्र के अनुसार पोर्शिया के पति के (शरीर से) पौन किलो माँस की माँग की थी। पोर्शिया वकालत करती है, वह कहती है –' Without a drop of blood ' रक्त की एक भी बूँद नहीं गिरनी चाहिये। करारपत्र में केवल माँस लेने की ही बात है। ' आज भी वास्तव में पोर्शिया के बहुत से लड़के हैं।

कानून के दाँव-पेंच अद्‌भुत होते हैं। इसीलिये कानून सर्वत्र मानवता पैदा नहीं कर सकता। इसी प्रकार मानवता की रक्षा भी नहीं कर सकता। मानवता को उत्पन्न करने और उसकी रक्षा के लिये धर्म की ही आवश्यकता है। धर्म ही मानवता की रक्षा कर सकता है अपने अधिकार में आयी हुयी, कल्याण के मुस्लिम सूबेदार की पत्नी को देखकर शिवाजी ने भोग के भाव की अपेक्षा भक्ति-भाव निर्माण कर उसे 'माँ' कहकर प्रणाम किया और उसे सकुशल उसके स्थान पर पहुँचा दिया। यदि शिवाजी ने कानून का मार्ग अपनाया होता तो वह महिला क्या वहाँ से सुरक्षित वापस घर लौट सकती ? शिवाजी के धर्म, उनकी मानवताने उस महिला का उद्धार किया।

हरिश्चन्द्र–विश्वमित्र का दृष्टान्त भी जगत विख्यात है। हरिश्चन्द्र ने स्वप्न के शब्दों को सत्य करने के लिये राज्य त्याग किया। स्वप्न का कोई साक्षी भी न था हम तो जागृति के शब्द स्वप्न में भी पूरे नहीं करते ! इससे हम देख सकते हैं कि जगत को आज पोर्शिया मानवों की नहीं अपितु स्वप्न में दिये हुये शब्दों को सत्य करनेवाले हरिश्चन्द्र तथा प्रेम व कर्तव्य से अपना माँस काटकर देनेवाले राजा शिवि जैसे मानवों की आवश्यकता है। मानवता के विचार तभी आयेंगे भौतिकवाद जायेगा।

उदात्त स्वार्थवाद

स्वार्थ के अनेक प्रकार हैं। बहुत से लोग स्वार्थ को परमार्थ में घटित करते हैं। दो चार लाख का लाभ हुआ और नौकरों को दो-तीन रुपये बाँट दें तो बहुत बडा परमार्थ कर डाला, ऐसा माननेवालों की आज कमी नहीं। यह तो Enlightened Self Interest है। इसमें मानवता जैसी कोई बात नहीं। लाभ होने पर नौकरों की दृष्टि में खटके नहीं, उनका लाभ करूँगा तो और अधिक पैसा मिलेगा – ऐसा समझकर उनके आगे टुकडा फेंकने में मानवता नहीं है। किसी भी प्रकार का उच्च विचार यह नहीं है। यहाँ परार्थ के नाम पर अधिक स्वार्थ साधा जाता है। लालच देकर और अधिक प्राप्ति की तृष्णा है। स्वार्थ के पेट में रही यह पशुता दूर हो और उच्च नैतिकता प्रकट हो तभी मानवता-निर्माण हो सकती है। इसीलिये श्रीकृष्ण ने सर्व प्रथम पशुता के विनाश का समर्थन किया है और यदि यह इच्छा है कि पशुता जानी चाहियें तो शीघ्र उठें, कार्य में तल्लीन हो जाअें, स्वाध्याय करें जीवन को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अधिक से-अधिक तेजस्वी बनाऐं। ऐसा नहीं मानना चाहिये कि श्रीकृष्ण कदाचित सोये होंगे, वे तो सदैव सजग हैं, वे अनंत हैं। किस रूप में, कब आकर तमाचा लगा जायँ, कुछ भरोसा नहीं।'

"गीता" द्वारा उपदिष्ट अध्यात्मवाद

लोकतंत्रवाद को बदलने के लिये साम्यवाद आया था, उसे बदलने के लिये अध्यात्मवाद आयेगा। परन्तु, अध्यात्मवाद लाने का काम सरल नहीं है, क्योंकि भौतिकवादियों के जाल से कोई नहीं बचता। लोग श्रीकृष्ण के चरण छूकर, मन्दिर में पैसा चढ़ाकर, 'हम मानवतावादी हैं,' ऐसा दम्भ करते हैं। किसी शास्त्री या ब्राह्मण को दक्षिणा देकर आत्मसन्तोष अनुभव करते हैं, परन्तु ऐसे लोगों के हृदय पर भौतिकवाद का ही भूत सवार हुआ होता है। उनके हृदय में पशुता ही भरी हुयी है, क्योंकि उनका हेतु इन सभी क्रियायों द्वारा पैसा ही प्राप्त करना होता है। पूर्ण भौतिक विचार करनेवाले ये जड़वादी पशुता पर ही जीवित रहते हैं। इस प्रकार पशुता को प्राप्त लोगों को वापस ठिकाने पर लाने का कार्य गीता का है। वही विचारपूर्वक उनको मार्ग पर ला सकेगी। मार्क्सवाद का तात्त्विक उत्तर भी गीता में है। मार्क्स के प्रत्येक सिद्धान्त का गीता में उत्तर है।

भौतिक पुनर्गठन अर्थात् पशुता का आव्हान। मानवता को अधःपतन से उबारने की शक्ति यदि किसी में है तो एकमात्र गीता में। इसलिये जगत के कल्याण के लिए गीता का स्वाध्याय और प्रचार आवश्यक है। परन्तु जेब में गीता रखकर घूमने से गीता का प्रचार नहीं होता। अथवा सब की जेबों में गीता जाय, इससे भी प्रचार नहीं होता। गीता का सच्चा प्रचार उसके उपदेश जीवन में उतारकर हो सकता है।

जगत के किसी भी विचार-प्रवाह से पुनर्गठन करेंगे तो वह पशुत्वप्रधान ही होगा, इसलिये वैश्विक पुनर्गठन के लिए श्रीकृष्ण का सन्देश जाना चाहिये, मानव का अधःपतन कहीं होता हो तो गीता लेकर वहाँ जायँ। हमारी गीता महान है ऐसी पुकार लगाने से नहीं वरन् उसके उपदेशानुसार आचरण कर जगत को गीता की महानता समझायी जा सकती है।

श्रीकृष्ण ने कहा है, '**धर्म्यं संवादमावयोः अध्येष्यते...**' इत्यादि जो कहा, वही सच्चा ज्ञान-यज्ञ है। उसका मात्र पारायण नहीं, उसका प्रचार करना चाहिए। उसका सच्चा प्रचार आचारण में है। गीता संस्कार से मानव को सुधारने का कार्य करती है। वह आत्मिक सन्देश देती है। वह चूल्हे से लेकर सीधे दरबार तक पहुँचनी चाहिये। जिनको जीवन का मोह है ऐसे लोलुप मानव मानव-जाति के पथ प्रदर्शक नहीं बन सकते। वाग्विलासी कॉंट (Kant) अथवा विश्वबन्धुत्व के उच्चविचार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रखनेवाले और मानवता की वधशाला खोलनेवाले जगतके सच्चे नेता या मार्गदर्शक कदापि नहीं बन सकते! जो अपने जीवन द्वारा जगत को उपदेश देता है वही सच्चा नेता है।

श्रीकृष्ण ने जो कुछ कहा उसे करके दिखाया, इसीलिये वे हमारे महान नेता हैं। उन्होंने जीवन जीकर बताया। इसलिये वे महान् द्रष्टा हैं और उनका दर्शन ही गीता है। गीतादर्शनं और श्रीकृष्ण रूपी द्रष्टा से ही जगत का उद्धार हो सकता है, ऐसा है यह गीता-शास्त्र। इस कार्य में भौतिकशास्त्र सहायता करते रहे तो यह आनंद की बात समझी जायेगी।

सच्चा कृष्ण-भक्त

हमारे प्रभु पशुत्व का संहार करनेवाले हैं। उनके आदेश को जीवन में न उतारें तो हम उनके भक्त काहे के ? जगत उद्धारक प्रभु का जितना भी प्रचार करेंगे, उतना मानवता का प्रचार होगा। उनके चरण छुयें परन्तु आदेश की अवहेलना करें तो हम श्रीकृष्ण के भक्त नहीं, शत्रु हैं। '**ते हरर्द्वेषिणः पापाः**' क्योंकि भगवान को दबाकर रखते हैं। उनकी बाल-लीला को बीभत्स समझकर, उन बीभत्स चित्रों को घर में टाँगकर श्रीकृष्ण के नामं पर भोगविलास में मग्न रहनेवाले कृष्णभक्त काहे के ? ऐसों को श्रीकृष्ण-भक्त नहीं कहा जा सकता।

श्रीकृष्ण का सच्चा उपासक वह है; जो मानवता का उपासक हो; अपने स्वार्थ का विचार न कर जगत के कल्याण का विचार करता हो; जिसमें जगत के लिए कुछ करने की तमन्ना हो। बाकी अन्य श्रीकृष्ण-भक्त नहीं–धूर्त हैं, ढोंगी हैं। सुख के साधन एकत्र करेने में सुख नहीं; जो त्याग में सुख मानता है, वही सुखी है और उसे पृथ्वी के गोले पर सुदर्शन चक्र और शंख धारण की हुयी श्रीकृष्ण की प्रतिमा ही अधिक प्रिय है। वह कहता है 'त्याग और संयम' मानव को आत्मोद्धार का मार्ग बतायेगा। विश्व को एक सूत्र में वह बाँध सकेगा। त्याग में सुख माननेवाला ही सच्चा सुखी और सच्चा श्रीकृष्ण-भक्त है। अकेले खाने की अपेक्षा दूसरे को खिलाने में अधिक आनन्द आता है। मानवता के पुजारी के लिये समग्र मानव-जाति एक है। जाति, वर्ग या देश का भेद-भाव उसके मार्ग को अवरुद्ध नहीं कर सकते। जिसे त्याग, संयम और आत्मविकास का भान नहीं, वह श्रीकृष्णभक्त नहीं, कंसभक्त हैं।

श्रीकृष्ण का जीवन अनन्त है, अलौकिक है। उसका जितना गान करें कम ही है। अनेक दृष्टि से उनके जीवन की समीक्षा हो सकती है, परन्तु इसमें और तीस दिन निकल जायँ। इस समय मानवता के महान उपासक का जीवन हमने सांस्कृतिक दृष्टि से देखा। हमें सदैव उनके जीवन को समझाने का प्रयास करते रहना चाहिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह जो ज्ञान-यज्ञ किया है, उसे श्रीकृष्ण के चरणों में अर्पित करेंगे।

'यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौंतेय! तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥'

श्रीकृष्ण का जीवन विचार करते समय हृदय भर आना चाहिये। इतनी श्रद्धा और एकाग्रता हो तभी उनका जीवन समझा जा सकता है। अन्यथा कुर्सी में बैठें, लम्बी टाँगकर बीडी फूंकनेवाला उनका जीवन नहीं समझ सकता। आज तो स्वार्थी, भोग-लम्पट और दुराचारी लोग भी गीता का पाठ बिना समझे कर, मन्दिर में जाकर अपने को श्रीकृष्ण भक्त कलहवाते हैं, परन्तु श्रीकृष्णभक्ति इतनी सस्ती नहीं। त्यागी और मानवता का पुजारी ही श्रीकृष्ण भक्त बन सकता है।

मानवता की पूजा

श्रीकृष्ण-भक्ती हार को कभी स्वीकार नहीं करता, 'मुझसे नहीं हो सकेगा' कहकर रोने नहीं बैठता। लोक कल्याण के लिए गोवर्द्धन उठानेवाले श्रीकृष्ण का हमको सच्चा पुजारी बनना हो तो लोकसेवा हमको भी करनी पडेगी, मानव-जाति का पुजारी बनना पडेगा। गोवर्द्धन को हम ग्वाल-बाल बनकर लाठी लगायेंगे तो भी पर्याप्त होगा। श्रीकृष्ण को कहेंगे कि हम आपके सिद्धान्तों का प्रचार करेंगे। व्यक्ति स्वातंत्र्य की अपेक्षा न रखकर समष्टि में बैठकर काम करेंगे। भोजन करना कदाचित् भूल जायेंगे परन्तु इस कार्य को नहीं भूलेंगे। इस प्रकार प्रभु के पदारविंद का स्मरणकर हृदय पूर्वक प्रणामकर, ज्ञान-यज्ञ पूर्ण करेंगे।

ज्ञानाग्नि हमारी पाठशाला में प्रकट हुयी हैं; चिरं प्रज्वलित रहती हैं। इस ज्ञान-अग्नि में समिधा डालने के लिये, आठ दिन में एक दिन भी जिसको अवकाश नहीं, वह भले ही कितना ही बडा श्रीमान या विद्वान हो परन्तु भोगवादी है, पशुत्व का दास है '**मोघं पार्थ स जीवति**

जिनको श्रीकृष्ण जीवन का दर्शन करने के पश्चात कुछ दर्शन मिले और अब तक कुछ करने का पश्चाताप हो, उनको सच्चा उपासक समझना चाहिये। जीवन में क्या क्या कठिनाइयाँ हैं, गीता में- हमारी सांस्कृतिक साहित्य में उसका उत्तर है या नहीं, इसे देखने के लिये ३० दिवस चाहिये, जब कि हमने तो तीन दिनों तक ही देखा है।

मैंने श्रीकृष्ण-जीवन की सांस्कृतिक समीक्षा करने का अल्प प्रयास किया है और वह मेरे पिता, पितामह द्वारा मुझमें भरे संस्कारों का आभारी है। इसलिये इस ज्ञान-यज्ञकी पूर्णाहुति के समय में उनके वन्दन करता हूँ। मैंने जो कुछ कहा है, वह नवीन नहीं है। सन्त महन्त और तत्वचिन्तक जो लिखे गये उसमें से जो कुछ मैं पचा सका हूँ वही मैंने आपसे कहा। मैंने जो कुछ कहा है वह उच्छिष्ट (जूठन)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ही है– 'व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम् अतः मैं उन समस्त महापुरुषों का भी अभिनंदन करता हूँ।

इस ज्ञान–यज्ञ में हृदय से सहयोग करनेवाले सब लोगों को मैं धन्यवाद देता हूँ। अन्त में पूर्ण पुरुषोत्तम योगेश्वर, जगद्गुरु भगवान श्रीकृष्ण को मैं वन्दन करता हूँ। उनके चरणों के निकट खड़े रहने की अपनी योग्यता न होने पर भी उनके जीवन की समीक्षाकर, उनके निकट जाने की मैंने जो धृष्टता की है, उसके लिये उनसे क्षमा–याचना करता हूँ।

'सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखेति !
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात् प्रणयेन वापि...
तत् क्षामये त्वामहमप्रमेयम्॥'

अन्य सभी को धन्यवाद। हृदय से सहायता देनेवालों का भ्रातृभाव मानने से आभार नहीं मानता। पूर्ण शान्तिमय वातावरण 'Pin drop Silence' के लिये गीता पाठशाला में आकर देखो, ऐसा जगत को कह सकता हूँ। भविष्य में जिनसे बड़ी आशायें है, जो श्रीकृष्ण–प्रिय हैं चैतन्य है, ऐसे सुशील बारह–तेरह वर्ष के मेरे छोटे भाई जो कि चप्पल, छतरी इत्यादि की व्यवस्था में खड़े रहे हैं उनकी निष्ठा देखो। साढे आठ बजे से साढे नौ बजे तक निद्रा छोड़ वे खड़े रहे उनका स्मरण न करूँ तो यह ज्ञान–यज्ञ अपूर्ण रहेगा। यह खास उनके लिए है वे नयी पीढी (New Generation) के हैं।

मेरे कथन भावों में आनंद नहीं आया, फिर भी सभी समरस हुये, ध्वनिवर्द्धक यंत्र माइक भी बिगड गया, फिर भी कोई उठा नहीं, नीचे उतरने पर ज्ञात हुआ कि माइक चलता न था ऐसे शांति और अनुशासन–प्रिय श्रीकृष्ण भक्तों के सम्बन्ध में मैं क्या कहूँ ! पुनः एकबार उन जगद्गुरु को नमस्कार कर, हम सब को प्रचार की सद्बुद्धि मिले, ऐसी प्रार्थना कर ज्ञान–यज्ञ की पूर्णाहुति करेंगे।

'सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात्।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

'कृष्णं वंदे जगद्गुरुम्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाल्मीकिविद्यापीठपुस्तकालयः

प्रत्यावर्तनतिथिः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाल्मीकिविद्यापीठपुस्तकालयः

प्रत्यावर्तनतिथिः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५०५९

AUTHOR आठवले, बैजनाथ

TITLE श्रीकृष्ण-जीवन-दर्शन

DATE DUE	BORROWER'S NAME

HR66
ATH

५०५९

MAHENDRA SANSKRIT UNIVERSITY 1986 AD

महेन्द्र संस्कृत विश्वविद्यालय
वाल्मीकि विद्यापीठ
पुस्तकालय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(सत्यसेवा मुद्रणालय, अलिबाग)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu